Published by Tukaram Javaji, Proprietor Nirnaya Sagar Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay.

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya-sagar Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay.

प्रस्तावना.



ॐसर्वमहाशय सज्जनोंको विदित हो कि इस समयमें भारतवर्षमें विशेषकरके वेदांतग्रंथोंका प्रचार होय रहा है सो यद्यपि वेदांतशास्त्र-का सिद्धांत जीवकी मुक्तिका उत्तम साधन है परंतु अनधिकारि दशामें उसका विचार करनेसे प्रायः लोक उभयभ्रष्ट हो जाते हैं क्योंकि सगुण और निर्गुण ईश्वरके आराधनको छोड देते हैं और ब्रह्मके स्वरूपको यथार्थ जान नहि सकते और इस कालमें कलियु-गके प्रभावसे इसप्रकारके पुरुष विशेष करके देखनेमें आते हैं इस-लिये क्रमक्रमसे परमात्माके स्वरूपको जाननेकेलिये यह ग्रंथ नवीन निर्माण किया गया है। यद्यपि ईश्वरका आराधन वेद धर्मशास्त्र पुराण और भारतादि इतिहास ग्रंथोंमें जगहजगहपर निरूपण किया हूया है परंतु सो फुटकल फुटकल होनेतें अल्पज्ञजिज्ञासुजनोंको समग्र जानना कठिन पडता है इसलिये इस ग्रंथमें समग्र एकत्र करके क्रमपूर्वक प्रकाशित करदिया है। इस ग्रंथमें किसी मतमतांतरोंका विरोध और खंडन नही है केवल भिन्नभिन्न देवता-योंकी उपासनाका प्रकार लिखनेसे ग्रंथका विशेष विस्तार हो जावेगा इस कारणसे दिग्दर्शन न्यायसे इसमें विष्णुभगवान्‌के आराधनकाही प्रकार निरूपण किया है उसी रीतिसे अन्य देवतायोंके उपासकोंकोभी

अपने अपने इष्ट देवके आराधनके प्रकारको जानकर करना चहिये । तैसेहि वेदांत सांख्य योगादि दर्शनोंमें जो सृष्टिक्रम भिन्न भिन्न प्रकारसे निरूपण किया है सो तिन सर्वका एकत्र समन्वय करके इस ग्रंथमें संक्षेपसे कथन किया है । सो इस ग्रंथको योगरसायन धर्मानुशासन भजनमाला विचारदीपक योगकल्पद्रुमादि ग्रंथके कर्त्ता ब्रह्मानंदस्वामीने निर्माण किया है और निर्णयसागर प्रेसके मालिक मि० तुकाराम जावजीने छपवाकर प्रसिद्ध किया है । सो इसमें दृष्टिदोषसे जहां कहीं अक्षर वा मात्रा अशुद्ध रह गया हो सो अपनी बुद्धिसे स्वयमेव वाचक महाशयोंको शुद्ध करलेना उचित है इति ॥

स्वामिब्रह्मानंद.



श्रीगणेशाय नमः ।

ईश्वरदर्शनप्रारंभः ॥

नमस्तस्मै परेशाय परानंदैकहेतवे ।
विश्ववृक्षैकवीजाय संसारार्णवसेतवे ॥

अथेश्वराराधनम् ॥ १ ॥

अथेत्ययमत्रारंभार्थः नत्वानंतर्यार्थो मंगलार्थको वा । ईश्वराराधने सर्वास्ववस्थासु सर्वेषामधिकारात् । ईश्वरशब्दस्यैव मांगलिकत्वाच्च । ईश्वराराधनं सर्वैरेव जनैः कर्तव्यमिति वाक्यशेषः ॥ १ ॥

अथ भाषाटीकाप्रारंभः

नमोस्तु निखिलाभीष्टदायिने शेषशायिने ।
चराचरजगज्जालजन्मने गतजन्मने ।

'अथेश्वराराधनम्' अथशब्द इस स्थलमें आरंभका वाचक है अनंतर और मंगलका वाचक नहि है. क्योंकि ईश्वरके आराधनमें

सर्व जीवोंका सर्व कालमेंही अधिकार है. यातें अथशब्द यहां किसी साधनके अनंतरका वाचक नहि हो सकता. तथा सूत्रमें जो ईश्वरशब्द है सोई मंगलरूप है. यातें सो अथशब्द मंगलका वाचकभी नहि हो सकता है सो ईश्वरका आराधन सर्वहि पुरुषोंको करणा योग्य है इति ॥ १ ॥

किमर्थमीश्वराराधनं विधेयं ।

उभयसाधनत्वात् ॥ २ ॥

उभयस्य भोगस्य मोक्षस्य च हेतुत्वात् । परमेश्वराराधनेनैव हि ब्रह्मलोकावधि भोगजातस्य कैवल्यावधि मोक्षस्य च प्राप्तिर्जायते । अतो भोगाभिलाषिभिरपवर्गेप्सुभिश्च पुरुषैरीश्वराराधनमेव करणीयमिति ॥ २ ॥

किस वास्ते ईश्वरका आराधन करना चाहिये, इस प्रकारका प्रश्न होनेतें कहे हैं ।

'उभयसाधनत्वात्' उभय कहिये भोग और मोक्ष. दोनोंकी प्राप्तिका मुख्य साधन होनेतें ईश्वरका आराधन अवश्य करणा योग्य है. क्योंकि ब्रह्मलोकपर्यंतके भोग, और कैवल्यपर्यंत मोक्ष, यह दोनों ईश्वरके आराधनसेंहि प्राप्त होवे है, यातें भोगोंकी इच्छावाले तथा मोक्षकी इच्छावाले पुरुषोंको ईश्वरका आराधन अवश्य करना योग्य है इति ॥ २ ॥

ननु सकामानि ज्योतिष्टोमादीनि कर्माणि पर्यंकाद्युपासनाश्च कुर्वन्नयं जनः स्वर्गादिब्रह्मलोकांतं विषयसुखं प्राप्नोति । शमदमाद्यनुष्ठानपुरःसरं वेदांतवाक्यविचारेण मोक्षपदं चाधिगच्छतीत्येवं पुरुषप्रयत्नसाध्यत्वात् भोगापवर्गयोः किमर्थं पुनरीश्वराराधने प्रयासांतरमित्यत्राह ॥

स्वप्रयत्नात्तत्सिद्धिरितिचेन्नान्यतंत्रत्वाज्जीवस्य॥३॥

स्वप्रयत्नात् कर्मोपासनाभ्यामध्यात्मशास्त्रविचारेण च विहितपुरुषप्रयत्नेनैव तयोर्भोगापवर्गयोः सिद्धिर्भवतीति चेत्। नैवं मंतव्यं।कुतः अन्यतंत्रत्वाज्जीवस्य। परतंत्रो हि किल जीवः यद्ययं स्वतंत्रो भवेत् प्रभवेत्तदात्मप्रयत्नेनैव भोगमोक्षयोरासादने । परंत्वीश्वराधीनत्वाज्जीवस्य तद्द्वारैव तत्प्राप्तिर्भवितुमर्हति । तथाह योगाचार्यः 'समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्'इति ब्रह्मसूत्रकारश्च 'परात्तु तच्छ्रुतेः' इत्येवं सूत्रयामास । श्रुतिरपीममेवार्थं दर्शयति 'एष उ ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते। एष उ ह्येवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषत' इति । स्मृतिरपि श्रुत्यर्थमनुवदति'अज्ञो जंतुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः ॥ ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं नरकमेव वा' इति । महाभारतेऽपि मोक्षधर्मे 'नारायणेन दृष्टस्तु प्रतिबुद्धो भवेत्पुमान् ॥ एवमात्मेच्छया राजन् प्रतिबुद्धो न जायते'

इत्येवमीश्वराधीनत्वाज्जीवानां बंधमोक्षयोरतस्तस्यैवाराधनं कर्तव्यमिति ॥ ३ ॥

ननु ज्योतिष्टोमादि यज्ञोंकरके और पर्यंकादि उपासना करके यह पुरुष स्वर्गलोकसें लेकर ब्रह्मलोकपर्यंत विषयसुखको प्राप्त हो सकता है. तथा शमदमादि साधनपूर्वक वेदांत शास्त्रके विचारद्वारा मोक्षपदकोभी प्राप्त होसकता है. सो इस प्रकार भोग और मोक्ष दोनों जब पुरुषके प्रयत्नसें हि सिद्ध हो सकते हैं तो फिर ईश्वरके आराधन करणेमें जुदा किसवास्ते परिश्रम करना चहिये, ऐसी शंका होनेसें कहे हैं ।

'स्वप्रयत्नाच्चत्सिद्धिरितिचेन्नान्यतंत्रत्वाज्जीवस्य' तुमने कहा कि यज्ञादि कर्म और उपासना तथा वेदांत शास्त्रके विचाररूप पुरुष-प्रयत्नसेहि भोग और मोक्षकी सिद्धि हो सकै है, सो ऐसे नहि मानना चहिये क्योंकि अन्यतंत्रत्वाज्जीवस्य कहिये यह जीव सर्वदा परतंत्र है जो यह जीव स्वतंत्र होवे तो भोग और मोक्षको अपने पुरुषार्थसे संपादन कर सके, परंतु जीवको ईश्वरके अधीन होनेतें ईश्वरके द्वाराहि तिसको भोग और मोक्षकी प्राप्ति संभवे है. यह वार्ता योगशास्त्रमें पतंजलि मुनिनेभी कथन करी है, 'समाधिसिद्धि-रीश्वरप्रणिधानात्' । अर्थ—ईश्वरके आराधनसेहि समाधिकी सिद्धि होवे है इति । तथा व्यासजीने भी ब्रह्ममीमांसामें कहा है, 'पराचु तच्छ्रुतेः' । अर्थ—वेदके प्रमाण होनेतें इस जीवको ईश्वरके

सकाशसेहि शुभाशुभ कर्मोंका फल प्राप्त होवे है इति । तथा श्रुति भी इस वार्ताको कथन करती है, 'एष उ ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते । एष उ ह्येवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते' अर्थ—यह ईश्वरहि जिस जीवको उच्च गतिमें ले जानेकी इच्छा करता है, तिससे शुभकर्म कराता है, और जिस जीवको नीच गतिमें ले जानेकी इच्छा करता है, तिससे अशुभ कर्म कराता है इति । तथा स्मृतिमें भी यहि वार्ता कथन करी है, 'अज्ञो जंतुरनीशोयमात्मनः सुखदुःखयोः । ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं नरकमेव वा' अर्थ—यह अज्ञानी जीव अपने सुख वा दुःखमें असमर्थ है इसको स्वर्ग अथवा नरकको जहां ईश्वर प्रेरता है तहां हि जावे है इति । तथा महाभारतके मोक्षपर्वमें भी लिखा है, 'नारायणेन दृष्टस्तु प्रतिबुद्धो भवेत्पुमान् । एवमात्मेच्छया राजन् प्रतिबुद्धो न जायते' । अर्थ—हे राजन् यह जीव नारायण भगवान्की कृपादृष्टिसेहि ज्ञानको प्राप्त होवे है, विना भगवान्की कृपासे केवल अपनी इच्छासे ज्ञानको नहि प्राप्त हो सकै है इति । सो इस प्रकार जीवोंका बंध और मोक्ष ईश्वरके अधीन होनेतें सर्व जीवोंको तिस ईश्वरकाहि आराधन करना योग्य है इति ॥ ३ ॥

कथं चैतद्विज्ञायते जीवः परतंत्र इति

अहिताचरणात् ॥ ४ ॥

अहिताचरणात् जीवस्य परतंत्रत्वं विज्ञेयं । नहि स्वतंत्रः सन् स्वकीयमहितमाचरेत् । कोह्यात्मानं पातयितु-

मिच्छति । जानन्नप्यनिष्टफलेषु कर्मसु प्रवर्त्तमानश्चायं स्वकीयं परतंत्रत्वमेवावेदयति । तथा च भारते दुर्योधन-वाक्यं 'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ॥ केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि' इति ॥ ४ ॥

यह वार्ता स्पष्ट कैसे जानी जावे कि जीव परतंत्र है तहां कहे हैं। 'अहिताचरणात्' अपने अहित कर्मोंकि आचरण करणेसें जीवका परतंत्रपणा प्रसिद्ध निश्चय होवे है क्योंकि जो यह स्वतंत्र होवे तो अपने अहितकारक कर्मोंको क्यों आचरण करे. कौन ऐसा पुरुष है जो अपने आत्माको अधोपातन किया चाहता है, अर्थात् कोई भी नहि चाहता. सर्व जीव अपने सुखकी वांच्छा करते हैं. और पुनः जानता हूया भी नरकादि अनिष्ट फलके देनेहारे कर्मोंमें प्रवृत्त होता हूया यह जीव अपना परतंत्रपणाहि सूचन करावे है. तथा महाभारतमें दुर्योधनका भी वचन है, 'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः । केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि' । अर्थ—मैं धर्मको जानता हुं परंतु उससे मेरी प्रवृत्ति नहि होती, तथा मैं अधर्मको भी जानता हुं. परंतु उससे मेरी निवृत्ति नहि होती है. सो मेरे हृदयमें स्थित भया कोई देव जैसे मेरेको प्रेरता है तैसेहि मैं करता हुं इति ॥ ४ ॥

विघ्नवाहुल्यदर्शनाच्च ॥ ५ ॥

विघ्नवाहुल्यदर्शनादपि जीवस्य परतंत्रत्वं बोद्धव्यं । दृश्यंते हि श्रेयःकर्मणि प्रवृत्तानां जीवानामाध्यात्मिकाधिदैविकादयो वहवो विघ्नाः प्रादुर्भवंतः । ते हि चिरेणोपार्जितानामपि भोगापवर्गफलानां सुकृतानां क्षणेनैव नैष्फल्यमुत्पादयंति । यथा तपःप्रभृतिकर्मस्वप्सरःसंसर्गादयः सुकृतविघातकाः प्रसिद्धा इतिहासपुराणादिषु शारीरकव्याधिप्रभृतयश्च । यदि जीवस्य स्वातंत्र्यं भवेत् न भवेत्तदा विघ्नवाहुल्यं, भवति च । प्रभवेच्च तन्निवारणे, न च शक्नोति । पश्चात्तापं च न कुर्यात्, करोति च । मृत्योश्च न भयं कुर्यात् विभेति च। अनिच्छन्नपि च कालाक्रांतः स्वजनधनसदनादिप्रियपदार्थैर्वियुज्यते तस्मादहिताचरणादनिवृत्तेर्हिताचरणे च विघ्नप्रवृत्तेरुभयथापि परतंत्र एव जीवः ॥ ५ ॥

किंच—

'विघ्नवाहुल्यदर्शनाच्च' विघ्नोंकी वहुलता देखनेसे भी जीवका परतंत्रपणा निश्चय करना चहिये. प्रायः यह बात देखनेमें आवे है कि जो लोक शुभ कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं. तिनमें अनेक प्रकारके आध्यात्मिकाधिदैविकादि विघ्न उत्पन्न हो जाते हैं. और सो बहुत कालसे संपादन किये हूये भोग और मोक्षके साधनभूत पुण्यसंच-

यको क्षणभरमें निष्फल कर देते हैं. जैसे कि वनमें जायकर तपस्या करनेवाले ऋषि लोकोंके पुण्य क्षीण करनेहारे अप्सरादिक विघ्न पुराणोंमें श्रवणमें आते हैं, और शरीरमें रोगादिक प्रकट होनेसेभी विघ्नरूप हो जाते हैं. जो यह जीव स्वतंत्र होता तो इसके शुभ कर्मोंमें विघ्न क्यों होते अथवा विघ्न होनेपर भी तिनके दूर करनेमें यह समर्थ होता परंतु तिनको निवारण नहि कर सकता है तथा पश्चात्ताप भी न करता परंतु करता देखनेमें आवे है. और मृत्युसे भय नहि करता परंतु करता है तथा नहि इछता हूया भी कालके वशभया अपने स्त्रीपुत्र धन मकानादिक प्यारे पदार्थोंसे वियोगको प्राप्त होवे है यातें अहिताचरणसे निवृत्ति नहि होनी, और हिताचरणमें विघ्नोंकी प्रवृत्ति हो जानी. दोनों प्रकारसे यह जीव परतंत्रहि सिद्ध होवे है इति ॥ ५ ॥

अथैतस्योभयात्मकदोषस्य को निवृत्त्युपायः ।

तन्निवृत्तिरीश्वरप्रसादात् ॥ ६ ॥

तस्योक्तदोषद्वयस्येश्वरप्रसादादेव निवृत्तिर्जायते। परमेश्वराराधनेनाशेषदुरितक्षये शुद्धांतःकरणः सन्नयमहिताचरणान्निवर्त्तते। तत्कृपाकटाक्षतश्चास्य सर्वेप्याध्यात्मिकादयो विघ्ना विनश्यंति। विघ्नाभावे चास्य सर्वाणि श्रेयांस्यचिरेणैव सिद्ध्यंति। तथाचोक्तं पतञ्जलिना 'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोप्यंऽतरायाभावश्च' इति। प्रसादश्चेश्वरस्य शास्त्रोक्तवि-

धिना तदाराधनेनैव जायते । यद्यपि सर्वत्र समदर्शिनः परमेश्वरस्य सर्वेषु जंतुषु सम एव प्रसादस्तथापीश्वराराधनजनितांतःकरणशुद्धीनामेव पुरुषाणां तद्ग्रहणयोग्यता भवति नेतरेषामशुद्धांतःकरणानां पापात्मनां नराणां । 'समोहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः । ये भजंति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥' इति भगवद्वचनादिति ॥ ६ ॥

इन दोनों प्रकारके दोषकी निवृत्ति किस उपायसे होवै है ऐसी जिज्ञासा होनेसे कहे हैं.

'तन्निवृत्तिरीश्वरप्रसादात्' अहिताचरणसे निवृत्ति नहि होनी और हिताचरणमें विघ्नोंका विघात होना इन दोनों दोषोंकी निवृत्ति ईश्वरके प्रसादसेहि होवे है क्योंकि परमेश्वरके आराधन करणेसे शुद्ध अंतःकरणवाला हूया यह पुरुष अहिताचरणसे निवृत्त हो जावे है. तथा ईश्वरके कृपाकटाक्षसे इसके आध्यात्मिकादि सर्व विघ्न नाश हो जाते हैं. और सर्व विघ्नोंके नाश हो जानेसे इस जीवके सर्व शुभ कर्म शीघ्रहि सिद्ध हो जाते हैं. यह वार्ता योगशास्त्रमें पतंजलिमुनिने भी कथन करी है 'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोप्यंतरायाभावश्च' अर्थ—ईश्वरके आराधना करनेसे आत्मस्वरूपका ज्ञान और सर्व प्रकारके विघ्नोंकी निवृत्ति होवे है इति । सो शास्त्रोक्त विधिसे ईश्वरके आराधन करनेसेहि यह जीव ईश्वरकी

कृपाका पात्र होवे है. यद्यपि सर्वत्र समदर्शी परमेश्वरकी सर्व जीवोंपर समानहि कृपा है तथापि जिन पुरुषोंका ईश्वरके आराधनसे अंतःकरण शुद्ध हो रहा है सोई ईश्वरकी कृपाके ग्रहण करनेके योग्य होते हैं दूसरे मलिन चित्तवाले पापी पुरुष तिसकी कृपाको ग्रहण नहि कर सकते. जैसे सूर्यके प्रतिबिंबको निर्मल दर्पण ग्रहण करता है, मलिन नहि कर सकता. तथा गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्‌ने भी कहा है, 'समोहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः। ये भजंति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्'। अर्थ—हे अर्जुन यद्यपि मैं सर्वभूत प्राणियोंको सर्वदा समान भावसे देखता हुं किसीको अपना शत्रु वा मित्र नहि समझता हुं. तथापि जो पुरुष मेरा आराधन करते हैं सो मेरे परस्पर आत्मारूप हैं इति ॥ ६ ॥

संति हि खल्वहिताचरणस्याध्यात्मिकादिविघ्नजातस्य च निवारकाणि बहून्युपायांतराणि। तथा हि सच्छास्त्रश्रवणेनावलोकनेन वाप्यहिताचरणान्निवृत्तिर्जायते। शरीरगतव्याध्यादयश्च विघ्ना नानाविधौषधसेवनाद्यैर्निवारयितुं शक्यंते। दैवप्रेरितातिशीतातपग्रहपीडादिजनिताश्च वसनच्छत्रजपादिभिर्निर्ह्रियंते सर्पवृश्चिकसिंहव्याघ्रादिभूतसंसर्गजाश्च विषघ्नौषधिशस्त्रादिभिरपाकर्तुं शक्यंते। तत्किमुतत्रेश्वराराधनेनेत्यत्राह।

नान्यतस्तु साऽत्यंतताभावात् ॥ ७ ॥

तुशब्देन पूर्वपक्षं व्यावर्त्तयति । सा पूर्वोक्तदोषद्वयस्य निवृत्तिरीश्वरादन्यतः अन्यस्मात्साधनविशेषान्न भवतीति विज्ञेयम् । कुतः अत्यंतताभावात् । नहि शास्त्रावलोकनमात्रेणाहिताचरणस्यात्यंतनिवृत्तिर्जायते । विदुषामपि सांसारिकविषयेषु प्रवृत्तिदर्शनात् । न चौषधसेवनाद्यैर्व्याध्यादीनामत्यंताभावः कर्तुं पार्यते । कदाचिन्निवृत्तेपि रोगादौ कालांतरे पुनस्तदुत्पत्तिर्दृश्यते । तथा च सांख्यसूत्रं 'न दृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेप्यनुवृत्तिदर्शनात्' इति । अतोऽत्यंतैकांतविघ्ननिवृत्तिपुरःसरं श्रेयःसिद्ध्यर्थमवश्यमीश्वराराधनमेव कर्तव्यमिति ॥ ७ ॥

पूर्व जो कहा कि ईश्वरकी कृपासेहि दोनों दोषोंकी निवृत्ति होवे है सो वार्ता संभवे नहि. क्योंकि अहिताचरण और आध्यात्मिकादि विघ्नोंके दूर करनेवाले और भी बहुतसे उपाय हैं. जैसे कि सत् शास्त्रोंके श्रवण तथा अवलोकन करनेसे अहिताचरणसे निवृत्ति हो जावे है. और आध्यात्मिक जो शरीरगत रोगादि विघ्न हैं सो नानाप्रकारकी औषधियोंकरके निवृत्त हो सकते हैं और आधिदैविक जो अतिशीत आतपग्रहपीडादि विघ्न हैं सो वस्त्र छत्र जपादिकोंकरके दूर हो सकते हैं. तथा आधिभौतिक जो सर्प वृश्चिक सिंह व्याघ्रादिजन्य बाधारूप विघ्न हैं सो विषघ्न औषधि शस्त्रादि-

कोंकरके निवृत्ति हो सकते हैं, तो पुनः ईश्वरके आराधन करनेकी क्या आवश्यकता है. इस प्रकारकी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'नान्यतस्तु साऽत्यंतताभावात्' पूर्वोक्त दोनों दोषोंकी जो निवृत्ति है सो ईश्वरकी कृपाके विना अन्य उपाय करके नहि हो सकै है. क्योंकि अन्य उपायों करके जो तिनकी निवृत्ति होवे है सो अत्यंत करके नहि होवे है. काहेतें केवल शास्त्रावलोकनसें अहिताचरणसे अत्यंत निवृत्ति नहि हो सकै है, क्योंकि विद्वान् पुरुषोंकीभी सांसारिक विषयोंमें प्रवृत्ति देखनेमें आवे है तैसेहि प्रथम तो औषधादिकोंसे रोगादिकोंकी अत्यंत निवृत्ति होनीहि संदिग्ध है. और जो कदाचित् तिनकी निवृत्ति होयभी जावे तो पुनः कालांतरमें तिनकी उत्पत्ति होजावे है. तथा सांख्यशास्त्रमेंभी लिखा है, 'न दृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेप्यनुवृत्तिदर्शनात्'। अर्थ—औषधादिक लौकिक साधनोंकरके सर्व दुःखोंकी निवृत्ति नहि होवे है. क्योंकि एकवार रोगादिकोंकी निवृत्ति होनेसेभी पुनः कालांतरमें तिनकी आवृत्ति देखनेमें आवे है इति। यातें एकांत और अत्यंत सर्व विघ्नोंकी निवृत्तिपूर्वक कल्याणकी सिद्धिके लिये अवश्य ईश्वरकाहि आराधन करना योग्य है इति ॥ ७ ॥

ननु नायं नियमोस्तीश्वरप्रसादादेव सर्वेषां श्रेयोत्रास्तिविघ्ननिवृत्तिश्च भवति, भवत्यन्येषां देवानां महर्षीणां प्रसा-

दादपि । तथा हि सुरेन्द्रप्रसादेन प्रतर्दनो मुक्तिपदं जगाम सनत्कुमारप्रसादेन नारदो जीवन्मुक्तो बभूव । नारदप्रसादेन च बहवो राजानो भवबंधनैर्विमुक्ता दत्तात्रेयानुकंपयालर्को विमुक्तो याज्ञवल्क्यकृपया जनकश्चेत्यादयः श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणेषु शतशः श्रूयंते तत्राह ।

परतो दर्शनादिति चेन्नेश्वरानुग्रहादेव तद्योगात्॥

परतः ईश्वरादन्यस्मादपि देवादेर्जनानां श्रेयःप्राप्तिर्दृश्यते इति यदुच्यते तन्न सम्यक् । कुतः ईश्वरानुग्रहादेव तद्योगात् तस्य तस्य देवादेर्यः समागमः स ईश्वरानुग्रहादेव भवति परमेश्वरकृपयैव जंतोस्तादृशानां देवानां महर्षीणां च समागमो भवति । नान्यथा नो चेत्सर्वेषां सर्वत्र कथं न भवति समाराधनविशेषजनितेश्वरानुग्रहप्रेरितांतःकरणा ह्येव देवादयः केनचिज्जंतुना सह योगं प्राप्य तस्य वरप्रदानेनोपदेशेन वा भोगं मोक्षं वा साधयंतीत्यवगंतव्यं । 'यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति । तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहं ॥ स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते । लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्' इति भगवद्वचनात् । ईश्वरानुग्रहाभावे तु पश्वादियोनौ निपतितानां जंतूनां देवादीनां समागमोपि दुर्लभ एव कुतस्तरां श्रेयोधिगमः । तथाचोक्तं भगवता

श्रीकृष्णेन 'क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु । आसु-रीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ॥ मामप्राप्यैव कौंतेय ततो यांत्यधमां गतिम्' इति ॥ ८ ॥

इस वार्ताका नियम नहि है कि ईश्वरकी कृपासेहि सर्व दोषोंकी निवृत्ति और मोक्षपदकी प्राप्ति होवे है. क्योंकि अन्य देवता तथा ऋषियोंकी कृपासेभी अनेक पुरुषोंका कल्याण होता भया है, जैसेकि इन्द्रकी कृपा और उपदेशसे प्रतर्दन राजा मोक्षपदको प्राप्त होता भया है. सनत्कुमारके उपदेश करके नारदमुनि जीवन्मुक्त होता भया है. और नारदमुनिके समागमसे बहुतसे राजा ज्ञानको प्राप्त होते भये हैं. तथा दत्तात्रेयकी अनुग्रहसे अलर्क और याज्ञव-ल्क्यकी कृपासे जनक राजा मोक्षपदको प्राप्त होता भया है, इत्यादि श्रुति स्मृति भारतादि इतिहासोंमें अनेक पुरुष देवता और ऋषि-योंकी कृपासे परमपदको प्राप्त हुये श्रवणमें आते हैं, इसप्रकारकी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'परतो दर्शनादिति चेन्नेश्वरानुग्रहादेव तद्योगात्' तुमने जो कहाकि ईश्वरसे भिन्न देवता तथा ऋषियोंकी कृपासेभी कल्याणकी प्राप्ति श्रवणमे आवे है सो वार्ता युक्त नहि है. क्योंकि देवता और ऋषियोंका जो समागम है सो भी ईश्वरकी कृपासेहि जीवको प्राप्त होवे है. तिसके विना वैसे देवता ऋषि और महात्मा पुरुषोंका समागम नहि हो सकै है नहि तों सर्व पुरुषोंको क्यों नहि हो

जावे है. यातें इस जीवके पूर्व किये हुये भजनसे प्रसन्न भया ईश्वरहि तिन देवतादिकोंको प्रेरणा करे है. और सो तिसकरके प्रेरित हुयेहि तिस जीवके साथ मिलकरके वरदानसे अथवा उपदेश देकरके तिस जीवको स्वर्गादि भोगोंकी अथवा मोक्षकी प्राप्ति करा देते हैं. यह वार्ता गीतामें श्रीकृष्णजीने भी कथन करी है 'यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति। तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्। स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते। लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्'॥ अर्थ—हे अर्जुन, जो जो भक्त जिस जिस देवताका श्रद्धापूर्वक आराधन करना चाहता है तिस तिस पुरुषकी तदनुसारहि श्रद्धा मैं दृढ कर देता हुं, पश्चात् सो पुरुष तिस श्रद्धाकरके युक्त भया तिस देवताका आराधन करता है और तिस देवतासे मेरी दी हुई कामनायोंको प्राप्त होवे है इति। और जो ईश्वरकी अनुग्रह नहि होवे तो पशुपक्षि आदि योनियोंको प्राप्त भये जीवोंको तिन देवतादिकोंका समागम होनाहि असंभव है तो कल्याण कैसे हो सकता है. यह वार्ताभी श्रीकृष्णजीने गीतामें कथन करी है 'क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु। आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि। मामप्राप्यैव कौंतेय ततो यांत्यधमां गतिम्'॥ अर्थ-हे अर्जुन अशुभ कर्म करनेवाले पापी पुरुषोंको मैं सर्वदाहि असुरादिक नीच योनियोंमें डालता हूं, और सो जन्मजन्मसें वारंवार तिन नीच योनियोंको प्राप्त हुये मेरे स्वरूपको नहिं प्राप्त होकर

पुनः पुनः अधम गतिको प्राप्त होते हैं इति ॥ ८ ॥

ननु तत्र तत्र श्रुतिस्मृतीतिहासेषु देवानां महर्षीणामेव प्रसिद्धनामानि श्रूयंते किमु तत्रेश्वरानुग्रहकल्पनया तत्राह

तदंशभूतत्वाच्चेतरेषां न विरोधः ॥ ९ ॥

इतरेषां देवानां महर्षीणां च तदंशभूतत्वात् तस्यैवेश्वरस्य देवा महर्षयश्चावयवभूताः संति । तथाचोक्तं श्वेताश्वतरोपनिषदि 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं । तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगदि'ति 'वेदानां सामवेदोस्मि देवानामस्मि वासवः। महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।' इत्यादिभगवद्वचनाच्च । अतो देवादीनां नामश्रवणेपि नेश्वरतः पृथक्त्वं भवितुमर्हति। यद्यपि 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' इत्यादि प्रमाणात् सर्वेपि जीवाः परमेश्वरांशभूता एव संति तथापि सत्वगुणप्रधानेषु देवादिष्वेवेश्वरांशाधिक्यं भवत्यतस्तेषामेवात्रांशशब्देन ग्रहणं कृतमित्यवगंतव्यं । तथाच भगवद्गीतायां 'यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसंभवम्' इति यदेवं देवादीनामीश्वरांशत्वं प्रसिद्धमस्ति तदा देवानां महर्षीणां च प्रसादोपीश्वरप्रसाद एव मंतव्य इति ॥ ९ ॥

सर्वत्र श्रुति स्मृति इतिहासादिकोंमें प्रसिद्ध देवता तथा ऋषियोंकेहि नाम श्रवणमें आते हैं तो फिर तहां ईश्वरकी अनुग्रहकी कल्पना करनेका क्या प्रयोजन है इसप्रकारकी शंका होनेतें कहे हैं.

'तदंशभूतत्वाच्चेतरेषां न विरोधः' यद्यपि इतिहास प्रसंगोमें देवता और ऋषियोंकेहि नाम श्रवणमें आते हैं तथापि सो देवता और ऋषि लोकभी ईश्वरकेहि अंशरूप हैं । तथा कृष्णयजुर्वेदीय श्वेताश्वतरउपनिषत्‌मेंभी लिखा है 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं । तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्' । अर्थ-मूलप्रकृतिकोहि माया जानना चहिये और तिस मायाके अधिष्ठाताको परमेश्वर जानना चहिये, तिसहि परमेश्वरके अवयवरूप देवताऋषि मनुष्यादिकोंसे यह सर्व जगत् व्याप्त होय रहा है इति । तथा भगवत् गीतामेंभी लिखा है 'वेदानां सामवेदोस्मि देवानामस्मि वासवः । महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्' । अर्थ-हे अर्जुन, सर्व वेदोंमें सामवेद मैं हुं, देवतायोंमें इन्द्र मैं हुं, ऋषियोंमें भृगु मैं हुं, और सर्व वाणीमें प्रणव मैं हुं, इति । यातें देवता और ऋषिलोक ईश्वरसे भिन्न नहि हैं, यद्यपि 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' इत्यादि प्रमाणोंसें सर्वहि चराचर जीव ईश्वरके अंशभूत हैं तथापि देवता और ऋषियोंमें ईश्वरका अंश अधिक होनेतैं इस स्थलमें तिनहिका ग्रहण किया है. तथा गीतामें श्रीकृष्णजीकाभी वचन है 'यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोंशसंभवम् ।'

अर्थ-हे अर्जुन, इस जगत्में जो जो पदार्थ विभूतिमान् शोभावान् और प्रतापवान् हैं सो सो तुं मेरे तेजोरूप अंशसेहि उत्पन्न हुया जान इति। इस प्रकारसे जव देवता और ऋषिभी ईश्वरके अंशभूत हैं तो तिनका अनुग्रह होनाभी ईश्वरकाहि अनुग्रह जानना चाहिये इति ॥ ९ ॥

यदीत्थं देवा महर्षयश्चेश्वरांशभूता एव तर्हि तेषामेव वृक्षशाखोद्धरणन्यायेन सुकरतयाराधनं कार्यं किमु वहुप्रयासेनेश्वराराधनेनेत्यत्राह।

विशिष्टफलहेतुत्वादीशस्य ॥ १० ॥

यद्यपि देवाना महर्षीणामपीश्वरांशभूतत्वेनाराधनं न विरुद्धं तथापीश्वरस्य विशिष्टफलहेतुत्वात् तस्यैवाराधनं कर्तव्यं नेतरस्येत्यर्थः। देवादीनां परिमितशक्तिकत्वात् परमेश्वरस्य चानंतशक्तिमत्त्वात् फलदाने युक्तमेव विशिष्टत्वमीश्वरस्य नहि सुरेन्द्रः प्रसन्नः सुरेन्द्रत्वादधिकं पदं किंचित् दातुं शक्नोति ईश्वरस्तु प्रसन्नोऽखिलब्रह्मांडाधिपत्यमपि क्षणेन दद्यादतस्तयोरीश्वरदेवतांतरयोराराधनप्रयाससाम्येपि फले वैषम्यादीश्वरस्यैवाराधनं युक्तमिति ॥ १० ॥

ननु इसप्रकार जब देवता और ऋषिलोक ईश्वरके अंशभूत हैं तो वृक्ष उत्पाटनसे शाखा काटनेकी न्यांई सुगम होनेतें तिन्हिका

आराधन करना चहिये अतिप्रयाससाध्य ईश्वरके आराधनसे क्या प्रयोजन है ऐसी शंका होंनेतें समाधान कथन करे हैं.

'विशिष्टफलहेतुत्वादीशस्य' यद्यपि ईश्वरके अंशभूत होनेतें देवता और महर्षियोंका आराधनभी विरुद्ध नहि है तथापि ईश्वर-काहि आराधन करना योग्य है क्योंकि विशिष्टफलहेतुत्वात् कहिये ईश्वरका आराधन सर्वसे अधिक फलका हेतु है, देवतादिकोंकी जो सामर्थ्य है सो तो परिमित अर्थात् स्वल्प है और ईश्वर तो अनंत-शक्तिमान् है, जो कदाचित् इन्द्र प्रसन्न होजावे तो अपनी इन्द्रप-दवीसे अधिक कुछ नहि दे सकता और जो ईश्वर प्रसन्न होजावे तो क्षणभरमें सर्व ब्रह्मांडका आधिपत्य दे देवे, यातें अन्य देवता और ईश्वरके आराधनमें प्रयासके तुल्य होनेपरभी फलमें न्यूनाधिक भाव होनेतें ईश्वरकाहि आराधन करना योग्य है, अन्य देवतादि-कोंका नहि इति ॥ १० ॥

इतश्चेश्वराराधनमेव युक्तम् ।

तल्लब्धत्वाच्चेतरासिद्धेः ॥ ११ ॥

इतरसिद्धेःइतरेषां देवादीनां या या वरशापदानादिरूपा सिद्धिर्वर्तते सा सा सिद्धिस्तैस्तैर्देवादिभिस्तस्यैवेश्वरस्य

सकाशादेव लब्धास्ति पूर्वभवेषु जपतपोव्रतादिभिः सुकृतविशेषैरीश्वराराधनं कृत्वा तत्प्रसादादेव देवत्वादिकं तैरवाप्तमिति विज्ञेयं। नहि तेषां देवादीनामनादिसिद्धत्वं क्वचिदपि श्रूयते। श्रूयते तु परमेश्वरस्य। 'तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवत'मित्यादिश्रुतिशतैरुपगीयमानं। अतः सर्वोत्कृष्टफलहेतुत्वादीश्वरस्यैवाखिलश्रेयोभिलाषिभिराराधनं कर्तव्यमिति ॥ ११ ॥

किं च—

'तल्लब्धत्वाच्चेतरसिद्धेः' अन्य देवतादिकोंमें जो जो वरदान और शाप देनेकी सामर्थ्य है सो सो सर्वहि तिन तिन देवतादिकोंने ईश्वरसेहि पाई है, पूर्वजन्मोंमें जपतपादिक पुण्यकर्म करके ईश्वरकी प्रसन्नतासेहि सो देवतादिक भावको प्राप्त होते भये हैं, क्योंकि देवतादिकोंका अनादि सिद्धपना कहींभी शास्त्रोंमें श्रवणमें नहि आवे है, किंतु केवल ईश्वरकाहि अनादिसिद्धपणा श्रवणमें आवे है, जैसेकि श्वेताश्वतरउपनिषत्में कहा है 'तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतं'। अर्थ—सो ईश्वर ब्रह्मादिक ईश्वरोंका परम महाईश्वर है और इन्द्रादिक देवतायोंकाभी परम पूज्य दैवत है इति। यातें सर्वसे उत्तम फलका हेतु होनेतें सर्व मुमुक्षु पुरुषोंको केवल ईश्वरकाहि आराधन करना योग्य है इति ॥ ११ ॥

यद्यप्येतद्युक्तमुच्यते तथापि फलानुसारेणाराधनमपीश्वरस्य राजानुचरन्यायेन दुःसाध्यमेवान्यदेवादेरित्यत्राह।

चित्तमात्रसाध्यत्वान्न दुष्करम् ॥ १२ ॥

भ्रम एवायं जनताया यदीश्वराराधनमन्यदेवादेर्दुः-साध्यं मन्यते । कुतः चित्तमात्रसाध्यत्वात् यथान्यदेवादीनामाराधने तत्तच्छास्त्रोक्तबलिहोममंत्राद्यपेक्षा वर्तते न तथेश्वराराधने । परमेश्वराराधनं तु चित्तेनैव केवलेन बाह्योपकरणानपेक्षेण सुसाध्यं भवति । यद्यपि यज्ञदानतपःप्रभृतीनि दुष्कराण्यपि कर्माणीश्वरार्पणबुद्ध्यानुष्ठितानीश्वराराधनोपयोगीनि भवंतीति सत्यं तथापि यथा केवलेनैकाग्रेण मनसा चिंतितः परमेश्वरः प्रसन्नो भवति न तथा यज्ञादिभिस्तुष्यति । तथाचोक्तं वासिष्ठे । 'ध्यानोपहार एवात्मा ध्यानमस्य महार्चनं । विना तेनेतरेणायमात्मा लभ्यत एव नो' इति यज्ञादीनि कर्माणि तु विक्षिप्तचेतसां तदुपयोगितया विहितानीत्यवगंतव्यमिति ॥ १२ ॥

यद्यपि यह तुमारा कथन ठीक है परंतु जैसे अनुचरकी अपेक्षासे राजाका आराधन कठिण होवे है तैसेहि अन्य देवतादिकोंसे ईश्वरका आराधनभी दुष्कर होवेगा, ऐसी शंका होनेतें समाधान निरूपण करे हैं ।

'चित्तमात्रसाध्यत्वान्न दुष्करम्' अन्य देवतायोंसे ईश्वरका आराधन कठिन है यह केवल अज्ञानी लोकोंकी भूल है, क्योंकि ईश्वरका आराधन तो केवल चित्तसेहि हो सकता है; जिस प्रकार दूसरे

देवतायोंके आराधन करनेमें भिन्न भिन्न तंत्रशास्त्रोंकी रीतिसे वलिदान होम और मंत्रादिकोंकी आवश्यकता होवे है तैसे ईश्वरके आराधनमें नहि होती है, ईश्वरका आराधन तो बाह्यसामग्रीके विना केवल एकाग्र मन करकेहि ठीक होसके है. यद्यपि यज्ञ तप दानादिक बडे बडे दुष्कर कर्मभी ईश्वरार्पणवुद्धिसे किये हुये ईश्वराराधनके उपयोगी होते हैं तथापि जैसे केवल एकाग्र मनसे आराधन करनेसे ईश्वरकी प्रसन्नता शीघ्र होवे है तैसे यज्ञादिकोंसें नहि होवे है तथा योगवासिष्ठमेंभी लिखा है। 'ध्यानोपहार एवात्मा, ध्यानमस्य महार्चनं, विना तेनेतरेणायमात्मा लभ्यत एव नो'। अर्थ–इस अंतर्यामी आत्माका ध्यानहि उपहारकी सामग्री है और ध्यानहि इसका परम पूजन है तथा ध्यानके विना दूसरे किसी उपाय करके इसकी प्राप्तिभी नहि होवे है इति। और जो कहीं वेदमें यज्ञादि कर्मभी ईश्वराराधनके उपयोगी कथन किये हैं सो तो विक्षिप्तचित्तवालोंके वास्तेहि तिनका विधान जानना चाहिये इति॥

इतश्चेश्वराराधनं न दुष्करम्।

अधिकारानियमाभावाच्च ॥ १३ ॥

यथान्यदेवताराधनसाधनेषु बृहस्पतिसवराजसूयादियागेषु ब्राह्मणक्षत्रियादय एवाधिक्रियंते नेतरे नैवमीश्वराराधने जातिगुणादिविशेषनियमोस्ति। सर्वत्र हि सर्वेषां जंतू-

नामीश्वराराधनमप्रतिषिद्धं । तथाह स्वयमेव वासुदेवः 'मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येपि स्युः पापयोनयः । स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यांति परां गतिमिति' ॥ १३ ॥

किंच—

'अधिकारनियमाभावाच्च' जैसे अन्य देवतायोंके आराधनके साधनभूत बृहस्पतिसव राजसूयादि यज्ञोंमें ब्राह्मण और क्षत्रियादिकोंकाहि अधिकार है दूसरोंका नहि तैसे ईश्वरके आराधनमें जाति गुणादिकोंका कुछ विशेष नियम नहि है, क्योंकि श्रुति स्मृतियोंमें किसी जीवकोभी ईश्वराराधन करनेका निषेध नहि किया है तथा गीतामें श्रीकृष्णजीकाभी वचन है । 'मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येपि स्युः पापयोनयः । स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यांति परां गतिम्' । अर्थ—हे पार्थ, स्त्रियां वैश्य और शूद्र तथा अन्यभी जो नीच योनीवाले जीव हैं सो मेरी शरणमें आनेसे सर्वहि परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं इति

परमेश्वरोस्तीति केचिदाहुर्नास्तीति पुनरन्ये जल्पंत्यतो विवादास्पदत्वादीश्वरस्य सद्भावनिश्चयाभावे कथं तस्याराधनं कुर्महे तत्राह ।

प्रमाणसिद्धत्वान्न विवादः ॥ १४ ॥

ईश्वरसद्भावे विवादो नास्तीति विज्ञेयं कुतः प्रमाणसिद्धत्वात् श्रुतिस्मृतीतिहासादिप्रमाणैरीश्वरस्य शतशो

निरूपितत्वात्। तथाहि 'तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतं। पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यं'। विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ईशं ज्ञात्वामृता भवंति। भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः। भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पंचमः। य ईशेस्य द्विपदश्चतुष्पदः ईशावास्यमिदं सर्वमित्यादिवेदवचनानि 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया।' क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टःपुरुषविशेष ईश्वर इत्यादिस्मृतिवाक्यानि चेश्वरस्य स्वरूपं बोधयंतीति॥

यद्यपि पूर्वोक्त प्रकारसे ईश्वरका आराधन अवश्यमेव करना योग्य है परंतु कोई लोक कहते हैं कि परमेश्वर है और कोई कहते हैं कि परमेश्वर नहि है इस प्रकार ईश्वरको विवादास्पद होनेतें जबपर्यंत तिसके सद्भावकाहि निश्चय नहि है तो हम किस तरह ईश्वरका आराधन करें इस प्रकारकी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं।

'प्रमाणसिद्धत्वान्न विवादः' ईश्वरके सद्भावमें विवाद नहि समझना चहिये क्युंकि श्रुति स्मृति इतिहासादिक अनेक प्रमाणोंकरके ईश्वरका अस्तित्व निरूपण किया हुया है। जैसेकि कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतरउपनिषत्में लिखा है। 'तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतं। पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवने-

शमीड्यं । अर्थ—जो ब्रह्मादिक ईश्वरोंकाभी परम महान् ईश्वर है और सर्व देवतोंकाभी परम दैवत है तथा सर्व प्रजापतियोंकाभी पति है और जो प्रकृतिसेभी परे सर्व भुवनोंका नियंता परमपूज्य देव है, तिसके स्वरूपको हम ऋषि लोक जानते हैं इति । तथा यजुर्वेदीय तैत्तिरीयउपनिषत्मेंभी लिखा है । 'भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः। भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पंचमः।' अर्थ—इस ईश्वरके भयकरके वायु चलता है और भयकरके सूर्य उदय होता है और भयकरके अग्नि प्रज्वलित होता है और भयकरके इन्द्र वर्षा करता है और ईश्वरके भयकरकेहि मृत्यु दौडता है इति । तथा अन्य त्रभी वेदमें लिखा है । 'य ईशेस्य द्विपदश्चतुष्पदः ईशावास्यमिदं सर्वं' अर्थ-जो ईश्वर द्विपदवाले तथा चतुष्पदवाले इस जगत्के सर्व जीवोंका प्रेरक नियंता है तथा यह सर्व जगत् ईश्वरसे व्याप्त भया देखना चहिये इत्यादि अनेक वेदके वचन ईश्वरके स्वरूपका निरूपण करते हैं तथा । 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया, ' । अर्थ-हे अर्जुन, सर्वभूत प्राणियोंके हृदयकमलमें ईश्वर विराजमान है और सोई सर्वभूत प्राणिय़ोंको मायारूप चक्रपर चढायकरके भ्रमण करावता है इति । 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः' । अर्थ—अविद्यादि क्लेश शुभाशुभकर्म तिन कर्मोंके फल और तिनके संस्कारोंसे रहित जो पुरुषविशेष है सोई ईश्वर है इति । इत्यादि अनेक स्मृति

तथा सूत्रादिकोंके वचनभी ईश्वरके स्वरूपको बोधन कराते हैं, यातें ईश्वरके सद्भावमें किसी प्रकारकी शंका नहि संभवे है इति ॥१४॥

एवमीश्वरसद्भावे शास्त्रप्रमाणमुक्त्वाधुनानुमानेनापीश्वरस्य निश्चयः कर्तव्य इत्याह ।

जगज्जन्मादिहेतुत्वात् ॥ १५ ॥

जगतोस्य दृश्यमानस्य भूम्यादेः प्रपञ्चस्योत्पत्तिहेतुत्वादीश्वरोस्तीत्यनुमेयं आदिशब्देनात्र स्थितिविनाशावपि गृह्येते । 'जन्माद्यस्य यत' इति द्वैपायनसूत्रात् 'यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मे' त्यादिश्रुतिवचनाच्चेश्वर एव जगत्कारणत्वेनानुमीयत इति ॥ १५ ॥

इस प्रकारसे शास्त्रप्रमाणसे ईश्वरका वर्णन करके अब अनुमानसेभी ईश्वरका निश्चय करना योग्य है यह वार्ता कथन करे हैं ।

'जगज्जन्मादिहेतुत्वात्' इस चराचर जगत्की उत्पत्ति स्थिति और विनाशका कारण होनेतें ईश्वरके सद्भावका निश्चय करना चहिये । यह वार्ता ब्रह्ममीमांसामें व्यासजीनेभी कथन करी है । 'जन्माद्यस्य यतः' । अर्थ—इस जगत्की उत्पत्ति स्थिति और नाश जिससे होवे है सोई ईश्वर है इति । तथा यजुर्वेदीय तैत्तिरीयउपनिषत्मेंभी लिखा है 'यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि

जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति'। अर्थ-जिसके सकाशसे यह सर्व भूतप्राणि उत्पन्न होते हैं, जिसकी पालनासे यह जीते हैं, और अंतमें जिसके विषे लीन होते हैं सो परब्रह्म परमेश्वर जानने योग्य है इति। इत्यादि श्रुति स्मृतियोंसे ईश्वरकाहि जगत् कारणपना अनुमित होवे है इति ॥ १५ ॥

स्वत एव सर्वे भावा उत्पद्यंते विनश्यंति च किमु कारणानुमानेनेत्यत्राह।

नाकारणं दृष्टविरोधात् ॥ १६ ॥

अकारणमेवैतदखिलं जगदुत्पद्यते नैवं मंतव्यं कुतः दृष्टविरोधात् नह्यकारणं किमपि वस्तु जायमानं दृश्यते यद्यद्यत्रयत्रोत्पद्यते तत्तदखिलं तत्तत्कारणादेवोत्पद्यमानं पश्यामस्ततो युक्तमेव कारणानुमानमिति ॥ १६ ॥

शंका यह सर्व पदार्थ स्वतःहि उत्पन्न और नाश है होते रहते हैं इनमें कारणके अनुमान करनेकी क्या आवश्यकता है तहां कहे हैं।

'नाकारणं दृष्टविरोधात्' यह जगत् विनाहि कारणसे उत्पन्न होवे है यह वार्ता नहि मानना चहिये क्योंकि दृष्टविरोधात् कहिये यह वार्ता दृष्टसे विरुद्ध है, कोईभी पदार्थ विनाकारण उत्पन्न होता देखनेमें नहि आवे है, जो जो पदार्थ जहां जहां उत्पन्न होवे है सो सो अपने कारणसेहि उत्पन्न होता हम देखते हैं, यातें जगत्की उत्पत्तिमें भी कारणका अनुमान करणा युक्तहि है इति ॥ १६ ॥

इतश्च नेदमकारणम् ।

कारणादानप्रवृत्तेश्च ॥ १७ ॥

येन येन कर्त्रा यद्यत्कार्यमुत्पाद्यं भवति तेन तेन प्रथमतस्तस्य तस्य कारणमादीयते यथा कुलालसुवर्णकारादयो घटभूषणादिनिर्माणमिच्छंतो मृत्सुवर्णादीनां कारणपदार्थानां ग्रहणं कुर्वंति यदा भवेदकारणं वस्तुजातं न भवेत्तदा कारणादानप्रवृत्तिर्लोकस्य दृश्यते च अतः कार्यत्वसाधर्म्यान्नेदमकारणं जगदिति ॥ १७ ॥

किं च—

'कारणादानप्रवृत्तेश्च' जो जो कर्ता पुरुष जिस जिस पदार्थको बनाना चाहता है सो सो पहले तिस तिसके कारणका ग्रहण करता है जैसे कि कुलाल और सुवर्णकारादिक घट और भूषणादिकोंके निर्माण करणेकी इच्छासे मृत्तिका सुवर्णादिक कारण पदार्थोंकाहि ग्रहण करते हैं । जो कदाचित् यह सर्व पदार्थ विना कारणके होते तो कोईभी लोक तिनकारण पदार्थोंका ग्रहण नहि करते । और करते देखनेमें आते हैं, यातें इसीप्रकारसे जगत्‌भी घटपटादिकोंकी न्यांई कार्य है इसलिये इसकाभी कोई कारण अवश्य अंगीकार करना योग्य है इति ॥ १७ ॥

स्वभाववादिमतमपाकर्तुं पुनराक्षिप्याह ।

स्वभावादिति चेन्न नियमदर्शनात् ॥ १८ ॥

स्वभाव एवायं पदार्थानां यत् तत्तद्रूपेणोद्भवनं तद्यथा वीर्यस्य शरीराकारेणोद्भवनं वीजस्य वृक्षाकारेणेत्येवं जले द्रवत्वमग्नावुष्णत्वं वायौ सदागतित्वं स्वभावसिद्धमित्याद्यखिलं जगत्स्वभावादेव जायते, न तत्र कर्त्रपेक्षास्तीति चेत् नैवमंगीकार्यम् । कुतः । नियमदर्शनात् । दृश्यते हि पदार्थोत्पत्तौ नियमः। अस्मादेव पदार्थादस्य वस्तुन उत्पत्तिर्नान्यत इत्येवं सर्वत्र कार्यकारणभावनियम उपलभ्यते । यदि स्वभावत एव सर्वे भावा जायेरन् न भवेत्तदायं नियमः सर्वस्मादपि सर्वस्य वस्तुनः सर्वत्रोत्पत्तिर्जायेत न च जायते तस्मान्न स्वभावो जगत्कारणमिति ॥ १८ ॥

अब स्वभाववादीके मतको निराकरण करनेके लिये पुनः आक्षेपपूर्वक समाधान कथन करे हैं.

'स्वभावादिति चेन्न नियमदर्शनात्' पदार्थोंका यह स्वभावहि है कि सो अपने अपने स्वरूपसे उत्पन्न हो जाते हैं । जैसेकि वीर्य शरीररूपसे उत्पन्न हो जाता है, और बीज वृक्षरूपसे प्रकट हो जाता है । तथा जलमें द्रवपणा अग्निमें उष्णपणा और वायुमें सदागतिपणा स्वभावसेहि सिद्ध है इत्यादि सर्वहि जगत् स्वभावसेहि उत्पन्न होवे है । तिसमें किसी कर्ताकी अपेक्षा नहि है इसप्रकारकी शंका वादी करे तो तहां कहे हैं कि यह वार्ता तुमारी मानने योग्य

नहि है। क्योंकि नियमदर्शनात् कहिये सर्व पदार्थोंकी उत्पत्तिमें नियम देखनेमें आवे है अमुक पदार्थसेहि अमुक वस्तुकी उत्पत्ति होवे है अन्यसे नहि होवे है। इसप्रकारसे सर्वत्र कार्यकारणभावकी प्रतीति होवे है। जो स्वभावसेहि सर्व पदार्थोंकी उत्पत्ति होती तो यह नियम नहि होना चहिये। सर्व जगासे सर्व पदार्थ उत्पन्न हो जाते, और होते देखनेमें नहि आते हैं। यातें स्वभाव जगत्का कारण नहि हो सकता है इति ॥ १८ ॥

भवतु नाम नियमः शक्तिरेवैतादृशी तत्र तत्र पदार्थेषु विद्यते। यथा तिलेषु तैलं बीजे वृक्षविस्तारः शुक्रे शरीरं दहनत्वं चाग्नावित्यादि सर्वत्र तत्तत्कार्यजननसामर्थ्यं स्वभावसिद्धं पदार्थेषु विद्यते। अतः सति नियमेपि न कापि क्षतिरित्यत्राह।

शक्तेरपि सनियामकत्वं विभागदर्शनात् ॥ १९ ॥

तिलेभ्य एव तैलं जायते न सिकताभ्यो बीजादेव वृक्षोद्गमो नोपलखंडादित्येवमेकस्य पदार्थस्य शक्तिरन्यस्मिन् पदार्थे नैव गच्छतीत्याकारकःसर्वत्र पदार्थेषु शक्तिविभागो दृश्यते। यदि कश्चित् तस्या विभागकर्ता नियामको न स्यात्, व्रजेदग्नेर्दहनत्वं जले जलस्य च शैत्यमग्नौ क्षणेन। जायेत सिकताभ्यश्च तैलमित्येवं निरोधकाभावात् सर्वत्र शक्तिसंकरः स्यात्। सति च संकरे सर्वमेवेदं जगदव्यव-

स्थापन्नं परस्परं विहन्यमानं विनश्येत् । अतः सर्वत्र शक्तिविभागदर्शनात् कश्चित्तस्या विभागकर्ता नियामकोऽवश्यमभ्युपेयः नहि नियामकमंतरा क्वचिन्नियमो भवितुमर्हति । नियमशब्द एव नियामकं लक्षयति कर्मवाचित्वात् । अतो यस्य संकल्पेन सर्वत्र शक्तिविभागो वर्त्तते । यस्य च भीत्या सूर्यवह्निवायुधरार्णवादयः स्वां स्वां मर्यादां नोत्क्रामंति, स एव सर्वशक्तिमानीश्वरोस्य जगतो जन्मादिकारणमित्यवसेयम् ॥ १९ ॥

पदार्थोंकी उत्पत्तिमें कार्यकारणभावका नियम भलेहि होवो । परंतु तहां तहां पदार्थोंमें तिन तिन कार्योंके उत्पन्न होनेकी शक्तिहि ऐसी है जैसेकि तिलोंमें तैल वीजमें वृक्षका विस्तार वीर्यमें शरीर अग्निमें दहनपणा इत्यादि सर्वत्र तिस तिस कार्यजननकी सामर्थ्य स्वभावसिद्धहि पदार्थोंमें रहती है । यातें पूर्वोक्त नियमके होनेपरभी कुछ हानि नहि है ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'शक्तेरपि सनियामकत्वं विभागदर्शनात्' तिलोंसेहि तैल उत्पन्न होवे हैं वालुकासे नहि होवे है, वीजसेहि वृक्षकी उत्पत्ति होवे है शिलाखंडसे नहि होवे है, इसप्रकारसे एक पदार्थकी शक्ति दूसरे पदार्थमें नहि जाती है । यह जो सर्वत्र पदार्थोंमें शक्तिका विभाग देखनेमें आवे है, तिस शक्तिके विभाग करनेहारा जो कोई नियामक नहि होवे तो अग्निकी दहनशक्ति जलमें चली जावे, और

जलकी शीतलता अग्निमें क्षणभरमें चली जावे, तथा वालुकासे तैल निकल आवे, इसप्रकारसे किसी रोकनेवालेके नहि होनेतें सर्वत्र पदार्थोंकी शक्तिका परस्पर मिश्रितपणा होजावे, और जब सर्व पदार्थोंकी शक्ति मिश्रित होगई तो यह सर्वहि जगत् व्यवस्थासे रहित भया परस्पर चलायमान होकरके नाशको प्राप्त हो जावेगा। यातें सर्वत्र शक्तिका विभाग होनेतें तिस विभागके करनेवाला कोई नियामक अवश्य अंगीकार करना चहिये। क्योंकि नियामक पुरुषके विना कहींभी नियम नहि हो सकता है। नियम यह जो शब्द है, सोई अपने नियामकका अनुमान कराता है क्योंकि कर्मका वाचक होनेतें इसलिये जिसके संकल्पसे सर्व पदार्थोंमें शक्तिका विभाग होय रहा है, और जिसके भयकरके सूर्य अग्नि वायु पृथिवी समुद्रादिक अपनी अपनी मर्यादाको नहि छोडते हैं, सोई सर्वशक्तिमान् ईश्वर इस जगत्की उत्पत्तिका कारण निश्चय करना योग्य है इति ॥ १९ ॥

स्यादेवं जगतः सकारणत्वं परं त्वीश्वरस्य कारणत्वं न संगच्छते। कुतः 'यथाचारी यथाकारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेने'ति। 'शुभैराप्नोति देवत्वमशुभैर्नारकीं गतिं। उभाभ्यां पुण्यपापाभ्यां मानुष्यं लभतेऽवश' इत्यादि-

श्रुतिस्मृतिशतैः कर्मैव जगत्कारणं निश्चीयते । तत्राह ।

न कर्मास्वतंत्रत्वात् ॥ २० ॥

कर्मणः जगत्कारणत्वं न संभवति कुतः अस्वतंत्रत्वात् नहि काचित् क्रिया स्वतंत्रा दृश्यते, क्रियायाः कर्त्रधीनत्वात् । यथा करणकाले केनचिदन्येनैव कर्त्रा क्रियंते कर्माणि तथा फलदानकालेपि केनचिदन्येनैव साक्षिणा तेषां फलं दीयते । अतः परतंत्रत्वात्कर्मणः कर्तृकरणयोश्च क्रियायाः पूर्वं विद्यमानत्वान्न कर्मणो जगत्कारणत्वं संभवति । परस्परं जगत्कर्मणोः संबंधस्यानादित्वेपि कर्मणो निमित्तमात्रत्वमेवांगीक्रियते न स्वतंत्रतया कारणत्वं पूर्वोक्तश्रुतिस्मृत्योरपि निमित्तमात्राभिधाने प्रयोजनमस्ति नान्यदित्यर्थः ॥ २० ॥

यद्यपि इस प्रकारसे यह जगत् अवश्य कारणवाला सिद्ध होवे हैं तथापि ईश्वरका कारणपणा नहि संभवे है क्योंकि 'यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेने'ति 'शुभैराप्नोतिदेवत्वमशुभैर्नारकीं गतिं । उभाभ्यां पुण्यपापाभ्यां मानुष्यं लभतेऽवशः ।' अर्थ—यह जीव जैसे कर्माचरण करता है तैसाहि दूसरे जन्ममें होता है अच्छे कर्म करनेवाला अच्छा होता है । और पाप करनेवाला

पापी होता है, पुण्य कर्मसे उत्तम जातिवाला होता है और पाप करनेवाला नीच जातिवाला होता है इति । तथा शुभ कर्मोंसे देवता होता है। अशुभ कर्मोंसे नरकगतिको जाता है, और पुण्य-पापमिश्रित होनेतें यह जीव मनुष्य शरीरको प्राप्त होवे है इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंसे केवल कर्महि जगत्का कारण निश्चय होवे है ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'न कर्मास्वतंत्रत्वात्' कर्मोंको जगत्का कारणपणा नहि संभवे है। क्योंकि कर्म परतंत्र हैं। जो जो क्रिया देखनेमें आवे है, सो सो कहींभी स्वतंत्र देखनेमें नहि आवे है। क्रिया सर्वदा किसी कर्ताके अधीनहि होवे है। सो जैसे करने कालमें कोई भिन्नहि कर्ता कर्मोंके करनेवाला होवे है, तैसेहि तिसके फल देनेके वक्तमेंभी कोई भिन्न साक्षी पुरुषहि देनेवाला होवे है । यातें करने-कालमें और फलकालमें दोनों समयमें कर्मोंकी परतंत्रता सिद्ध होवे है। तथा यहभी नियम है कि क्रियासे पूर्व कर्ता और करण विद्यमान होते हैं, इसलिये कर्मोंको जगत्का कारणपणा नहि हो सकता है। यद्यपि जगत् और कर्म दोनोंका परस्पर अनादि संबंध है, तथापि कर्मोंको केवल निमित्तपणा है, स्वतंत्रतासे कारणपणा नहि है। तथा उक्त श्रुति और स्मृतिकाभी निमित्तमात्र कथनमें प्रयोजन है दूसरा नहि इति ॥ २० ॥

अस्तु तर्हि प्रकृतिरेव त्रिगुणात्मिका जगतां प्रसवकारणं

'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीःप्रजाः सृजमानां सरूपा'मिति श्रुतेः । कपिलादिभिश्च सांख्याचार्यैरभिमतत्वादित्यत्राह ।

न च प्रधानमचेतनत्वात् ॥ २१ ॥

प्रधानमपि स्वतंत्रतया जगत्कारणं न भवितुमर्हति कुतः । अचेतनत्वात् । त्रिगुणात्मकत्वादचेतनं हि प्रधानं नह्यचेतने वस्तुनि कर्तृत्वमुपपद्यते, बुद्धिपूर्वकत्वात् क्रियारंभस्य । इदमित्थमित्याकारकं कर्तुं योग्यमिति प्रथमं मनसि निधाय पश्चात्करोति सर्वोऽपि कर्ता यद्यपि क्वचित् वर्षाजलेन वृक्षलताद्यारोहणं नदीवेगेन च तटस्थतरुनिपतनं पर्वतशिखरनिपातेन चाधःस्थितजंतुविदलनमित्यादिस्थलेष्वचेतनेष्वप्युत्पत्तिविनाशादिक्रिया दृश्यते, तथापि नैतावता तेषां कर्तृत्वं भवितुमर्हति । कुतः ज़डपदार्थेषु या क्रिया दृश्यते सा इदमित्थमित्याकारकमस्योपयोगिकर्तव्यमिति विचारपूर्विका न भवति । जगद्रचनायामप्येवमंगीक्रियेत चेत्, तदा भवेदनियमितमनाकारमनुपयोगि सर्वमव्यवस्थितं च । नत्वेवं दृश्यते । दृश्यते हि नानाविधपरस्परोपयोगि नियमितवस्तुजातसमन्वितं द्युभूम्यंतरिक्षसूर्य चंद्रतारागणादिभिर्यथायोग्यं सुव्यवस्थितं यत्रैकस्मिन्नपि वस्तुनि विचार्यमाणे सूरीणामपि बुद्धिर्भ्राम्यति । किमु

वक्तव्यं तस्य बुद्धिपूर्वकनिर्मितत्वम् । तथा वेदेपि 'स ईक्षां चक्रे स ईक्षत लोकान्नुसृजा' इत्यादिवचनैर्बुद्धिपूर्विकैव जगदुत्पत्तिर्निरूपिता । महर्षिर्व्यासोपि ब्रह्ममीमांसायां श्रुत्यर्थमाविष्कुर्वन्नाह 'ईक्षतेर्नाशब्द'मिति । अजामेकामिति श्रुत्या तु बाणो हंतीतिवत् करणे कर्तृत्वमौपचारिकमभिधीयते, नतु स्वतंत्रतया प्रधानस्य कर्तृत्वमिति विज्ञेयम् । तस्मात्प्रधानापरपर्यायां स्वमायाशक्तिमाश्रित्येश्वरस्तद्द्वारा जगदिदं निर्मिमीते । तथाचोक्तं श्वेताश्वतरोपनिषदि । 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं । अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् तास्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्ध' इति । भगवद्गीतायां च 'ममयोनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहं । संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत । मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचर'मिति ॥ २१ ॥

जो कर्मोंको जगत्की कारणता नहि संभवे है, तो फिर त्रिगुणात्मक जो मूलप्रकृति है सोई जगत्का कारण माननी चहिये। क्योंकि 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपां' इस श्वेताश्वतर उपनिषत् के वाक्यमें त्रिगुणात्मक प्रकृतिहिं जगत्का कारण निरूपण करी है और कपिलदेवादिक सांख्यशास्त्रके आचार्योंनेभी प्रकृतिकोहि जगत्का कारण माना है, इस प्रकारकी शंका होनेतें कहे हैं.

'न च प्रधानमचेतनत्वात्' प्रधान जो त्रिगुणोंकी साम्यावस्थारूप प्रकृति है सोभी स्वतंत्र एकली जगत्का कारण नहि होसकै है, क्योंकि अचेतनत्वात् कहिये सत्वादि त्रिगुणमय होनेतें प्रकृति स्वतः अचेतनवस्तु है यातें अचेतन पदार्थमें कर्तापणा नहि संभवे है, क्योंकि जो जो क्रिया आरंभ की जाती है सोसो ज्ञानपूर्व कहि होवे है, यह वस्तु इस प्रकारसे इस आकारकी करनी चहिये ऐसे प्रथम अपने मनमें विचार करकेहि पश्चात् सर्व लोक कार्यका आरंभ करते हैं, यद्यपि क्वचित् वर्षाके जलसे वृक्षलतादिक उत्पन्न हो जाते हैं, नदीके वेगसे किनारेके वृक्ष गिर जाते हैं और पर्वतके शिखिर गिरनेसे नीचे रहनेवाले जीवोंका नाश हो जावे है इत्यादि स्थलोंमें अचेतन पदार्थोंसेभी उत्पत्ति विनाश देखनेमें आवे है परंतु इतनेमात्रसे तिनमें कर्तापणा नहि संभवे है क्योंकि वर्षाजलादि जड पदार्थोंमें जो क्रिया देखनेमें आवे है सो यह वस्तु इस प्रकारसे इस आकारकी इसकी उपयोगि करणी चहिये ऐसे विचारपूर्वक नहि होवे है और जो कदाचित् इस जगत्की रचनामेंभी यह न्याय अंगीकार करें तो यह सर्वहि जगत् अनियमित अनाकार अनुपयोगि और अव्यवस्थित प्रतीत होता परंतु ऐसे देखनेमें नहि आवे है किंतु अनेक प्रकारके परस्परोपयोगि नियमित पदार्थोंकरके संयुक्त देखनेमें आवे है और आकाश पृथिवी अंतरिक्ष सूर्य चंद्र तारागणादिकोंसें यथायोग्य व्यवस्थायुक्त होय

रहा है जिस जगत्में एक वस्तुके विचारनेमें बडे बडे विद्वानोंकी बुद्धिभी भ्रमित हो जाती है तो उसके विचारपूर्वक रचे हुयेकी तो क्याहि वार्ता कहनी है तथा वेदमेंभी 'स ईक्षां चक्रे स ईक्षत लोकानु सृजा' इति । अर्थ-सो परमात्मा सृष्टिके आदि कालमें विचार करता भया उसने विचार किया कि मैं सर्व जगत्को निर्माण करुं इति । इत्यादि वचनोंकरके विचारपूर्वकहि जगत्की उत्पत्ति निरूपण करी है तथा महर्षि व्यासजीनेभी ब्रह्ममीमांसामें इस श्रुतिके अनुसारहि निर्णय किया है 'ईक्षतेर्नाशब्दम्' । अर्थ—वेदमें जगत् रचनाकालमें ईक्षण अर्थात् विचारका प्रसंग होनेतें विचारशून्य अचेतनप्रकृति इस जगत्का कारण नहि होसकै है इति ॥ और जो 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपां' यह श्रुति प्रकृतिका कारणपणा कथन करती है सो तो जैसे कोई कहे कि वाणने मृगको मारा है तो इस स्थलमें एकले वाणमें स्वतंत्र मारना नहि संभवे है तैसेहि उक्तश्रुतिका कथन जानना चहिये इस कारणसे प्रकृतिका स्वतंत्र कर्तापणा सिद्ध नहि होवे है यातें प्रकृति जो ईश्वरकी माया शक्ति है तिसके द्वारा ईश्वर जगत्को रचता है यह वार्ता सिद्धभई तथा श्वेताश्वतर उपनिषत्मेंभी लिखा है 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं । अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः ।' अर्थ—प्रकृतिकोहि माया जानना चहिये और मायाके अधिष्ठाताको ईश्वर जानना चहिये और सो

मायाका नियंता इस जगत्को रचे है और तिस जगत्में मायाकरके जीव निरुद्ध अर्थात् फसाहुया है इति । तथा भगवद्गीतामेभी यह वार्ता निरूपण करी है 'मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहं । संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत । मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरं' । अर्थ-हे भारत कहिये अर्जुन, मेरी स्त्री स्थानीय माया है तिसमें जब में संकल्परूपी गर्भ धारण करताहूं तो पीछे तिससे सर्व जगत्की उत्पत्ति होवे है इस प्रकार मेरे आश्रयसे माया चराचर जगत्को उत्पन्न करती है इति ॥ २१ ॥

तदेवमनुमानेनेश्वरसद्भावं निरूपयित्वाधुना प्रत्यक्षविषयत्वमपीश्वरस्यास्तीति दर्शयति ।

समाधावालोकनात्प्रत्यक्षत्वम् ॥ २२ ॥

ईश्वरस्य प्रत्यक्षत्वमप्यस्तीति विज्ञेयम् । कुतः समाधावालोकनात् यमनियमादियोगांगानां दीर्घकालानुष्ठानेन च्चित्तस्यांतर्मुखतया संप्रज्ञातसमाधिसमये योगिनस्तमीश्वरं विश्वकर्त्तारं ज्योतिर्मयं पश्यंति । तथाहि 'ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः' 'नीहारधूमार्कानलानिलानां खद्योतविद्युत्स्फटिक शशीनां । एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे' । 'दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि'रित्यादिश्रुतिवचनानि 'यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्मन्यवस्थितं' । 'यं विनिद्रा जितश्वासाः सं-

तुष्टाः संयतेन्द्रियाः । ज्योतिः पश्यंति युंजानास्तस्मै योगात्मने नमः । विधूम इव दीप्तार्चिरादित्य इव रश्मिवान् । वैद्युतोग्निरिवाकाशे दृश्यतेत्मा तथात्मनि ॥' 'विशोका वा ज्योतिष्मती, अपि च संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्यामित्यादिस्मृतिवाक्यानि चेश्वरस्य योगिजनप्रत्यक्षत्वं दर्शयंतीति॥

इस प्रकार अनुमानसे ईश्वरके सद्भावका निरूपण करके अब प्रत्यक्ष प्रमाणसेभी ईश्वरका निश्चय होवे है यह वार्ता कथन करे हैं.

'समाधावालोकनात्प्रत्यक्षत्वम्' ईश्वरकी प्रत्यक्ष प्रमाणसेभी सिद्धि होवे है क्योंकि यमनियमादि जो योगके अंग हैं तिनके दीर्घकालपर्यंत अनुष्ठान करनेसें चित्तके अंतर्मुख होनेतें संप्रज्ञातसमाधिकालमें योगिलोक सर्व जगत्के कारणभूत ज्योतिःस्वरूप ईश्वरका दर्शन करते हैं यह वार्ता मुंडक उपनिषत्मेंभी कथन करी है 'ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ।' अर्थ—ध्यान करताहुया योगी तिस निष्कल परमेश्वरको देखता है इति । तथा श्वेताश्वतर उपनिषत्मेंभी लिखा है 'नीहारधूमार्कानलानिलानां खद्योतविद्युत्स्फटिक शशीनां । एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ।' अर्थ—ध्यानकालमें योगी पुरुषको प्रथम नीहार धूम सूर्य अग्नि वायु खद्योत विजली स्फटिकमणि चंद्रमा इत्यादि प्रकाश

देखनेमें आयके पश्चात् पूर्ण ज्योतिर्मय ब्रह्मका दर्शन होवे है इति। तथा गीतामेंभी लिखा है 'यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्मन्यवस्थितं ।' अर्थ—इस अंतर्यामी आत्माको यत्न करते हुये योगिलोक अपने शरीरमेंहि देखते हैं इति। तथा महाभारतमेंभी कहा है 'यं विनिद्रा जितश्वासाः संतुष्टाः संयतेन्द्रियाः। ज्योतिः पश्यंति युंजानास्तस्मै योगात्मने नमः। विधूम इव दीप्तार्चिरादित्य इव रश्मिवान्। वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे दृश्यतेत्मा तथात्मनि ।' अर्थ—जिस ज्योतिःस्वरूप ईश्वरको आलससे रहित प्राणोंको जीतनेवाले संतोषी और जितेन्द्रिय योगिलोक ध्यान करते हुये देखते हैं तिस योगरूप परमात्माको नमस्कार हो, तथा जिस प्रकार धूमसे रहित अग्नि प्रकाशित होवे है और जैसे रश्मियोंके सहित सूर्यका प्रकाश होवे है और जैसे आकाशमें विजलीका प्रकाश होवे है तैसेहि समाधिकालमें योगीको अपने शरीरमेंहि परमात्माका दर्शन होवे है इति। तथा योगशास्त्रमें पतंजलि ऋषिनेभी कहा है 'विशोका वा ज्योतिष्मती ।' अर्थ—जिस कालमें योगीको अपने हृदयमें आनंदमय ज्योतिका दर्शन होवे है तो तिस कालमें तिसके चित्तका निरोध हो जावे है इति। तथा ब्रह्ममीमांसामें व्यासजीनेभी लिखा है 'अपि च संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ।' अर्थ—श्रुति और स्मृतियोंके प्रमाण होनेतें योगी लोक समाधिकालमें अवश्य ईश्वरका दर्शन करते हैं इति ॥ २२ ॥

किमिदमीश्वरदर्शनं नाम। दर्शनं हि नेत्रेन्द्रियद्वारा भवति समाधौ तु चक्षुरादीन्द्रियाणां विलयात्कथं तज्ज्योतिर्दृश्यते तत्राह।

द्विधाप्रवृत्तेर्नासमंजसम् ॥ २३ ॥

यदेतत्समाधावीश्वरदर्शनमुक्तं तन्नासमंजसं नायुक्तमित्यर्थः। कुतः द्विधाप्रवृत्तेः । चक्षुरादीन्द्रियाणां हि द्विविधा प्रवृत्तिर्भवति शरीराद्बहिरभ्यंतरे च। वहुजन्माभ्यस्तसंसारवासनावलितानामिन्द्रियाणां स्वभावतो वहिरेव प्रवृत्तिर्भवति। योगाभ्यासेन तु शब्दादिविषयेभ्यः प्रत्याहृतानामिन्द्रियाणामंतर्मुखतया शरीराभ्यंतरे प्रवृत्तिर्जायते। ततः सुकृतप्रकर्षादंतर्यामित्वेनावस्थितस्येश्वरस्य स्वशरीराभ्यंतर एव समाहितचित्तस्य योगिनो दर्शनं भवति। तथाचैतदुक्तं यजुर्वेदीयकठोपनिषदि 'परांचि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात् पराङ्पश्यंति नांतरात्मन्। कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छ'न्निति ॥ २३ ॥

यह जो ईश्वरका दर्शन तुमने वर्णन किया सो किसप्रकारका होवे है क्योंकि सर्व पदार्थोंका दर्शन तो नेत्र इन्द्रियद्वाराहि होवे है और समाधिकालमें तो नेत्रादिक सर्व इन्द्रियां लीन हो जाती हैं तो फिर सो ज्योतिस्वरूप ईश्वर कैसे दीखता है ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'द्वियाप्रवृत्तेर्नासमंजसम्' पूर्व जो समाधिकालमें ईश्वरका दर्शन कथन किया है, सो वार्ता अयुक्त नहि है। क्योंकि नेत्रादिक इन्द्रियोंकी दो प्रकारसे प्रवृत्ति होवे है, एक तो शरीरसे वाहिर विषयोंमें और दूसरी शरीरके भीतर होवे है, तिनमें अनेक जन्मोंमें सांसारिक विषयवासना करके युक्त जो इन्द्रिय हैं, तिनकी तो बाह्यविषयोंमेंहि प्रायः प्रवृत्ति होवे है, और दीर्घकाल योगाभ्यास करणेसे शब्दादिक बाह्य विषयोंसें निरुद्ध करीहुई इन्द्रियोंके अत्यंत अंतर्मुख होनेतें शरीरके अभ्यंतर प्रवृत्ति होवे है तत्पश्चात् योगीपुरुषके पुण्यके बलसे अंतर्यामिरूपसे स्थित भया जो ईश्वर है, तिसका हृदयकमलमें ज्योति, स्वरूपसे दर्शन होवे है, तथा यह सर्व वार्ता यजुर्वेदीय कठउपनिषत्में भी निरूपण करी है, 'परांचि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नांतरात्मन् कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ।' अर्थ-इन्द्रियोंको ईश्वरने बहिर्मुख स्वभाववालीहि निर्माण किया है, यातें सो सर्वदा बाह्य विषयोंकी तरफहि देखती हैं. अंतरात्मको नहि देखती हैं, कोई एक धैर्यवान् योगी पुरुष सर्व इन्द्रियोंको रोककरके मोक्षकी इच्छा करता हुया अंतर्यामी आत्माको देखे है इति ॥ २३ ॥

नन्विन्द्रियार्थसंनिकर्षजन्यं ज्ञानं हि प्रत्यक्षमित्युच्यते तच्च सर्वसाधारणतया प्रवर्त्तमानं पदार्थनिश्चायकं भवेत् । योगिनां

तु प्रत्यक्षस्यालौकिकत्वान्न तेनैकदेशवर्तिना प्रमाणेन वस्तु-निर्णयो जायते तत्राह ।

सर्वेषां नेति चेन्न प्रयत्नसाध्यत्वात् ॥ २४ ॥

सर्वेषां जनानामीश्वरस्य प्रत्यक्षत्वाभावान्नैकदेशवर्तिना प्रत्यक्षेणेश्वरसिद्धिर्भवितुमर्हतीति चेत् नैवं वाच्यं । कुतः ईश्वरप्रत्यक्षस्य यमनियमाद्यष्टांगयोगात्मकप्रयत्नाधीनत्वात् यः कश्चित् शास्त्रोक्तविधिना प्रयत्नं करोति स एव तं द्रष्टुं शक्नोति नेतरः। तदुक्तं महाभारतमोक्षधर्मे 'ज्योतिरात्मनि नान्यत्र सर्वभूतेषु तत्समं । स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसे'ति । अतः पुरुषप्रयत्नाधीनत्वान्न सर्वेषां साधारणप्रत्यक्षविषयत्वमीश्वरस्येति बोद्धव्यं । यदुक्तं 'योगिनां प्रत्यक्षमलौकिकत्वान्नवस्तुनिर्णायकं भवति' तन्न समंजसं । कुतः तस्यापि लौकिकत्वात् । अलौकिकत्वं नाम किंतावत् लोकासाध्यत्वं सर्वलोकाननुगतत्वं वा तत्र नाद्यं योगिनामपि लोकांतर्वर्तित्वात् । न च द्वितीयं सर्वलोकानां सर्ववस्तुप्रत्यक्षत्वासंभवात् । नहि सर्वेषां क्वचिदपि सर्वपदार्थविषयं प्रत्यक्षं भवतीश्वरादृते तस्माल्लौकिकालौकिकयोरेतावानेव विशेषः, यस्य यत्प्रत्यक्षं तत्तस्य लौकिकं यच्च न प्रत्यक्षं तदलौकिकं, नह्येतावता प्रत्यक्षस्याप्रामाण्यं भवितुमर्हति । नह्येकेन विदुषाधीतं शास्त्रमपरैः सहस्रैरप्यनाधीत-

मप्रमाणकं भवति। नचैकेन चक्षुष्मतावलोकितं द्रव्यमन्येषां बहूनामंधानां तदप्रत्यक्षमप्यनवस्थितं भवति। अलौकिकवस्तुजातप्रतिबोधकानि योगादिशास्त्राणि च न प्रमाणानि भवेयुस्तस्मान्नास्तीश्वरप्रत्यक्षस्यालौकिकत्वमिति ॥ २४ ॥

'शंका इन्द्रिय और विषयकी संनिधिसे जो ज्ञान होवे है, सोई प्रत्यक्ष कहिये है और सो सर्व पुरुषोंमें साधारणतासे प्रवृत्त भया पदार्थके निश्चयमें हेतु होवे है, और योगियोंका प्रत्यक्ष तो अलौकिक होवे है यातें तिस एक देशी प्रमाणसे पदार्थका कैसे निर्णय हो सकता है तहां कहे हैं.

'सर्वेषां नेति चेन्न प्रयत्नसाध्यत्वात्' सर्व लोकोंको ईश्वरके प्रत्यक्ष नहि होनेतें एक देशवर्ति योगीके प्रत्यक्षसे तिसकी सिद्धि कैसे संभवे है, यह जो पूर्वपक्षीका कथन है, सो असंगत है क्योंकि ईश्वरका जो प्रत्यक्ष होना है सो यमनियमादिक अष्टांग योगरूप प्रयत्नके अधीन है, जो पुरुष शास्त्रोक्त रीतिसे प्रयत्न करता है सोई तिस ईश्वरको देख सकता है, तथा महाभारतके मोक्षधर्ममें यह वार्ता कथन करी है. 'ज्योतिरात्मनि नान्यत्र सर्वभूतेषु तत्समं। स्वयंच शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा।' अर्थ-ईश्वरका प्रकाश अपने शरीरमेंहि है और सो सर्वभूत प्राणियोंमें बराबर है तिस ज्योतिको ध्यान करके स्थिर चित्त होनेतें स्वयं यह जीव देख भी सकता है इति। इस प्रकार पुरुषप्रयत्नके अधीन होनेतें सर्व पुरुषोंको ईश्व-

रका प्रत्यक्ष नहि होवे है और जो तुमने कहाकि योगियोंका प्रत्यक्ष अलौकिक होनेतें पदार्थके निर्णय करनेवाला नहि हो सके है सो वार्ता भी ठीक नहि है क्योंकि योगीका प्रत्यक्ष भी लौकिकहि है। पहले यह बतलाना चहिये कि अलौकिक किसको कहते हैं जिसको कोईलोक सिद्ध नहि करसके वह अलौकिक है किंवा जो सर्व लोकोंमें प्रचलित नहि होवे सो अलौकिक है तिनमें दोनोंमेसें प्रथम का नहि बन सके है क्योंकि योगीपुरुष भी लोकोंमेंहि उत्पन्न होते हैं तथा दूसरा पक्ष भी नहि बन सके है क्योंकि ईश्वरके सिवाय सर्व लोकोंको सर्व पदार्थोंका प्रत्यक्ष कदाचित् नहि संभवे है यातें लौकिक और अलौकिकमें इतनाहि भेद है कि जो पदार्थ जिस पुरुषको प्रत्यक्ष है सो तिसको लौकिक है और जो जिसको प्रत्यक्ष नहि है सो तिसको अलौकिक है सो इतने मात्रसे प्रत्यक्षकी अप्रमाणता सिद्ध नहि हो सके है क्योंकि जैसे एक विद्वान्ने अध्ययन किया हूया शास्त्र दूसरे हजारों अनपढोंके आगे अप्रमाणिक नहि होसके है तथा एक नेत्रोंवाले पुरुषने देखा हुया पदार्थ दूसरे अनेक अंधोंके प्रत्यक्ष नहि होने परभी सो अनवस्थित नहि हो सकता है अर्थात् सो ज्यों का त्यों स्थिर रहता है तैसेहि एक योगी पुरुषके प्रत्यक्ष होनेतें दूसरे अनेक संसारी लोकोंके प्रत्यक्ष नहि होने परभी ईश्वरकी अप्रत्यक्षता सिद्ध नहि हो सके है। तथा जो लौकिक प्रत्य-

नहि प्रमाण होता तो अलौकिक पदार्थोंके प्रतिपादक जो पातंजलादिक शास्त्र हैं सो प्रमाण नहि होते यातें यह सिद्ध भया कि ईश्वरविषयक योगियोंका प्रत्यक्ष अलौकिक नहि है इति ॥ २४ ॥

अस्तुतावदीश्वरस्य योगिजनप्रत्यक्षत्वं परं त्वसदादीनां वनितादिविषयपरित्यागपुरःसरं गुरुवचनानुसारेण यमनियमादियोगांगानुष्ठानपरिश्रमासहिष्णूनां तादृगंतःकरणशुद्ध्यभावे कथमीश्वरस्य प्रत्यक्षनिश्चयः स्यादित्यत्राह—

प्रमाणदोषे प्रमेयाभावो नातिप्रसंगात् ॥२५॥

प्रमाणदोषे सति प्रमेयस्य वस्तुनो नाभावो भवितुमर्हति । कुतः । अतिप्रसंगात् । तथा ह्यपश्यतोंधस्याग्रे स्थितं घटपटादिद्रव्यं न स्यात् । अनध्ययनवतोग्रे वर्तमानं शास्त्रं चापार्थकं स्यादित्येवं सर्वत्र भवेदतिप्रसंगः । तथा सति सर्वोपि प्रमाणप्रमेयव्यवहारो लुप्ततामियात् तस्मान्न स्वकीयांतःकरणादेरशुद्ध्यादिदोषे सतीश्वरस्याप्रत्यक्षत्वं वक्तुमुचितं यदि तद्दोषनिर्हरणार्थं यथोक्तो यमनियमादिप्रयत्नः कर्तुं न शक्यते युष्माभिस्तर्हि वदतात्र कस्य दोषः युष्माकमीश्वरस्य वा । युष्माकमेवेति चेत् तदा करणीयस्तन्निवृत्त्युपायःसोपि कर्तुं न शक्यते चेत् तदा कृतेश्वरप्रत्यक्षाणां

व्यासपतंजलिवसिष्ठादिमहर्षीणामेव वाक्यानि प्रत्यक्षप्रमाणस्य च वेदस्य वचनमाश्रित्यैवेश्वराराधनं कर्त्तव्यमिति ॥
इति श्रीब्रह्मानंदस्वामिप्रणीतेश्वरदर्शनभाष्ये प्रथमः पादः ॥१॥

यह जो योगियोंको ईश्वरका प्रत्यक्ष होना कथन किया सो तो ठीक है परंतु हमारे जैसे जो स्त्री आदिक विषयोंको नहि छोड सकते और गुरुके वचनानुसार यमनियमादिक योगके अंगोंका जो अनुष्ठान है तिसके परिश्रम करणेमें अशक्त तथा मलिन अंतःकरणवाले पुरुष हैं तिनको प्रत्यक्ष ईश्वरका निश्चय कैसे हो सके ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'प्रमाणदोषे प्रमेयाभावो नातिप्रसंगात्' प्रमाणके दोष होनेसें प्रमेय वस्तुका अभाव नहि हो सकता है क्योंकि अतिप्रसंगात् कहिये प्रमाणके दोषसे प्रमेयके अभाव माननेसे अतिप्रसंग दोषकी प्राप्ति होवे है सो जैसे अंधेके अग्रभागमें स्थित भये घटपटादिक पदार्थ नहि होने चहिये और अनपडके आगे पडा हूया शास्त्र निरर्थक होना चहिये इत्यादि सर्वत्र अतिप्रसंग हो जावेगा और जब इस प्रकार अतिप्रसंग हूया तो सर्वेहि प्रमाण प्रमेय व्यवहार लोप हो जावेगा यातें जैसे अंधेके नहि देखनेसे भी आगे पडे हूये घटपटादिक पदार्थोंका अभाव नहि हो जावे है और अनपडके नहि वाचनेसे भी शास्त्र निरर्थक नहि हो जावे हैं तैसेहि योगा-

भ्यासरहित हजारोंहि संसारी पुरुषोंके नहि देखनेसे भी ईश्वरके प्रत्यक्षका अभाव नहि हो सके है यातें अपने अंतःकरणके मलिनतादिक दोष होनेतें ईश्वरको अप्रत्यक्ष कहना उचित नहि है और जो तुम बाह्य विषयासक्तिको छोडकर अंतःकरणके दोष दूर करणेमें पुरुषार्थ नहि कर सकते तो कहो इसमे तुमारा दोष है किंवा ईश्वरका है जो कहो कि हमाराही है तो तिस दोषके दूर करणेका उपाय करणा चहिये और जो सो भी तुम नहि कर सकते तो फिर व्यास पतंजलि वसिष्ठादिक जिनों ऋषियोंनें योगाभ्याससें ईश्वरका प्रत्यक्ष किया है तिनके वचनोंको और प्रत्यक्ष प्रमाणरूप जो वेद है तिसके वचनको मानकरकेहि ईश्वरका आराधन करणा योग्य है इति ॥ २५ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदस्वामिप्रणीतेश्वरदर्शनस्य भाषाटीकायां प्रथमः पादः ॥ १ ॥

तदेवमीश्वराराधनकर्त्तव्यतामभिधाय शास्त्रादिप्रमाणत्रयेणेश्वरसद्भावं च प्रदर्श्याधुना तस्येश्वरस्याराधनप्रकारं निरूपयितुं द्वितीयः पादः प्रारभ्यते । तत्र पूर्वं यदुक्तमीश्वराराधनमवश्यं कर्तव्यं तस्याराधनस्य किं स्वरूपमिति जिज्ञासायामाह ।

भक्तिरेवाराधनम् ॥ १ ॥

भक्तिर्भजनं भज सेवायामिति वचनात् या मनोवाक्-

र्मभिरीश्वरस्य भक्तिः सेवा परिचर्या क्रियते सैवाराधनमित्युच्यते। एवकारेण भक्त्यनुपयोगि यागादिकर्म वारयति वक्ष्यति चाग्रे विक्षेपहेतुत्वान्न बहुलमिति ॥ १ ॥

इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे ईश्वराराधनकी कर्तव्यता कथन करके और शास्त्रादि तीनों प्रमाणोंसें ईश्वरका सद्भाव वर्णन करके अब तिस ईश्वरके आराधनके प्रकारको निरूपण करनेके लिये द्वितीय पादका आरंभ करते हैं तहां पूर्व जो कथन किया कि ईश्वरका आराधन अवश्य करणा चहिये सो तिस आराधनका क्या स्वरूप है ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं.

'भक्तिरेवाराधनम्' भक्ति कहिये भजन अर्थात् मनवाणी और शरीरकरके जो ईश्वरकी भक्ति सेवा परिचर्या करणी है सोई आराधन कहिये है सूत्रमें जो एवकार है तिसकरके भक्तिके अनुपयोगी जो सकाम यागादि कर्म हैं तिनका निषेध जानना अर्थात् सकामकर्म ईश्वरका आराधन नहि कहलाता केवल भक्ति वा तिसके उपयोगी निष्काम कर्महि ईश्वरका आराधन कहलाता है इति ॥ १ ॥

सा भक्तिः कथं क्रियते तत्राह ।

तदाज्ञानुस्मृतेरभ्यर्चनाच्च ॥ २ ॥

तस्येश्वरस्याज्ञानुसरणात् । तदभ्यर्चनाच्च भक्तिर्भवतीति वाक्यशेषः ॥ २ ॥

सो ईश्वरकी भक्ति किस प्रकारसे करी जाती है ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं.

'तदाज्ञानुसृतेरभ्यर्चनाच्च' तिस ईश्वरकी आज्ञाके अनुसार चलनेसे और तिसके पूजन करनेसे इन दोनों करके ईश्वरकी भक्ति होवै इति ॥ २ ॥

का परमेश्वरस्याज्ञा किं च तदनुसरणमित्यपेक्षायां तत्र तावदाज्ञास्वरूपं दर्शयति ।

आम्नायस्तज्जातत्वात् ॥ ३ ॥

आम्नायः ऋगादिवेदएवेश्वरस्याज्ञास्तीति विज्ञेयं कुतः तज्जातत्वात् तस्येश्वरस्य सकाशादेव वेदस्योत्पन्नत्वादित्यर्थः । 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्वांगिरस' इति श्रुतेः । शास्त्रयोनित्वादिति द्वैपायनसूत्राच्च । आम्नायशब्दोत्र गीतादिस्मृतीनामप्युपलक्षणं बोध्यं । कुतः । वेदानुसारिणीनां स्मृतीनां वेदार्थप्रकाशकत्वादीश्वराज्ञात्वं संगच्छत एवेति ॥ ३ ॥

तिनमें ईश्वरकी आज्ञा क्या है और तिसके अनुसार चलना क्या है इसप्रकारकी जिज्ञासा होनेतें प्रथम आज्ञाका स्वरूप वर्णन करे हैं.

'आम्नायस्तज्जातत्वात्' आम्नाय जो ऋग् यजुरादि चारों वेद हैं सोई ईश्वरकी आज्ञा जाननी चहिये क्योंकि तज्जातत्वात् कहिये

सर्व वेद ईश्वरके सकाशसेहि उत्पन्न होते भये हैं तथा यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषत्में यह वार्ता लिखी है 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्वांगिरस इति ।' अर्थ— इस महान्भूत ईश्वरकेहि यह ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद श्वासरूप हैं इति । तथा ब्रह्ममीमांसामें व्यासजीने भी लिखा है । शास्त्रयोनित्वात् । अर्थ—सर्व वेदरूप शास्त्रका कर्ता ईश्वर सर्वज्ञ है इति । यहां वेद शब्द करके भगवत्गीता मनु याज्ञवल्क्यादिक जो स्मृतियां हैं तिनकाभी ग्रहण जानलेना क्योंकि वेदकी अनुसारी स्मृतियोंको वेदके अर्थकी प्रकाशक होनेतें ईश्वरकी आज्ञापणा युक्तहि है इति ॥ ३ ॥

एवमाज्ञास्वरूपं निरूप्याधुना तदनुसरणं वर्णयति ।

विहितार्थानुष्ठानम् ॥ ४ ॥

श्रुतिस्मृतिभिर्विहिता अनुष्ठेयतया प्रोक्ताश्चोदनात्मका ये अर्था यमनियमादिकर्माणि तेषां यथाशास्त्रं यदनुष्ठानं तदेवेश्वरस्याज्ञानुसरणमित्युच्यते । अर्थपदेनानर्थानुबंधिश्येनयागादीनि वेदविहितान्यपि कर्माणि मुमुक्षुभिरकरणीयानीति द्योतयति । तथाहि जैमिनिसूत्रं 'चोदनालक्षणोर्थो धर्म' इति । तस्माद्यत् श्रुतिस्मृतिविहितमिहामुत्रानर्थाननुबंधि कर्म भवेत् तस्यैव विधिपूर्वकमनुष्ठानं कार्यं नेतरस्य विहितस्याप्यनर्थानुबंधिन इत्यभिप्रायः ॥ ४ ॥

इस प्रकारसे आज्ञाका स्वरूप निरूपण करके अब तिसके अनुसार चलना वर्णन करे हैं.

'विहितार्थानुष्ठानम्' वेद और शास्त्र करके विहित अर्थात् अनुष्ठान करणेकेलिये विधान किये हूये जो यमनियमादिककर्म हैं तिनका जो विधिपूर्वक शास्त्रके अनुसार अनुष्ठान करना है सोई ईश्वरकी आज्ञाके अनुसार चलना कहिये है। सूत्रमें जो अर्थ पद है तिसकरके वेदविहित भी श्येनयागादि पीछेसे अनर्थके हेतु जो कर्म हैं तिनका मुमुक्षु पुरुषको अनुष्ठान नहि करणा चहिये। तथा यह वार्ता जैमिनि ऋषिने भी कथन करी है 'चोदना लक्षणोर्थो धर्मः' अर्थ—जिनकर्मोंके करणेमें वेदकी प्रेरणा है और जिनका पीछेसे अनिष्ट फल नहि होता है तिन कर्मोंका नामहि धर्म है इति। यातें वेद और शास्त्र करके विधान किये हूये और पीछेसे इसलोक तथा परलोकमें अनर्थके संबंधसे रहित जो कर्म हैं तिनकाहि विधिपूर्वक अनुष्ठान करना योग्य है और जिनका पीछेसे अनिष्ट फल होवे सो कर्म चाहे वेदविहित भी होवे तो तिनका अनुष्ठान नहि करना चहिये इति॥ ४॥

पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैरिति न्यायेन विहितार्थानुष्ठानं कुर्वतः पुरुषस्य यदि जीवहिंसनपरद्रव्यापहरणानृतभाषणादिप्रतिषिद्धकर्मत्यागो न भवेत् तदा यथावन्नेश्वराज्ञापालनं भवत्यत आह।

विपरीतवर्जनं च ॥ ५ ॥

विपरीतानि यानि श्रुतिस्मृतिप्रतिषिद्धान्यकर्तव्यतया प्रोक्तानि हिंसास्तेयादीनि कर्माणि तेषां वर्जनं सर्वथा परित्यागः कर्तव्य इत्यर्थः । तदेवं विहितार्थानुष्ठानं प्रतिषिद्धकर्मवर्जनं च कुर्वता पुरुषेणेश्वराज्ञानुसरणं सम्यक्तया संपादितं भवतीति ॥ ५ ॥

जैसे पथ्य नहि रखनेसे औषध सेवन करना निष्फल होवे है तैसेहि जो पुरुष शास्त्रविहितकर्म करता हूया भी जीवहिंसा परद्रव्यापहरण असत्य भाषणादिक निषिद्धकर्मोंका परित्याग नहि करता है तो तिससे ईश्वरकी आज्ञाका पालन यथावत् नहि होसकता है यातें अब दूसरी वार्ता कहते हैं.

'विपरीतवर्जनं च' ईश्वरकी आज्ञारूप शास्त्रविहितकर्म करणेवाले पुरुषको तिसतें विपरीत श्रुति और स्मृतियोंने वर्जन किये जो हिंसा स्तेयादि निषिद्ध कर्म हैं तिनका सर्वथा परित्याग करदेना चहिये इसप्रकार शास्त्रविहित कर्मोंको करता हूया और निषिद्ध कर्मोंका परित्याग करता हूया पुरुष ईश्वरकी आज्ञाको यथार्थ पालन करता है इति ॥ ५ ॥

पूर्वपादे जीवः परतंत्रः तं यथायथेश्वरः प्रेरयति तथा तथा करोतीत्युक्तं तत्कथमधुना विहितार्थानुष्ठानं विपरीतवर्जनं

च विधीयते। नहि परतंत्रेण विहिताविहितयोः प्रवृत्तिनिवृत्ती कर्तुं शक्येते तत्राह।

न सर्वथा पारतंत्र्यं कर्माधिकारित्वात् ॥ ६ ॥

यद्यपि पूर्वं जीवस्येश्वरतंत्रत्वमुक्तं। तथापि शुभाशुभं-कर्मविधौ सर्वथा जीवस्य पारतंत्र्यं नांगीक्रियते। कुतः कर्माधिकारित्वात्। श्रुतिस्मृतिविहितकर्मकलापे जीवस्यै-वाधिकृतत्वात्। अतो न जीवः सर्वथा परतंत्र इति ॥६॥

पूर्वं पादमें कथन किया कि यह जीव परतंत्र है तिसको जैसे जैसे ईश्वर प्रेरणा करता है तैसे तैसे कर्म करता है तो अब शास्त्र-विहित कर्म करने और निषिद्ध कर्मोंका परित्याग करना क्योंकर विधान करते हो क्योंकि परतंत्र जीवकी शुभकर्मोंमे प्रवृत्ति और अशुभ कर्मोंसे निवृत्ति करणेकी सामर्थ्य नहि हो सके है ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'न सर्वथा पारतंत्र्यं कर्माधिकारित्वात्' यद्यपि पूर्वं जीवको ईश्वरका अधीनपणा कथन किया है तथापि शुभाशुभ कर्मोंके करणेमें सर्वथा जीवका परतंत्रपणा अंगीकार नहि किया जावे है क्योंकि कर्माधिकारित्वात् कहिये श्रुतिस्मृतियोंकरके विहितकर्म समूहमें जीवकाहि अधिकार है इसलिये जीव सर्वथा परतंत्र नहि हो सकता है इति ॥ ६ ॥

इतश्च न जीवस्य सर्वथा परतंत्रत्वम् ।

शास्त्रवैयर्थ्यापत्तेश्च ॥ ७ ॥

जीवस्य शुभाशुभविधाने स्वतंत्रत्वे सत्येव सर्वाणि विधिनिषेधात्मकानि शास्त्राण्यव्यर्थानि भवंति । यदि तु जीवस्य सर्वथा परतंत्रत्वमेव भवेत् तर्हि सर्वाणि शास्त्राणि व्यर्थान्येव भवेयुः।न ह्यधिकारिणमंतराधिकारविधानं युक्तं भवति । तथा सति च सर्वेषामीश्वरप्रमुखानां शास्त्रकृतामुन्मत्तत्वमेव प्रसज्येत । तस्मान्न जीवस्य सर्वथा परतंत्रत्वमस्ति । एवं चेत्तर्हि पूर्वोक्तयोः एष उ ह्येव साधु कर्म कारयति । अज्ञो जंतुरनीशोयमिति श्रुतिस्मृत्योर्मूलसूत्रस्य च का गतिरिति चेत् श्रूयतामत्र निर्णयः कियतांशेन परतंत्रत्वं कियतांशेन च स्वतंत्रत्वमस्य जीवस्य विद्यते 'द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योभिचाकशीती'त्यनया श्रुत्याः जीवः कर्मफलं भुंक्ते ईश्वरस्तत्समसंगतया स्थितः सन् भोजयतीति दर्शितं तस्मात् पूर्वकृतकर्मणः फलभोगसमये जीवस्य परतंत्रत्वमग्रे नवीनकर्मकरणकाले च स्वतंत्रत्वं भवतीति विज्ञेयं । यद्यपि नवीनकर्मकरणेपि पूर्ववासनायाः प्रेरकत्वमस्ति तथापि पुरुषार्थेन सा जीवेन जेतुं शक्यते यदि कृतेपि पुरुषार्थे न जिता भवेत् तदा तस्या बलवत्त्वं

विज्ञाय पुरुषार्थाधिक्यं संपादनीयं तथा सत्येकेन जन्मना जन्मांतरैर्वा सा जिता भविष्यत्येव। तथाचोक्तं वसिष्ठमुनिना 'जन्मांतरचिराभ्यस्ता राम संसारवासना । सा चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचिदिति' । यत्तु 'एष उ ह्येव साधु कर्म कारयती' त्यनया श्रुत्येश्वरस्य कर्मकारयितृत्वमभिहितं तज्जीवार्जितपूर्वकर्मानुसारेणैव बोद्धव्यं । अन्यथा कंचिज्जीवं शुभकर्मभिरूर्ध्वं नयतः कंचिच्चाशुभैरधो नयतः परमेश्वरस्य विषमत्वं निर्दयत्वं च प्रसज्येत तन्न समंजसं । तथाच वेदव्याससूत्रं । वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयतीति । तस्मात् पूर्ववासनाविजयस्य जीवप्रयत्नाधीनत्वात् सिद्धं जीवस्य स्वातंत्र्यमपीति ॥ ७॥

किंच—

'शास्त्रवैयर्थ्यापत्तेश्च' शुभाशुभ कर्मोंके करणेमें जीवको स्वतंत्र होनेसेहि विधिनिषेधरूप शास्त्र सार्थक हों सकते हैं और जो जीवको सर्वथा परतंत्र मानें तो तिसको प्रेरणा करणेहारे सर्वेहि शास्त्र व्यर्थ हो जावेंगे क्योंकि किसी अधिकारीके विना कोई अधिकार निरूपण करना युक्त नहि होवे है और जब अधिकार निरूपण युक्त नहि हुया तो ईश्वरसे आदिलेकर जो शास्त्रकार हैं तिन सर्वोंका उन्मत्तपणा सिद्ध होवेगा यातें जीवका सर्वथा परतंत्रपणा नहि संभवे है । इस प्रकारसे जब जीव स्वतंत्र है तो प्रथम

जो जीवकी परतंत्रता विषयमें 'एष उह्येव साधु कर्म कारयति। अज्ञो जंतुरनीशोयं' इत्यादिश्रुतिस्मृतियोंके प्रमाण दिये हैं तिनकी तथा मूलसूत्रकी क्या व्यवस्था होवेगी ऐसी शंका होनेतें कितनी अंशमें जीव परतंत्र है और कितनी अंशमें इसकी स्वतंत्रता है सो निर्णय करे हैं 'द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिपस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्योभिचाकशीति।' इस अथर्ववेदके वाक्यमें जीव कर्मोंके फलको भोगता है और ईश्वर आप असंग रहकर तिसको कर्मोंका फल भुगावता है, यह वार्ता कथन करी है यातें यह सिद्ध भया कि पूर्व कर्मोंके भोगनेमें जीव परतंत्र है, और आगे नवीन कर्म करणेमें स्वतंत्र है यद्यपि नवीन कर्मोंके करणेमें भी पूर्वली वासनाका प्रेरकपणा है तथापि तिस वासनाको पुरुषार्थ करके जीव जीत सकता है, और जो यथोक्त पुरुषार्थ करणेसे भी सो वासना जीती नहि जावे तो तिसको प्रबल जानकर पुनः अधिक पुरुषार्थ करणा चहिये इस रीतिसे इस जन्ममें अथवा जन्मांतरोंमें सो अवश्य जीती जावेगी तथा योगवासिष्ठमें भी लिखा है, 'जन्मांतरचिराभ्यस्ता राम संसारवासना। सा चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित्।' अर्थ–हे रामचंद्र अनेक जन्मोंसे संसारकी वासनाका अभ्यास होय रहा है, सो दीर्घकालके योगाभ्यासके विना तिसका नाश नहि होवे है, इति॥ और जो पूर्व 'एष उह्येव साधु कर्म कारयति' इस श्रुतिमें ईश्वर हि जीवको शुभाशुभ

कर्म करावता है, यह कथन किया है, सो तो जीवके पूर्व जन्ममें संचित किये कर्मोंके अनुसारहि जानना चहिये । नहि तो किसी जीवको शुभ कर्मोंसे ऊपर स्वर्गादिकोंमें ले जानेसे और किसी जीवको पापकर्मोंसे नीचे नरकादिकोंमें ले जानेसे ईश्वरमें विषमता और निर्दयता दोषकी प्राप्ति होवेगी, सो ईश्वरमें यह दोष होना युक्त नहि है, तथा वेदव्यासजीने ब्रह्ममीमांसामें यह वार्ता निर्णय करी है, 'वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति ।' अर्थ—ईश्वरमें विषमता और निर्दयता दोष नहि है, क्योंकि ईश्वर जीवके पूर्वके कर्मोंके अनुसारहि फल देवे है, इसी वार्ताको श्रुति दिखलाती है, इति । यातें पूर्वली दुष्ट वासनाको जीतना और नवीन शुभ कर्मोंका संचय करना जीवके पुरुषार्थाधीन होनेतें जीवका स्वतंत्रपणा भी सिद्ध होवे है इति ॥ ७ ॥

तदेवमाज्ञानुसृतिपदस्यार्थं पंचभिः सूत्रैर्निरूप्याधुना द्वितीयमभ्यर्चनपदं वर्णयति ।

द्विधार्चनं व्यक्ताव्यक्तभेदात् ॥ ८ ॥

परमेश्वरस्यार्चनं द्विविधं भवतीति बोद्धव्यं । कुतः व्यक्ताव्यक्तभेदात् । ईश्वरस्य हि द्विविधं स्वरूपमस्ति व्यक्तमव्यक्तं च । द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं चेति यजुर्वेदीयबृहदारण्यकोपनिषद्वचनात् । ततोर्चनमपीश्वरस्य द्विविधमेव करणीयमिति ॥ ८ ॥

इसप्रकार पंचसूत्रोंसे ईश्वरकी आज्ञानुसार चलना निरूपण करके अब सूत्रमें जो दूसरा अभ्यर्चन पद है तिसका वर्णन करे हैं.

'द्विधार्चनं व्यक्ताव्यक्तभेदात्' परमेश्वरका अर्चन दो प्रकारसे होवे है क्योंकि 'व्यक्ताव्यक्तभेदात्' कहिये व्यक्त और अव्यक्त इस भेदसे ईश्वरका स्वरूप दो प्रकारका है यह वार्ता यजुर्वेदीयबृहदारण्यक उपनिषत्में कथन करी है 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं चेति ।' अर्थ—परमेश्वरके दो स्वरूप हैं एक मूर्तिमान् और दूसरा मूर्तिसे रहित अव्यक्त है इति । यातें अर्चन भी ईश्वरका दो प्रकारसेहि करणा योग्य है इति ॥ ८ ॥

ननु मुख्यत्वादव्यक्तस्यैव परमेश्वरस्यार्चनं युक्तं किमवांतरेण व्यक्तार्चनेन तत्राह ।

क्रमेणारोहणं दुर्गमत्वात् ॥ ९ ॥

व्यक्तक्रमेणैवोर्ध्वमारोहणं विधेयं क्रममंतरा नेश्वरार्चनमभिलषेत् । कुतः दुर्गमत्वात् अव्यक्तस्येश्वरस्वरूपस्य दुर्विज्ञेयत्वादित्यर्थः ।नहि स्थूलमतिभिरीश्वरस्याव्यक्तं स्वरूपं सहसा ज्ञातुं शक्यते । 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदंती'ति कठोपनिषद्वाक्यात् । भगवद्गीतायामपि । 'क्लेशोधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसां । अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते' इति । लोकेपि यद्दुर्गमं स्थानं भवति तत् क्रमेणैवारुह्यते जनैः । अन्यथा-

रोहणं कुर्वतः पुरुषस्य पतनभयं भवति तस्माद्व्यक्तक्रमेणै-
वेश्वरस्यार्चनं युक्तमिति ॥ ९ ॥

शंका। मुख्य होनेते अव्यक्त ईश्वरकाहि अर्चन करना चहिये
तिसके अंतर्गत व्यक्त स्वरूपके अर्चनकी क्या आवश्यकता है
तहां कहे हैं,

'क्रमेणारोहणं दुर्गमत्वात्' व्यक्त क्रमसेहि ऊपरको आरोहण
करणा चहिये क्रमसेविना ईश्वरके अर्चनकी इच्छा नहि करणी
चहिये क्योंकि दुर्गमत्वात् कहिये अव्यक्त परमेश्वरका स्वरूप बडा
दुर्विज्ञेय हे, सो स्थूलवुद्धिवालोंको परमेश्वरका अव्यक्त स्वरूप शीघ्र
जाननेमें नहि आय सके है यह वार्ता कठ उपनिषतमें भी कथन
करी है, 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदंति।'
अर्थ—जैसे उस्तरेकी तेजकरी हुई धारपर चलना कठिन होवे है
तैसेहि अव्यक्त परमेश्वरका मार्ग विद्वान्‌लोक कठिन कथन करते
हैं इति। तथा भगवत्‌गीतामें भी कहा है 'क्लेशोधिकतरस्तेषामव्य-
क्तासक्तचेतसां। अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।' अर्थ—
जो पुरुष प्रथमसेहि अव्यक्त परमेश्वरकी उपासना करना चाहते
हैं तिनको क्लेश अधिक होवे है क्योंकि देहधारी जीवोंको अव्य-
क्तकी गति कठिनतासे प्राप्त होवे है इति। तथा लोकमें भी यह
वार्ता प्रसिद्ध है कि जो पर्वतआदिक स्थान दुर्गम होते हैं सो क्रम-
सेहि आरोहण किये जाते हैं एकदम नहि किये जाते क्योंकि

एकदम आरोहण करणेसे नीचे पतनका भय होवे है यातें सुख-पूर्वक आरोहणके लिये व्यक्त क्रमसेहि ईश्वरका आराधन करना योग्य है इति ॥ ९ ॥

तत्रेश्वरस्य व्यक्तं स्वरूपं किमस्तीति जिज्ञासायामाह ।

नारायणः प्रमाणात् ॥ १० ॥

नारायणो विष्णुरेवेश्वरस्य व्यक्तं स्वरूपमस्तीति विज्ञेयं कुतः प्रमाणात् । संति हि बहूनि श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणात्मकानि । विष्णोरीश्वरत्वस्य प्रतिपादकानि प्रमाणानि । तथाहि नारायणोपनिषद्वचनं । 'नारायण एवेदꣳसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं । निरंजनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोस्ति कश्चिदिति ॥' महाभारतेपि शांतिपर्वणि । 'तत्र यः परमात्मा हि स नित्यं निर्गुणः स्मृतः । स हि नारायणो ज्ञेयः सर्वात्मा पुरुषो हि सः ॥ स ईशो भगवान् देवः सर्वभूतात्मभावन' इत्याद्यनेकश्रुतिस्मृतिवाक्यानि नारायणस्येश्वरस्वरूपत्वं प्रतिपादयंतीति ॥ १० ॥

तिनमें ईश्वरका व्यक्त स्वरूप क्या है सो कथन करे हैं.

'नारायणः प्रमाणात्' नारायण जो विष्णु भगवान् है सोई ईश्वरका व्यक्त-स्वरूप जानना चहिये. क्योंकि प्रमाणात् कहिये विष्णुके ईश्वरपणेके प्रतिपादन करनेहारे अनेक श्रुति स्मृति इतिहास

पुराणादिक प्रमाण हैं जैसे कि नारायणउपनिषत्का वाक्य है, 'नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं । निरंजनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोस्ति कश्चित् । अर्थ—यह भूत भविष्यत् और वर्तमान सर्व जगत् नारायणरूपहि है सो नारायणहि निरंजन निर्विकल्प निराख्यात और शुद्ध स्वरूप एक देव है दूसरा कोई नहि है इति । तथा महाभारतके शांतिपर्वमेंभी लिखा है 'तत्र यः परमात्मा हि स नित्यं निर्गुणः स्मृतः । सहि नारायणो ज्ञेयः सर्वात्मा पुरुषो हि सः । स ईशो भगवान् देवः सर्वभूतात्मभावनः । अर्थ—जो परमात्मा नित्य और निर्गुण कहिये है सोई नारायण जानना चहिये सो नारायण हि सर्वात्मा पुरुष है और सोई भगवान् सर्व जगत्का ईश्वर और सर्वभूत प्राणियोंकी पालना करणेहारा है इति । इत्यादि अनेक श्रुतिस्मृतियोंके वाक्य नारायणके ईश्वरत्वको निरूपण करते हैं इति ॥ १० ॥

इतश्च विष्णोरीश्वरात्मकत्वं विज्ञेयं ।

तद्धर्मान्वयाच्च ॥ ११ ॥

तस्याव्यक्तस्येश्वरस्य ये जगत्कर्तृत्वादयः सर्वज्ञसर्वशक्तित्वादयश्च धर्माः श्रुतिस्मृतीतिहासादिषु श्रूयंते तेषामशेषाणां नारायणेन्वयोस्ति । 'पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयतः प्रजाः सृजेयेति । नारायणात्प्राणो जायते मनः सर्वेन्द्रियाणि च खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणीति

श्रुतिवचनात् । 'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते । वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुने'त्यादिस्मृतेश्च । ततस्तयोर्व्यक्ताव्यक्तयोर्धर्मसाम्यादेकरूपत्वमवसेयमिति ११

किंच इस वार्तासेभी विष्णुका ईश्वरपणा जानना चहिये.

'तद्धर्मान्वयाच्च' तिस अव्यक्त ईश्वरके जो जगत्कर्तृत्वादि और सर्वज्ञ सर्वशक्तित्वादिक धर्म श्रुतिस्मृतिइतिहासादिकोंमें श्रवणमें आते हैं सो सर्व धर्म नारायणमें विद्यमान हैं जैसे कि 'पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत प्रजाः सृजेयेति नारायणात् प्राणो जायते मनः सर्वेन्द्रियाणि च खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ।' अर्थ—परमात्मा पुरुष नारायण जगत्के आदिकालमें इच्छा करता भया कि मैं जगत्रूप प्रजाको रचुं तो पश्चात् नारायणके संकल्पसे प्राण मन और सर्व इन्द्रियां तथा आकाश वायु अग्नि जल और सर्व जगत्के धारण करणेहारी पृथिवी उत्पन्न होती भई इति । इत्यादि श्रुतियोंके वचनसे तथा 'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते । वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।' अर्थ—हे अर्जुन, मैंहि सर्व जगत्का प्रभवस्थान हुं और मेरेसेहि यह सर्व जगत् प्रवृत्त होवे है तथा मैं सर्व भूत भविष्यत् और वर्तमान सर्व भूतप्राणियोंको जानता हुं इति । इत्यादि स्मृतियोंके प्रमाणसे व्यक्त और अव्यक्त ईश्वरके दोनों स्वरूपोंमें सर्व धर्मोंकी तुल्यता होनेतें तिन दोनोंका एकरूपत्वहि निश्चय करना योग्य है इति ॥ ११ ॥

ननु शिवशक्त्यादीनामपीश्वरत्वं सर्वत्र श्रूयते । तत्कथमेकस्य विष्णोरेवेश्वरविग्रहत्वं प्रतिपाद्यते । तत्राह ।

तन्मयत्वाच्छिवादेर्न पृथक्त्वम् ॥ १२ ॥

शिवशक्त्यादीनामीश्वरविग्रहाणां विष्णोः पृथक्त्वं नास्ति । कुतः तन्मयत्वात् विष्णुस्वरूपा एव हि शिवादयः संति नहि व्यक्तिमात्रभेदेन तेषां विष्णोर्भेदो भवितुमर्हति। 'स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोक्षरः परमः स्वराडि'ति वेदवचनात् भारतेपि मोक्षधर्मे । 'रुद्रो नारायणश्चैव सत्वमेकं द्विधा कृतं । लोके चरति कौंतेय व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु ॥' तत्रैव च रुद्रं प्रति नारायणवाक्यं । 'यस्त्वां वेत्ति स मां वेत्ति यस्त्वामनु स मामनु । नावयोरंतरं किंचिन्मातेऽभूद्बुद्धिरन्यथेति' ॥ १२ ॥

शिवशक्ति आदिकोंकाभी सर्वत्र ईश्वरपणा श्रवणमें आवे है तो तुम एकले विष्णुको हि ईश्वरका स्वरूप कैसे प्रतिपादन करते हो ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'तन्मयत्वाच्छिवादेर्न पृथक्त्वम्' शिव शक्ति आदिक जो ईश्वरके विग्रह हैं सो विष्णुसे भिन्न नहि हैं क्योंकि 'तन्मयत्वात्' कहिये शिवादिकभी विष्णुस्वरूप हि हैं केवल व्यक्तिमात्रके भेदसें तिनका विष्णुसे भेद नहि होसकै है तथा यह वेदका वचन है 'स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोक्षरः परमः स्वराट् ।' अर्थ—सो ईश्वरहि ब्रह्मा

शिव इन्द्र स्वरूप है और सोई अक्षर परम स्वतंत्र है इति । तथा महाभारतके मोक्षधर्मपर्वमेंभी लिखा है 'रुद्रो नारायणश्चैव सत्वमेकं द्विधा कृतं । लोके चरति कौंतेय व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु ।' अर्थ–शिव और नारायण यह दोनों एकहि सत्वके दो भेद हैं सो एकहि रूप दो व्यक्तियोंको धारण करके जीवोंके कर्मोंकी व्यवस्थाके लिये जगत्में विचरता है इति । तथा तहांहि दूसरी जगामें शिवके प्रति नारायणकाभी वचन है 'यस्त्वां वेत्ति स मां वेत्ति यस्त्वामनु स मामनु । नावयोरंतरं किंचित् मा तेऽभूत् बुद्धिरन्यथा ।' अर्थ—हे शिव, जो तुमको जानता है सो मेरेको जानता है और जो तुमारा भजन करता है सो मेरा करता है अपने दोनोंमें किंचिन्मात्रभी भेद नहि है तुमको अन्यथा नहि समझना चहिये इति ॥ १२ ॥

एतेन तदर्चनं व्याख्यातम् ॥ १३ ॥

एतेन विष्णोरभेदप्रतिपादनेन तेषां शिवादीनामर्चनमपि व्याख्यातं विज्ञेयं। येन प्रकारेणात्र विष्णोरर्चनं विधीयते तेनैव प्रकारेण तेषामप्यवधार्यं यस्य यस्योपासकस्य यस्मिन् यस्मिन्नीश्वरविग्रहे रुचिर्भवेत् तेन तेन वक्ष्यमाणरीत्या तस्य तस्यैव विष्णुवदाराधनं कर्तव्यमित्यभिप्रायः ॥१३॥

'एतेन तदर्चनं व्याख्यातम्' एतेन कहिये इस उक्त रीतिसे विष्णुके साथ शिवशक्ति आदिकोंके अभेद प्रतिपादन करणेसे तिन शिवशक्तिआदिकोंका अर्चनभी कथन किया जान लेना

अर्थात् जिस प्रकारसे आगे विष्णुका अर्चन विधान निरूपण किया है तैसेहि तिनकाभी जान लेना चहिये ग्रंथके विस्तार होनेके कारणसे यहां तिनका जुदा जुदा वर्णन नहि किया है सो जिस जिस उपासककी जिस जिस ईश्वरके स्वरूपमें श्रद्धा प्रीति होवे तिस तिस पुरुषको आगे कथनकरी रीतिसे तिस तिस स्वरूपकाहि विष्णुकी न्यांई आराधन करना योग्य है इति ॥ १३ ॥

ननु सर्वत्र व्यापकस्य परमात्मनः कथमेकत्र विष्णुशरीरे समवस्थानं भवतीत्यत्राह ।

व्यापकस्याप्येकदेशभाक्त्वं तेजोवत् ॥ १४ ॥

सर्वत्र समानव्यापकस्यापि परमेश्वरस्य भवत्येकदेशवर्तित्वं । अत्रायं दृष्टांतस्तेजोवदिति यथा तेजो धातुः सर्वत्र स्थिरचरपदार्थेष्वनुगतोपि विशेषतया सूर्यमंडले समवस्थितः समुपलभ्यते तथैव सर्वत्र समानरूपेणानुस्यूतोपि परमात्मा विशेषतया विष्णुव्यक्तावेवावस्थानं भजत इत्यवगंतव्यमिति ॥ १४ ॥

सर्वत्र व्यापक परमेश्वरकी एक विष्णुशरीरमें कैसे स्थिति संभवे है ऐसी शंका होनेतें कहे हैं.

'व्यापकस्याप्येकदेशभाक्त्वं तेजोवत्' सर्वत्र व्यापक परमेश्वरकी भी एक शरीरमें स्थिति संभवे है यहां यह दृष्टांत है जैसे अग्नितत्व सर्वत्र स्थिरचरपदार्थोंमें अनुगत हूयाभी विशेषकरके सूर्यमंडलमें

स्थित प्रतीत होवे है तैसेंहि सर्वत्र समानरूपसे अनुगत हूयाभी परमेश्वर विशेषकरके विष्णुशरीरमेंहि स्थित होवे है इति ॥ १४ ॥

आप्तकामस्य परमेश्वरस्य विष्णुशरीरग्रहणे किं प्रयोजनमस्तीति जिज्ञासायामाह ।

भुवनव्यवस्थार्थम् ॥ १५ ॥

स्वनिर्मितानां चतुर्दशसंख्यानां भूरादिभुवनानां व्यवस्थाकरणार्थं परमेश्वरस्य विष्ण्वाकारेणाविर्भावो जायते । कुतः निखिलब्रह्मांडांतर्गतजीवजातस्य शुभाशुभकर्मानुरूपफलदानादिव्यवस्था केनाप्याकारेण विना न सम्यक्तया संभवति । नहि मधुकैटभादिदानवदलनद्वारा चतुराननादिपरिरक्षणादिकार्यजातं शरीरमंतरा समीचीनं कृतं भवेत् संकल्पमात्रेणैवाखिलकार्यजातं कर्तुं शक्तेनापि परमात्मना स्वच्छंदतया क्रीडाविहारार्थं तद्विष्णुव्यक्तिद्वारैव क्रियते । तथाह वेदव्यासोपि ब्रह्ममीमांसायां । 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यमिति' ॥ १५ ॥

ईश्वर तो आप्तकाम है तिसको विष्णुशरीर धारण करनेका क्या प्रयोजन है ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करेहैं.

'भुवनव्यवस्थार्थम्' अपने रचेहुये पृथिवी आदिक जो चतुर्दश भुवन हैं तिनकी व्यवस्था करणेके लिये परमेश्वरका विष्णुके आकारसे आविर्भाव होवे है क्योंकि सर्व ब्रह्मांडके भीतर रहनेहारे

जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके फल देने आदिकी व्यवस्था किसी आकारसे विना ठीक नहि हो सके है जैसे कि मधुकैटभादि दैत्योंके नाशद्वारा ब्रह्मादिकोंकी रक्षादिक जो कार्यसमूह हैं सो शरीरके विना सम्यक् नहि हो सकते हैं यद्यपि परमेश्वर संकल्पमात्रसेहि सर्व कार्यसमूह कर सकता है तथापि स्वतंत्र लीलाविहारके लिये सो विष्णुशरीरसेहि करता है तथा यह वार्ता ब्रह्ममीमांसामें व्यासजीनेभी निरूपण करी है 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ।' अर्थ—जैसे राजाआदिक वडे लोक सर्व कामनायोंसे पूर्ण हूयेभी केवल लीलाविहारके लिये स्वयं शिकारादिक कार्य करते हैं तैसेहि ईश्वरभी लीलाविहारके लिये विष्णुआदि शरीरोंको धारण करके जगत्की उत्पत्ति आदिक कार्य करता है इति ॥ १५ ॥

अन्यदपि प्रयोजनमाह ।

उपासकानुग्रहार्थं च ॥ १६ ॥

उपासकानामनुग्रहार्थमप्यव्यक्तस्य परमात्मनो विष्णवाकारधारणं भवति स्वस्वरूपध्यानाभिलाषुकाणां भक्तानामनुकंपार्थं कथंन्वेते शंखचक्रादिहस्तं रत्नकिरीटजुष्टं वनमालाविभूषितं चतुर्भुजं पीतांवरोपेतं शरन्नभोनीलकांति कटककुंडलादिभूषणालंकृतं विकसितसरोजपत्रनेत्रं शुचिस्मितं महामायात्मिकया कमलयाधिष्ठितवामभागं सार्वज्ञ्याद्यनंतकल्याणगुणाश्रयं मदीयं स्वरूपं सहसाध्यानपथमानीय

भवबंधनादाशु विमुच्येरन्नित्यव्यक्तोपि परमेश्वरो वैष्णवीं व्यक्तिमुररीकृत्य विराजते । नहि कंचिदाकारमंतराऽव्यक्तस्य परमात्मनः स्वरूपं सहसा ध्यानपथमारोहति । तथाहि पूर्वेषां वचः । 'आकारवांस्त्वं नियमादुपास्यो न वस्त्वनाकारमुपैति बुद्धि'रिति ॥ १६ ॥

किंच औरभी प्रयोजन कहते हैं.

'उपासकानुग्रहार्थं च' उपासक लोकोंपर अनुग्रहके लियेभी अव्यक्त परमेश्वरका विष्णु शरीर धारण होवे है जो उपासक लोक परमेश्वरका ध्यान करना चाहते हैं तिनके लिये किसी प्रकार यह मेरे शंख चक्र गदा पद्म हस्तोंमें धारण किये हूये और मस्तकमें रत्नोंका मुकट धारण किये वनमाला करके विभूपित हूये चतुर्भुजोंवाले पीतांबर पहरे हूये शरदऋतुके आकाशकी न्यांई नीलवर्ण और कंकण कुंडलादि भूषणोंकरके अलंकृत हूये खिले हूये कमलके समान नेत्रवाले मंद मंद हास्य करते हूये और महामायारूप लक्ष्मीको अपने वाम भागमें विराजमान किये हूये और सर्वज्ञता सर्वशक्तिपणादिक अनंत कल्याण गुणोंके आश्रयभूत सगुण स्वरूपको शीघ्रहि ध्यानमें लायकर उपासक लोक अनायाससेही संसारबंधनसे मुक्त हो जावें इस लिये अव्यक्तभी परमेश्वर विष्णु शरीरको अंगीकार करके विराजमान होवे है क्योंकि किसी आकारके विना परमेश्वरका अव्यक्त स्वरूप शीघ्र ध्यानमें नहि आय सके है तथा

सर्वदर्शन संग्रहमेभी लिखा है । 'आकारवांस्त्वं नियमादुपास्यो न वस्त्वनाकारमुपैति बुद्धिः' । अर्थ—हे ईश्वर तुमारा अवश्य किसी आकारसे ध्यान हो सके है क्योंकि अनाकार वस्तुको बुद्धि ग्रहण नहि कर सकती है इति ॥ १६ ॥

विष्णुव्यक्तीनामपि तत्र तत्र पृथक्त्वं श्रूयते । तथाहि । वैकुंठलोकनियलैका क्षीरार्णवांतर्गतश्वेतद्वीपाधिष्ठान्यपरा पातालतलवर्तिशेषनागशरीरशायिनी काचित् गोलोकविलासिनी चान्या । तत्र का परमेश्वरस्य तनुरस्तीति जिज्ञासायामाह ।

स्थानभेदेप्येकत्वमभिन्नत्वाद्योगिवत् ॥ १७ ॥

वैकुंठश्वेतद्वीपादिस्थानभेदेपि भगवद्व्यक्तीनामेकत्वमेव निश्चेयं कुतः अभिन्नत्वात् । परस्परमभिन्ना हि ता व्यक्तयः । केवलमुपासकजनानुकूलतार्थं व्यक्तिभेदः प्रतीयते नहि प्रतीतिमात्रेण तासां पृथक्त्वं संभवति तत्रेदं निदर्शनं योगिवदिति । यथा योगी योगवलोपेतः संकल्पमात्रेण वहूनि शरीराणि विनिर्माय पृथक् पृथक् स्थानगतः पृथक् पृथक् व्यवहारं करोति । यथोक्तं महाभारते मोक्षधर्मे 'आत्मनां च सहस्राणि वहूनि भरतर्षभ । योगः कुर्याद्बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत् । प्राप्नुयाद्विषयान् कैश्चित्कैश्चिदुग्रं तपश्चरेत् । संहरेच्च पुनस्तात सूर्यस्तेजोगुणानिवे'ति ।

तद्वत्परमेश्वरोपि मायया पृथक्व्यक्तिमानिव पृथग् स्थान-
गतः प्रतीयते । न तासां व्यक्तीनां मनागपि भेदो विद्यते
संकल्पमात्रनिर्मितत्वादिति ॥ १७ ॥

यद्यपि यह वार्ता ठीक है परंतु विष्णुकी व्यक्तियोंकाभी इति-
हास पुराणादिकोंमें पृथक् पृथक् भेद सुननेमें आवे है जैसे कि
वैकुंठलोकमे रहनेवाली एक और क्षीरसागरमें श्वेतद्वीपमें रहनेहारी
दूसरी पाताललमें शेषनागके शरीरपर शयन करनेहारी तीसरी
गोलोकमें विलास करणेहारी चतुर्थी इत्यादि जो भिन्न भिन्न व्यक्तियां
श्रवणमें आती हैं तिन सर्वमें परमेश्वरकी कौनसी व्यक्ति है ऐसी
जिज्ञासा होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'स्थानभेदेप्येकत्वमभिन्नत्वाद्योगिवत्' वैकुंठ श्वेतद्वीपादिक स्था-
नोंके भेद होनेपरभी भगवान्की व्यक्तियोंका एकत्वहि निश्चय
करना चहिये क्योंकि अभिन्नत्वात् कहिये परस्पर सो सर्व व्यक्तियां
अभिन्नहि हैं केवल उपासक लोकोंकी अनुकूलताके लिये तिनका
भेद प्रतीत होवे है सो प्रतीतिमात्रसे तिन व्यक्तियोंका भिन्नपणा
नहि संभवे है जैसे योगी पुरुष योगबल करके युक्त भया संकल्प-
मात्रसेहि अपने बहुतसे शरीरोंको निर्माण करके जुदा जुदा स्थानोंमें
रहकर जुदा जुदा व्यवहार करता है जैसे कि महाभारतके मोक्ष-
पर्वमें लिखा है 'आत्मनां च सहस्राणि बहूनि भरतर्षभ । योगः
कुर्याद्बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत् । प्राप्नुयाद्विषयान् कैश्चित् कैश्चिदुग्रं

तपश्चरेत् । संहरेच्च पुनस्तात सूर्यस्तेजोगुणानिव' । अर्थ—हे भरतर्षभ कहिये युधिष्ठिर योगी पुरुष योगबलसें अपने हजारों शरीर बनायलेवे है और तिन सर्व शरीरों करके पृथिवीमें विचरे है तिनमें केई शरीरोंसे विषयोंको भोगे हैं और केई शरीरोंकरके उग्र तप करे हैं और पुनः जैसे सूर्य अपनी किरणोंको सायंकालमें संकोच लेवे है तैसे योगी अपने सर्व शरीरोंका संकोच कर लेवे है इति । तैसेहि परमेश्वरभी पृथक् पृथक् स्थानोंमें भिन्न भिन्न व्यक्तिवाला प्रतीत होवे है वास्तवमें तिन व्यक्तियोंमें किंचित्भी भेद नहि है क्योंकि सो सर्व व्यक्तियां केवल ईश्वरके संकल्पमात्रसे निर्माण करी हूई हैं इति ॥ १७ ॥

मास्तु परस्परं वैष्णवव्यक्तीनां पृथक्त्वं परं तु तासु कस्या व्यक्तेर्मुख्यत्वमस्तीति जिज्ञासायां निर्णयमाह ।

वैकुंठौकसः पूर्वत्वात् ॥ १८ ॥

पूर्वोक्तानां भगवद्व्यक्तीनां सार्वज्ञ्यादिसर्वगुणैः साम्येपि वैकुंठनिलयस्य भगवतो व्यक्तेरेव तासु सर्वासु प्रधानतयाऽऽराधनं कर्तव्यं। कुतः पूर्वत्वात् वैकुंठलोकगतस्य भगवत्स्वरूपस्यान्यस्वरूपेभ्यः पूर्वमनादिकालादाविर्भूतत्वात् ।तथाहि 'ब्रह्मणः सदनादूर्ध्वं तद्विष्णोः परमं पदमि'ति हि भारतवाक्यं सृष्टिक्रमे चोर्ध्वगता लोकाः प्रथमतो भवंत्यधोगताश्च पश्चात् 'ऊर्ध्वमूलोवाक्शाख एषोश्वत्थः सनातन'

इति यजुर्वेदीयकठोपनिषद्वचनात्। ततो भूमंडलांतर्गतश्वेतद्वीपस्य पातालतलगतस्य च नागलोकस्यावश्यं वैकुंठलोकात्पश्चान्निर्माणं युक्तं ततस्तद्गतभगवत्स्वरूपयोरपि वैकुंठगतस्वरूपादपूर्वत्वमेव समंजसं। गोलोकस्यापि स्वर्गलोकादुपरि गतत्वादपूर्वत्वमेव युक्तं। तथाच भारतेनुशासनपर्वणि सुरभीं प्रति ब्रह्मणो वचनं। 'त्रयाणामपि लोकानामुपरिष्टान्निवत्स्यसि। मत्प्रसादाच्च विख्यातो गोलोकः स भविष्यति'। तत्रैव भगीरथप्रसंगेपि। 'अतीत्य सुरलोकं च गवां लोकं च भारत। ऋषिलोकं च सोगच्छद्भगीरथ इति श्रुत'मित्यतस्तद्गतव्यक्तेरप्यपूर्वत्वमेव क्वचित्पुराणेषु यद्गोलोकस्य वैकुंठात्परत्वं श्रूयते तत्तु केवलं कृष्णावतारस्य विशेषतया माहात्म्यप्रद्योतनार्थमुपवर्णितमस्तीति वेदितव्यं। नह्यंशावतारस्यांशिभूतस्वरूपादूर्ध्वं स्थानं भवितुमर्हति। अंशत्वं चोक्तं भारत मोक्षधर्मे। मूलस्थायी महादेवो भगवान् स्वेन तेजसा ॥ तत्स्थः सृजति तान् भावान् नानारूपान्महामनाः। तुरीयार्द्धेन तस्येमं विद्धि केशवमच्युत'मिति ॥ १८ ॥

इस उक्त रीतिसे विष्णुकी व्यक्तियोंमें परस्पर भेद मत होवो परंतु तिन सर्वमें किस व्यक्तिकी मुख्यता है ऐसी जिज्ञासा होनेतें उत्तर कथन करे हैं.

'वैकुंठौकसः पूर्वत्वात्' यद्यपि पूर्वोक्त भगवान्‌की सर्वहि व्यक्तिया सर्वज्ञता सर्वशक्तित्वादिक सर्वगुणोंमें समानहि हैं तथापि वैकुंठलोकनिवासी जो विष्णु भगवान्‌की व्यक्ति है तिसहिका तिन सर्व व्यक्तियोंसे मुख्यता करके आराधन करणा योग्य है क्योंकि पूर्वत्वात् कहिये वैकुंठलोकगत जो भगवान्‌का स्वरूप है सो दूसरे स्वरूपोंसें प्रथम अनादि कालसे आविर्भाव हूया है सो जैसे महाभारतमें लिखा है 'ब्रह्मणः सदनादूर्ध्वं तद्विष्णोः परमं पदं'। अर्थ– ब्रह्माके लोकसे ऊपर विष्णुलोक है इति और सृष्टि क्रममेंभी ऊपरके लोक पहले होते हैं और नीचेके पीछे बनते हैं तथा यजुर्वेदीय कठउपनिषत्में यह वार्ता कथन करी है। 'ऊर्ध्वमूलोवाक्शाख एषोश्वत्थः सनातनः।' अर्थ—यह जगत्‌रूप जो पुरातन पीपलका वृक्ष है इसका मूल ऊपरको है और शाखा नीचेको हैं इति। यातें भूमंडलांतर्गत जो श्वेतद्वीप है और पातालतलगत जो नागलोक है तिन दोनोंका अवश्य वैकुंठलोकसे पीछे निर्माण होना युक्त है और तिनमें रहनेहारे भगवान्‌के स्वरूपोंकाभी वैकुंठगत स्वरूपसे पश्चात् आविर्भाव होनाहि युक्त है तथा गोलोकभी स्वर्गलोकके ऊपर होनेतें वैकुंठ लोकसे पीछेहि निर्माण हूया है तथा महाभारतके अनुशासन पर्वमेंभी लिखा है। 'त्रयाणामपि लोकानामुपरिष्टान्निवत्स्यसि। मत्प्रसादाच्च विख्यातो गोलोकः स भविष्यति'। अर्थ–ब्रह्माने सुरभीगौको वरदान दिया कि हे सुरभी तुं तीनों लोकोंसे

ऊपर निवास करेगी और मेरी कृपासे तेरे निवासका स्थान गोलोक नामसे प्रसिद्ध होवेगा इति । तथा तहांहि भगीरथके प्रसंगमेंभी लिखा है । 'अतीत्य सुरलोकं च गवां लोकं च भारत । ऋषिलोकं च सोऽगच्छद्भगीरथ इति श्रुतम्' । अर्थ—भीष्मजी कहते हैं हे युधिष्ठिर स्वर्गलोक और गोलोक तथा ऋषिलोकको अतिक्रमण करके भगीरथ ब्रह्मलोकको जाता भया यह हमने सुना है इति । यातें गोलोकगत स्वरूपकाभी वैकुंठगत स्वरूपसे पीछेहि आविर्भाव होना युक्त है और जो कहीं गर्गसंहिताआदिकोंमें गोलोक वैकुंठसे परे श्रवणमें आवे है सो तो केवल कृष्णावतारका विशेष करके माहात्म्यद्योतनकरणेके लिये कथन किया हूया जान लेना क्योंकि अंशावतारका अंशीभूत स्वरूपसे ऊपर स्थान नहि संभवे है सो कृष्णजीका अंशावतारपणाभी महाभारतके मोक्षपर्वमें निरूपण किया है । 'मूल स्थायी महादेवो भगवान् स्वेन तेजसा । तत्स्थः सृजति तान् भावान् नानारूपान् महामनाः । तुरीयार्द्धेन तस्येमं विद्धि केशवमच्युतम्' । अर्थ—हे राजन् जगत्के मूलभूत वैकुंठलोकमें रहनेहारे जो सर्व देवोंसे श्रेष्ठ विष्णु भगवान् हैं सो अपने तेजसें नानाप्रकारके स्वरूपोंको धारण करते हैं तिसी भगवान् के अष्टमांशसे प्रकट भये तुं इस कृष्णजीको जान इति ॥ १८ ॥

ननु चतुर्भुजाद्याकारनीलादिवर्णयुक्तत्वाद्विष्णुशरीरस्याप्यसदादिवत् भौतिकत्वं कुतो न स्यात् तत्राह ।

न पांचभौतिकं मायामात्रत्वात् ॥ १९ ॥

रूपाकारादियुक्तत्वादपि विष्णोः कलेवरं। पंचभूतमयं नास्ति कुतः मायामात्रत्वात् केवलं मायया परमेश्वरस्येच्छयैव रचितत्वादित्यर्थः। सत्यसंकल्पत्वादीश्वरस्य यस्मिन् काले यादृशीच्छा भवति तादृगेव रूपं तत्क्षणादाविर्भवति न तत्र पृथिव्यादिभूतसाहाय्यमपेक्ष्यते। 'माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद। सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवं त्वं ज्ञातुमर्हसी'ति भारते भगवद्वचनात्। नृसिंहादिस्वरूपेषु प्रसिद्धं चैतदतः केवलं सत्तामात्रत्वमेव वैष्णवव्यक्तेरवसेयमिति ॥ १९ ॥

चतुर्भुजादि आकार और नीलादिवर्ण करके युक्त होनेतें विष्णुका शरीरभी हमारे शरीरोंकी न्यांई पांच भूतजन्य क्यों नहि हो सकता ऐशी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'न पांचभौतिकं मायामात्रत्वात्' चतुर्भुजादि आकार और नीलादिवर्णवाला होनेपरभी विष्णु भगवान्‌का शरीर पंचमहाभूतजन्य नहि है क्योंकि मायामात्रत्वात् कहिये केवल परमेश्वरकी इच्छामात्रसे तिस शरीरका निर्माण होवे है ईश्वरको सत्यसंकल्प होनेतें जिस कालमें जैसी इच्छा होती है तिसी क्षणमें तैसाहि स्वरूप प्रकट हो जावे है तिसमें पृथिवीजलादिकतत्वोंकी सहायताकी आवश्यकता नहि होवे है। तथा महाभारतके मोक्षपर्वमें

नारदके प्रति स्वयंभगवान्ने कहा है 'माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद । सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवं त्वं ज्ञातुमर्हसि'। अर्थ—जब श्वेतद्वीपमें नारदमुनिके प्रति भगवान्ने विश्वरूप दिखलाया तब पीछे कहा कि हे नारद यह जो तुं मेरे नानाप्रकारके रूप देखता है सो केवल यह मैने माया रची हैं यातें तुं इस प्रकार सर्वभूतों-करके युक्त मेरेकों नहि समझना इति । तथा नरसिंहादिक स्वरूपोंमें यह वार्ता प्रसिद्धहि है कि पंचमहाभूतोंकी सहायताके विना केवल संकल्पमात्रसेंहि नरसिंहरूप प्रकट होजाता भया यातें विष्णुके शरीरको केवल सत्तामात्रहि जानना योग्य है इति ॥ १९ ॥

तदेवं परमेश्वरस्य व्यक्तं स्वरूपं निरूपयित्वाधुना तस्यार्च-नप्रकारं वर्णयति ।

बहिरंतस्तदर्चनम् ॥ २० ॥

तस्य व्यक्तस्येश्वरस्वरूपस्य भगवतो नारायणस्य प्रका-रद्वयेनार्चनं भवति शरीराद्बहिस्तदंतश्च तयोरुभयोरेकतरं द्वयं वा स्वाधिकारानुसारेण कर्तव्यमिति ॥ २० ॥

इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे परमेश्वरके व्यक्त स्वरूपका निरूपण करके अब तिसके अर्चनका प्रकार वर्णन करे हैं.

'वहिरंतस्तदर्चनम्' तिस ईश्वरके व्यक्त स्वरूप विष्णुभगवान्का दोप्रकारसे अर्चन होवे है एकतो शरीरसे बाहिर और दूसरा शरी-

रके अंतर तिन दोनोंमेंसे अपने अधिकारके अनुसार एक अथवा दोनों करणे चहिये इति ॥ २० ॥

एवं साधारणतया प्रकारद्वयमुक्त्वाधुनाधिकारभेदेन तत्र विशेषं दर्शयति ।

वाह्यं गृहिणामस्थिरचित्तत्वात् ॥ २१ ॥

गृहिणां सपरिवारं गृहे वर्तमानानां गृहस्थानां बाह्यमेवार्चनं विधीयते कुतः अस्थिरचित्तत्वात् कुटुंवपोषणभारेण श्रौतस्मार्तकर्माधिकारभारेण च पीडितत्वाच्चित्तस्य प्रायो गृहाश्रमे स्थैर्यं न भवति। ततश्चित्तैकाग्रताभावादंतर्मुखेन मनसा सम्यक्तया न तैरीश्वराराधनं कर्तुं शक्यते। तस्मादस्थिरमानसैः पुरुषैर्वाह्यमेव भगवदर्चनं विधेयं । सूत्रे एवकाराभावात् सत्यनुकूलत्वे गृहस्थैर्मानसार्चनमपि कर्तव्यमित्यनुज्ञायत इति ॥ २१ ॥

ऐसे साधारणतासे अर्चनके दो भेद कथन करके अव तिसमें अधिकारके भेदसे विशेषता दर्शावे हैं.

'वाह्यं गृहिणामस्थिरचित्तत्वात्' गृहिणां कहिये सहित परिवारके गृहमें वर्तमान जो गृहस्थलोक हैं तिनके प्रति बाह्यार्चनकाहि विधान है क्योंकि अस्थिरचित्तत्वात् कहिये कुटुंबपोषणके भारसे और श्रौत स्मार्त कर्मोंके अधिकारके भारसे पीडित होनेतें प्रायः गृहाश्रममें चित्तकी स्थिरता नहि होवे है और चित्तकी एकाग्रताके हिन

होनेतें अंतर्मुख मन करके सो ईश्वरका अर्चन ठीक ठीक नहि कर सकते हैं यातें गृहस्थ पुरुषोंको भगवान्का वाह्यार्चनहि करना योग्य है मूलसूत्रमें एवकार नहि है इस लिये जो एकांतस्थान और चित्तकी एकाग्रतादिक व्यवहार अनुकूल होवे तो गृहस्थ लोकोंको मानसार्चन करनेकीभी अनुज्ञा सूचन करी है इति ॥ २१ ॥

तदेतद्बाह्यार्चनं केन प्रकारेण कार्यं तत्राह ।

प्रतिमायां सौकर्यात् ॥ २२ ॥

प्रतिमायामेव बाह्यार्चनं कर्तव्यं कुतः सौकर्यात् । कस्मिंश्चिदाधारे हि पूजनं सुकरं भवति। नह्याधारमंतराधेयस्यावाहनस्थापनादिकर्तुं शक्यते तस्मात्स्वेष्टदेवस्य परमेश्वरविग्रहस्य भगवतो मूर्तावेवार्चनं कर्तव्यमिति ॥२२॥

सो यह बाह्यार्चन किस प्रकारसे करना चहिये ऐसी जिज्ञासा होनेतें तिसका विधान निरूपण करे हैं.

'प्रतिमायां सौकर्यात्' प्रतिमामेंहि बाह्यार्चन करना चहिये क्यों कि सौकर्यात् कहिये किसी आधारमेंहि पूजन सुकर हो सकता है आधारके विना आधेय देवताका आवाहन स्थापनादिक नहि हो सके है यातें अपने इष्टदेव परमेश्वरके स्वरूपका बाह्य मूर्तिमेंहि अर्चन करना योग्य है इति ॥ २२ ॥

शिष्टपरिग्रहाच्च ॥ २३ ॥

शिष्टपरिग्रहादपि मूर्त्तावेवार्चनं युक्तं शिष्टैः पूर्वाचार्यैर्महर्षिभिश्च प्रायेण सर्वत्र प्रतिमायामेव व्यक्तेश्वरस्यार्चनविधानं प्रोक्तं यैर्यैश्च पूर्वं शिष्टपुरुषैर्दाशरथिमार्कंडेययुधिष्ठिरप्रभृतिभिरीश्वराराधनं कृतं प्रायस्तैस्तैर्मूर्तिद्वारैव कृतमिति सर्वत्र भारतादीतिहासेषु प्रसिद्धमेव रामेश्वररंगनाथकांचीकेदारबदरिकाश्रमादिस्थानैश्चैतन्निश्चीयते ततः शिष्टसंप्रदायादद्यापि प्रतिमायामेवेश्वरार्चनं विधेयमिति ॥ २३ ॥

किंच ।

'शिष्टपरिग्रहाच्च' शिष्ट पुरुषोंकी परिपाटी होनेतेंभी प्रतिमामेंहि पूजन करना युक्त है क्योंकि पूर्वके आचार्योंने और महर्षियोंने प्रायः सर्वत्र प्रतिमामेंहि भगवान्का अर्चन विधान कथन किया है तथा जिन जिन रामचंद्र मार्कंडेय युधिष्ठिरादिक शिष्टपुरुषोंने पूर्व भगवान्का आराधन किया है प्रायः तिन तिनोंने मूर्तिद्वाराहि किया है यह वार्ता महाभारतादिक इतिहासोंमें सर्वत्र प्रसिद्ध है रामेश्वर रंगनाथ कांची केदार बदरिकाश्रमादिक पुरातन स्थानोंसेभी शिष्टसंप्रदायका निश्चय होवे है. यातें शिष्टसंप्रदायके अनुसार अबभी प्रतिमामेंहि भगवान्का अर्चन करना योग्य है इति ॥२३॥

कीदृशीश्वरस्य प्रतिमा कार्येति जिज्ञासायामाह ।

तन्निष्पत्तिरागमात् ॥ २४ ॥

तस्याः प्रतिमाया निर्माणं तु आगमात् विज्ञेयं श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणेषु यादृशं परमेश्वरस्य विष्णोश्चतुर्भुजादिस्वरूपं वर्णितमस्ति तदाकारैव मूर्तिरर्चकेन संपादनीया। शिलाधातुचित्रमयीनामन्यतमायां प्रतिमायां वा शालिग्रामविग्रहे सर्वगतस्य भगवतो नारायणस्यावाहनं कृत्वा शास्त्रोक्तक्रमेण पुष्पचंदनाद्युपचारविशेषैरादरेणार्चनं कुर्यादित्यर्थः ॥ २४ ॥

सो भगवान्की प्रतिमा किस प्रकारकी करणी चहिये ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं.

'तन्निष्पत्तिरागमात्' तिस प्रतिमाका निर्माण करना शास्त्रसे जानना चहिये अर्थात् श्रुतिस्मृति-इतिहास पुराणोंमें जिस प्रकारका विष्णु भगवान्का चतुर्भुजादि स्वरूप वर्णन किया है तिसी प्रकारकी मूर्ति पूजक पुरुषको संपादन करनी चहिये शिलामयी वा धातुमयी वा चित्रमयी प्रतिमामें अथवा शालिग्रामस्वरूपमें विष्णु भगवान्का आवाहन करके शास्त्रोक्त रीतिसे पुष्प चंदनादिक उपचारोंसे आदर और श्रद्धापूर्वक अर्चन करनायोग्य है इति ॥२४॥

किंच ।

सात्विकैस्तत्प्रियत्वात् ॥ २५ ॥

सात्विकैः सत्वगुणप्रधानैरेव दधिघृतपायसादिभिर्द्रव्यै-

भगवतोऽर्चनं कुर्यात्। नतु कदापि राजसैराजिकामिषादिभिस्तामसैर्लशुनमद्यादिभिश्च विष्णोरर्चनं कार्यम्। कुतः तत्प्रियत्वात्। सात्विकमेव हि द्रव्यं विष्णोः प्रियमस्तीति विज्ञेयं ततस्तस्यार्चनं सात्विकद्रव्यैरेव युक्तमिति ॥२५॥

किंच।

'सात्विकैस्तत्प्रियत्वात्' सात्विकैः कहिये सत्वगुण प्रधान जो दधि घृत पायसादिक द्रव्य हैं तिन करकेहि भगवान्का अर्चन करना चहिये किंतु राजस जो राई और मांसादिक पदार्थ हैं और तामस जो लशुन और मदिरादिक पदार्थ हैं तिन करके कदाचित्भी विष्णु भगवान्का पूजन नहि करना चहिये क्योंकि तत्प्रियत्वात् कहिये सत्वगुणमय स्वभाव होनेतें विष्णु भगवान्को सात्विक पदार्थहि प्यारे हैं यातें तिनका अर्चनभी सात्विक पदार्थोंसेहि करना योग्य है इति २५

किंच।

मंत्रपूर्वकं विशेषत्वात् ॥ २६ ॥

प्रतिमायामावाहनस्नानादिकं सर्वं मंत्रपूर्वकं कर्तव्यं कुतः विशेषत्वात् मंत्रयुक्तं कृतं हि पूजनं विशेषफलप्रदं भवति। यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति श्रुतिवचनात् पूजनमंत्रास्तु श्रौताः स्मार्ता वा ग्राह्याः सूत्रे एवकाराभावात् विना मंत्रं भाव-

नामात्रेण कृतमपि पूजनं यथोक्तफलावहं भवतीति सूचितं तस्मात्समंत्रममंत्रं वा श्रद्धया भगवदर्चनं कृतमवश्यं फलदं भवतीति विज्ञेयम् ॥ २६ ॥

किंच ।

'मंत्रपूर्वकं विशेषत्वात्' प्रतिमामें आवाहन स्नानादिक सर्व क्रिया मंत्रपूर्वकहि करनी चहिये क्योंकि विशेषत्वात् कहिये मंत्रयुक्त पूजन करनेसें विशेष फलकी प्राप्ति होवे है तथा सामवेदकी छान्दोग्य उपनिषत्में भी लिखा है 'यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति ।' अर्थ—यह पुरुष जो कर्म विद्या श्रद्धा और शास्त्रोक्त रीतिसे करता है सोई अधिक बलवाला अर्थात् अधिक फलका हेतु होवे है इति । सो पूजन वेदोक्त मंत्रोंसे अथवा स्मार्त मंत्रोंसे करना चहिये मूलसूत्रमें एवकार नहि है यातें विना मंत्र भावनामात्रसे किया हुया पूजन भी यथोक्त फलका हेतु होवे है यह सूचन किया है इसलिये मंत्रसहित अथवा मंत्रकेविना श्रद्धासे किया हुया भगवान्‌का अर्चन अवश्य फलदायक होवे है यह जानना चाहिये इति ॥ २६ ॥

किंच ।

मूर्तिमतोऽनुसंधानं न तन्मात्रम् ॥ २७ ॥

मूर्तिपूजनसमये यस्येश्वरविग्रहस्य सा मूर्तिर्भवेत् तस्य मूर्तिमतश्चेतनस्य भगवतः स्वरूपं तत्रानुसंधेयं कुतः न

तन्मात्रं नहि तावन्मात्रं शिलापित्तलादिमात्रं जडं परमेश्वरस्य स्वरूपं भवितुमर्हति सच्चिन्मात्रत्वादीश्वरस्वरूपस्य मूर्तेस्तु केवलं देवतायाः स्वरूपाकारयोर्बोधनमेव प्रयोजनं मुख्यं तु तत्र मूर्तिमतश्चिंतनमेव विशेषफलदं भवतीति बोद्धव्यं तस्मान्न केवलमूर्तावेवाग्रहः कर्तव्य इति ॥२७॥

किंच।

'मूर्तिमतोऽनुसंधानं न तन्मात्रम्' मूर्तिपूजनकालमें जिस ईश्वरके विग्रहकी सो मूर्ति होवे तिस मूर्तिवाले भगवान्‌के चेतनस्वरूपकाहि पूजक पुरुषको चिंतन करना चहिये क्योंकि न तन्मात्रं कहिये शिला पित्तलादिक मात्र जडरूपहि भगवान्‌का स्वरूप नहि हो सकै है क्योंकि परमेश्वरका स्वरूप तो सच्चिदानंदमय शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है मूर्तिका तो केवल इष्ट देवके स्वरूप और आकारका बोधन करानाहि प्रयोजन है मुख्यतो तहां मूर्तिवाले चेतन स्वरूपका चिंतन करनाहि विशेष फलका हेतु होवे है यातें केवल मूर्तिमात्रमें हि आग्रह नहि करणा चहिये इति ॥ २७ ॥

ननु मूर्तिमतश्चेतनस्यैव यदि पूजनं मुख्यं तर्हि मूर्तिसंपादनं व्यर्थमेवेति शंकायामाह।

द्वारभूतत्वात्तु नानर्थक्यम् ॥ २८ ॥

तुशब्देनाक्षेपं वारयति मूर्तिमत एव पूजने प्रधानेऽपि मूर्तिस्थापनं नानर्थकं भवति कुतः द्वारभूतत्वात् मूर्तिमतः

पूजने मूर्तिरेव द्वारं नह्याधारं विनाधेयस्यावाहनादिकं सुकरं भवति पूज्यदेवतायाः स्वरूपाकारयोर्ज्ञानं च मूर्तिमंतरा न सहसा सर्वेषां जायते तस्मात्स्वेष्टदेवस्येश्वरस्वरूपस्य मूर्तिद्वारैवार्चनं कर्तव्यमिति ॥ २८ ॥

जो मूर्तिवाले चेतनस्वरूपकाहि पूजन मुख्य फलदायक है तो फिर आगे मूर्ति स्थापन करना व्यर्थहि है ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं

'द्वारभूतत्वात्तु नानर्थक्यम्' यद्यपि मूर्तिवाले चेतनस्वरूपका पूजनहि मुख्य है तथापि मूर्तिका स्थापन करणा व्यर्थ नहि है काहेतें द्वारभूतत्वात् कहिये मूर्तिवाले चेतनस्वरूपके पूजन करणेमें मूर्तिहि द्वारभूत है क्योंकि विना आधारके आधेय स्वरूपका आवाहन स्थापनादिक करना कठिन होवे है तथा मूर्तिकेविना पूज्य देवताके स्वरूप और आकारका बोध भी यथावत् नहि हो सकै है क्योंकि-हमारे इष्ट देवका किस प्रकारका आकार और स्वरूप है यह वार्ता मूर्ति देखे विना निश्चय नहि हो सकै है यातें अपने इष्ट देव ईश्वरके स्वरूपका मूर्तिद्वाराही पूजन करना योग्य है इति ॥२८॥

तदेवं बाह्यार्चनाधिकारं तत्प्रकारं च निरूपयित्वाधुनांतरार्चनं वर्णयन्नादौ तदधिकारं दर्शयति ।

योगिनां मानसं मुख्यत्वात् ॥ २९ ॥

योगिनां सुसमाहितचेतसां विरक्तानां त्यक्तसर्वपरिग्र-

हाणां मानसमेवार्चनं विधीयते कुतः मुख्यत्वात् तेषां तदेव हि मुख्यं विशेषफलहेतुत्वात्। तथाचोक्तं योगभाष्ये। 'ये चैते मैत्र्यादयो ध्यायिनां विहारास्ते वाह्यसाधननिरनुग्रहात्मानः प्रकृष्टं धर्ममभिनिर्वर्तयंतीति'। ततस्त्यागित्वे सति वाह्योपकरणसंपादनस्य परिश्रमहेतुत्वात् विशेषफलजनकत्वाच्च मानसस्यातस्त्यागिभिराभ्यंतरमेवेश्वरस्यार्चनं विधेयमित्यभिप्रायः सूत्रे एवकाराभावात् क्वचिन्निमित्तवशाद्वाह्यार्चनमपि त्यागिनामनुज्ञायत इति ॥ २९ ॥

इस प्रकारसे वाह्यार्चनका अधिकार और तिसके करणेका विधान निरूपण करके अब आंतरार्चनका वर्णन करते हुये प्रथम तिसका अधिकार दर्शावे हैं

'योगिनां मानसं मुख्यत्वात्' योगिनां कहिये समाहित चित्तवाले संसारसे विरक्त और सर्व परिग्रह करके रहित जोत्यागी पुरुष हैं तिनको मानसपूजनहि करना चहिये क्योंकि मुख्यत्वात् कहिये तिनके प्रति विशेप फलका हेतु होनेतें मानस पूजनहि मुख्य है तथा योगभाष्यमे व्यासजीने भी कहा है। 'ये चैते मैत्र्यादयो ध्यायिनां विहारास्ते वाह्यसाधननिरनुग्रहात्मानः प्रकृष्टं धर्ममभिनिर्वर्तयंति।' अर्थ—योगी पुरुषोंके जो मैत्री करुणा शमदमादि विहार हैं सो बाह्य साधनोंकी अपेक्षाके विनाहि उत्तम धर्मको उत्पन्न करते हैं इति ॥ विरक्तपणेमे वाह्य सामग्री संपादन करणेमें परिश्रम होनेतें और मानस

पूजनको अधिक फलका हेतु होनेतें त्यागी पुरुषोंको अभ्यंतर मनसेहि ईश्वरका अर्चन करना योग्य है इति ॥ २९ ॥

तदेतदांतरार्चनं केन प्रकारेण कार्यमिति जिज्ञासायामाह ।

देहे पीठचिंतनं तद्विधानात् ॥ ३० ॥

परमेश्वरस्य मानसपूजनमभिलषन् प्रथमं देहे स्वशरीरे देवतायाः स्थित्यर्थं पीठचिंतनं कुर्यात् कुतः तद्विधानात् तस्य पीठचिंतनप्रकारस्येष्टदेवार्चनसमये तंत्रशास्त्रेषु विधानं श्रूयते । तथाच मंत्रमहोदधौ ।

'मंडूकश्चाथ कालाग्निरुद्र आधारशक्तियुक् । कूर्मो धरासुधासिंधुः श्वेतद्वीपं सुरांघ्रिपाः ॥ मणिहर्म्यं हेमपीठं धर्मो ज्ञानं विरागता । ऐश्वर्यं धर्मपूर्वास्तु चत्वारस्ते नजादिकाः ॥ धर्मादयः स्मृताः पादाः पीठगात्राणि चापरे' इत्यादिश्लोकैः पीठरचनाप्रकारो वर्णितोऽस्ति परंत्वत्रैतावन्मात्रस्यैवोपयोगित्वान्न तत्सर्वं प्रकरणमुपन्यस्तमिति ॥ ३० ॥

सो यह आंतरार्चन किस प्रकारसे करना चहिये ऐसी आकांक्षा होनेतें तिसका विधान कथन करे हैं

'देहे पीठचिंतनं तद्विधानात्' परमेश्वरके मानसपूजन करणेकी इच्छावाले पुरुषको प्रथम अपने शरीरमें पीठचिंतनं कहिये अपने इष्ट देवके बैठने योग्य आसनका चिंतन करना चहिये क्योंकि तद्विधानात् कहिये इष्ट देवके पूजनके प्रकरणमें तंत्रशास्त्रोंमें तिस

आसनके चिंतन करनेका विधान कथन किया है। तथा मंत्रमहोदधिमें लिखा है।

'मंडूकश्चाथ कालाग्निरुद्र आधारशक्तियुक्। कूर्मो धरा सुधासिंधुः श्वेतद्वीपं सुरांघ्रिपाः। मणिहर्म्यं हेमपीठं धर्मो ज्ञानं विरागता। ऐश्वर्यं धर्मपूर्वास्तु चत्वारस्ते नजादिकाः। धर्मादयः स्मृताः पादा पीठगात्राणि चापरे।' अर्थ—प्रथम मूलाधारचक्रमे मंडूकका चिंतन करे तिसके ऊपर कालाग्नि रुद्रका चिंतन करे तिसके साथ आधारशक्तिका तिसपर कूर्मका तिसपर पृथिवीका तिसपर अमृतके समुद्रका चिंतन करके तिसके बीचमें श्वेतद्वीपका चिंतन करे तिसके बीचमें कल्पवृक्षोंके वनके मध्यमें मणिमय मंदिरका चिंतन करे फिर तिस मंदिरके बीचमें रत्नजडित सुवर्णमय सिंहासनका चिंतन करे पश्चात् धर्मज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य यह चार तिस सिंहासनके पाये चिंतन करे और अधर्म अज्ञान अवैराग्य और अनैश्वर्य यह चारों सिंहासनके बाजू चिंतन करे इस प्रकार मूलाधारसे लेकर हृदयपर्यंत अपने शरीरमें सिंहासनका चिंतन करना चहिये इत्यादि और भी सिंहासनके चिंतनका प्रकार तंत्रशास्त्रोंमें लिखा है परंतु यहां इतनाहि उपयोगी होनेतें विशेष नहि लिखा है इति ॥३०॥

एवं पीठचिंतनं कृत्वा पश्चात् किं कार्यं तदाह।

तस्मिन्नावर्त्तनक्रमेण देवस्य ॥ ३१ ॥

तस्मिन् कांचनमये सिंहासने स्वेष्टदेवस्येश्वरविग्रहस्या-

वर्तनक्रमेण चिंतनं कर्तव्यमितिपूर्वसूत्रादनुवर्तते पादतला-दारभ्य मस्तकपर्यंतमूर्ध्वं क्रमेण पृथक् देवस्यांगानि चिंत-येत् पुनर्मस्तकादारभ्यापादतलमधोविचिंतयेदित्येवं मुहुर्मु-हुरावर्तनं कुर्यादित्यर्थः ॥ ३१ ॥

इसप्रकारसे सिंहासनका चिंतन करके पश्चात् क्या करना चहिये सो कहे हैं.

'तस्मिन्नावर्तनक्रमेण देवस्य' तस्मिन् कहिये तिस सुवर्णमय सिंहासन ऊपर अपने इष्टदेव ईश्वरके स्वरूपका आवर्तन क्रमसें चिंतन करना चहिये अर्थात् प्रथम चरणसे लेकर मस्तकपर्यंत ऊपरको भिन्न भिन्न भगवान्के सर्व अंगोंका चिंतन करे फिर मस्तकसे लेकर चरणपर्यंत नीचेकी तरफ सर्व अंगोंका चिंतन करे इस रीतिसे वारंवार चिंतन करना चहिये इति ॥ ३१ ॥

तदनंतरं ।

मानसोपचारैरैकाग्र्यात् ॥ ३२ ॥

एवं स्वशरीरे पीठमध्यगतं भगवत्स्वरूपं चिंतयित्वा मनसा कल्पितैरेव गंधपुष्पधूपदीपनैवेद्याद्यैरुपचारविशेषै-स्तस्य यथाक्रमं पूजनं कुर्यात् कुतः ऐकाग्र्यात् आंतरार्चने मानसोपचारैः पूजनं कुर्वतोस्य पुरुषस्य चित्तैकाग्र्यं जायते बाह्योपकरणसंपादनासक्तं तु चेतो न सम्यगेकाग्रं भवत्य-तोयोगिभिर्मानसोपचारैरेवेश्वरस्यार्चनं कर्तव्यमिति॥३२॥

तिसके अनंतर क्या करणा चहिये सो कथन करे हैं.

'मानसोपचारैरैकाग्र्यात्' इस प्रकार उक्त रीतिसे अपने शरीरके अंतर सिंहासनके मध्यमें स्थित भये भगवान्का स्वरूप चिंतन करके पश्चात् मनसे गंध पुष्प धूप दीप नैवेद्यादिक पदार्थोंकी कल्पना करके शिरसे लेकर चरणपर्यंत मनसेहि भगवान्का प्रीतिपूर्वक क्रमसे अर्चन करना चहिये क्योंकि ऐकाग्र्यात् कहिये आंतरार्चनमें मानसोपचारोंसे पूजन करनेसे उपासक पुरुषका चित्त एकाग्र होवे है और बाह्यार्चनमें तो बाहिरकी सामग्री संपादन करनेमें लगे हूये चित्तकी ठीक ठीक एकाग्रता नहि होवे हैं यातें योगि पुरुषोंको आंतरार्चनमे केवल मानसोपचारोंसेहि ईश्वरका अर्चन करना योग्य है, इति ॥ ३२ ॥

ननु कल्पनामात्रैर्गंधपुष्पादिभिरुपचारैः कथमीश्वरस्तुष्यतीति शंकायामुत्तरमाह ।

भावग्राहित्वान्न द्रव्यापेक्षा ॥ ३३ ॥

मानसार्चने वाह्यद्रव्याणां गंधपुष्पादीनामपेक्षा नास्ति कुतः भावग्राहित्वात् परमेश्वरो हि पुरुषस्य भावमेव गृह्णाति न पदार्थानुपादत्ते नहि समस्तजगद्गतपदार्थनिर्माणकारणस्येश्वरस्य लोकार्पितानां तुच्छपदार्थानामपेक्षा विद्यते वाह्यार्चनेऽपि श्रद्धात्मकेन भावेनैवार्पितानि नैवेद्यादीनि द्रव्याणीश्वरः समुररीकरोति नान्यथेति बोद्धव्यं। तथाचोक्तं

श्रीकृष्णेन गीतायां। 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन'इति। तस्मादांतरार्चने मानसैरेवोपचारैर्भगवतः श्रद्धयार्चनं कुर्यादित्यर्थः ॥ ३३ ॥

केवल मनसे कल्पना किये गंध पुष्पादिक पदार्थोंसे ईश्वरकी कैसे तुष्टि होवे है ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'भावग्राहित्वान्न द्रव्यापेक्षा' मानसपूजनमे गंध पुष्पादिक बाह्य पदार्थोंकी आवश्यकता नहि है क्योंकि भावग्राहित्वात् कहिये परमेश्वर तो केवल पुरुषके भावकोहि ग्रहण करता है पदार्थोंको ग्रहण नहि करता सर्वजगत्के पदार्थोंके रचनेहारे परमेश्वरको लोकोंके दिये हूये तुच्छ पदार्थोंकी कुछ अपेक्षा नहि है तथा बाह्यार्चनमे भी श्रद्धा प्रीतिपूर्वक अर्पण किये हुये नैवेद्यादिक द्रव्योको ईश्वर अंगीकार करता है अन्यथा नहि करता तथा गीतामें श्रीकृष्णजीने भी कहा है। 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥' अर्थ—हे अर्जुन जो पुरुष भक्तिपूर्वक पत्र पुष्प वा फल था जल मेरेको अर्पण करता है तिस प्रीतिसे दिये हुये पदार्थको मैं ग्रहण करताहुं इति ॥ यातें आंतरार्चनमें मानसोपचारोंसेहि श्रद्धापूर्वक भगवान्का अर्चन करना योग्य हे इति ॥ ३३ ॥

यदेतद्बाह्याभ्यंतरभेदेनार्चनमुपवर्णितं तत्किमेकस्य भगवतः स्वरूपमात्रस्य कर्त्तव्यमुत सपरिवारस्येत्यपेक्षायामाह ।

तत्सोपकरणमागमात् ॥ ३४ ॥

तदर्चनं सोपकरणं कर्त्तव्यं उपकरणेन सह वर्तत इति सोपकरणं समग्रपरिवारसहितमिति यावत् कुत एतज्ज्ञायते आगमात् शास्त्रप्रामाण्यादित्यर्थः । तथाहि । अथर्ववेदीयरामोपनिषदि । 'एतान् रामस्यांगान् पूजयेत् । अंगान् विना रामो विघ्नकरो भवती'ति । घेरंडसंहितायामपि । 'यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् । तद्रूपं तु तथा ध्यायेद्योगी सुस्थिरमानस' इति । तस्मात् तंत्रोक्तरीत्या सर्वांगसमन्वितस्यैव भगवतः पूजनं कुर्यान्नैकस्य स्वरूपमात्रस्येति ॥ ३४ ॥

यह जो वाह्यांतर भेदसे दो प्रकारका अर्चन निरूपण किया है सो क्या एकले भगवान्के स्वरूपमात्रकाहि करना चहिये किंवा सर्व परिवारसहितका करना चहिये ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं

'तत्सोपकरणमागमात्' सो भगवान्का अर्चन सोपकरणं कहिये समग्र परिवारके सहितहि करना चहिये क्योंकि आगमात् कहिये जहां जहां तंत्रादिक शास्त्रोंमें देवतायोंके अर्चनका विधान कथन किया है तहां तहां प्रायः सहितपरिवारकेहि विधान किया है तथा अथर्ववेदीयहनुमदुक्तरामउपनिषत् में लिखा है। 'एतान् रामस्यांगा-

न्पूजयेत् अंगान् विना रामो विघ्नकरो भवति ।' अर्थ—सीता लक्ष्मणादिक जो रामके अंग हैं तिनकाभी पूजन करे क्योंकि अंगोंके पूजन विना रामचन्द्र विघ्न करते हैं इति तथा घेरंडसंहितामेंभी कहा है । 'यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनं । तद्रूपं तु तथा ध्यायेद्योगी सुस्थिरमानसः ।' अर्थ—जिस देवताका जैसा स्वरूप जैसा भूषण और जो वाहनादिक अंग शास्त्रमें कथन किये होवें तैसेहि तिस स्वरूपका स्थिर मनसे योगीको चिंतन करना चहिये इति । यातें जिस परमेश्वरके स्वरूपका उपासक पुरुष अर्चन करना चाहे तो तंत्रशास्त्रोक्त रीतिसे सर्वांगसहितहि तिसका पूजन करना चहिये एकले स्वरूपमात्रका नहि इति ॥ ३४ ॥

किंच ।

तद्गुणानुस्मरणं च ॥ ३५ ॥

अर्चनसमये तद्गुणानुस्मरणं तस्य परमेश्वरस्य ये सर्वज्ञत्वसर्वशक्तित्वादयो वा लीलाविहारनिमित्तजा ये दैत्यदलनधराभारनिर्हरणादयः श्रुतिस्मृतीतिहासादिषु प्रसिद्धा गुणाः संति तेषामनुक्षणं स्मरणं कर्त्तव्यं पूजनसमये भगवत्स्वरूपे वा तद्गुणेष्वेव मनो निदध्यान्नान्यत्र चालयेदित्यभिप्रायः ॥ ३५ ॥

किंच

'तद्गुणानुस्मरणं च' उपासक पुरुषको अर्चनके समयमे परमे-

श्वरके जो सर्वज्ञ सर्वशक्तिपणादिक गुण हैं अथवा जो लीला विहार निमित्तसे दैत्योंका मारणा पृथिवीका भार उतारण आदिक श्रुतिस्मृतियोंमे वर्णन किये हुये गुण हैं तिनकाभी क्षण क्षण प्रति चित्तमें स्मरण करना चहिये अर्थात् पूजनकालमें भगवान्‌के स्वरूपमें अथवा भगवान् के गुणोंमेंहि मनको लगावे दूसरी जगा नहि चलायमान करे इति ॥ ३५ ॥

एवं परमेश्वरस्य गुणानुस्मरणं कुर्वतः पुरुषस्य भक्त्यतिशये सति किं भवति तद्दर्शयति ।

आलिंगनादयः प्रेमविकाराः ॥ ३६ ॥

दीर्घकालं मानसार्चनेन विशुद्धांतःकरणस्य पुरुषस्य भगवत्स्वरूपे प्रेमाधिक्ये सति आलिंगनादयो विकारा जायंते । आदिशब्देनोपगूहनरोदनादयो गृह्यंते तथाहि कदाचिन्मनसा भगवच्चरणौ गृहीत्वा शिरसोरसा वालिंगनं करोति कदाचिद्गाढमुपगूहनं करोति कदाचित् तत्प्राप्तिविलंबमाशंक्य वा हर्षोद्गमेन रोदनं करोतीत्येवमादयो विकाराश्चित्तस्यावस्थाविशेषाः प्रेमातिशये भवंति । यावदेवंविधा विकारा न जायेरंस्तावज्जानीयान्न मे प्रेमातिशयो जात इति ॥ ३६ ॥

इसप्रकार भगवत्‌के गुणोंको स्मरण करते हूये पुरुषको भक्तिकी अधिकताके होनेतें क्या लक्षण होते हैं सो संक्षेपसे दिखलावे हैं.

'आलिंगनादयः प्रेमविकाराः' पूर्वोक्त रीतिसे दीर्घकालपर्यंत मानस पूजन करनेसे अंतःकरणके शुद्ध होनेतें जिस कालमें उपासक पुरुषको भगवत् स्वरूपमें अत्यंत प्रेम होवे है तो आलिंगनादिक जो प्रेमके विकार हैं सो उत्पन्न होते हैं सो जैसे ध्यानकालमे कदाचित् मनसे भगवान्के चरणकमलोंको ग्रहण करके शिरसे अथवा छातीसे लगाकर आलिंगन करता है और पुनः कदाचित् भगवान्के चरणोंको अपनी भुजोंमे लेकरके गाढा लिपट जाता है और कबी परमेश्वरके मिलनेमें विलंब जानकर अथवा चित्तमें हर्षके उठनेसे रुदन करता है, इत्यादिक चित्तकी अवस्थारूप प्रेमके विकार उत्पन्न होते हैं सो जबतक परमेश्वरके स्वरूपके ध्यानकालमें उपासक पुरुषके मनमें ऐसे प्रेमविकार नहि होवें तो जानना चहिये कि अबी मेरेको भगवत् स्वरूपमें प्रेमका अतिशय नहि हूया है इति ॥ ३६ ॥

तदनंतरं किं भवति तद्दर्शयति ।

द्रवीभूतस्य रोमोद्गमादि लिंगम् ॥ ३७ ॥

भगवच्चरणारविंदालिंगनादिपरायणं चेतो यदा वह्निसंसर्गादिव नवनीतं भास्करकिरणसंपर्कादिव वा हिमं द्रवीभूतं भवति तदास्योपासकस्य शरीरे रोमोद्गमादि चिह्नं जायते। आदिशब्देन कंपनशैथिल्यादीनि विज्ञेयानि तस्माद्यावन्न रोमोद्गमादि लिंगं शरीरे जायेत तावन्न मनोद्रवीभूतमित्युपधारयेदिति ॥ ३७ ॥

पुनः तिसके अनंतर क्या होवे है सो दिखलावे हैं

'द्रवीभूतस्य रोमोद्गमादि लिंगम्' जिस कालमें भगवत्के चरणारविंदको आलिंगन करता हूया उपासक पुरुषका मन द्रवीभूत हो जावे है अर्थात् जैसे अग्निके संसर्गसे घृत पिगल जावे है और सूर्यकी किरणोंके संसर्गसे वर्फ पिगल जावे है तैसेहि भगवान्के स्वरूपके ध्यानमे लगा हूया उपासक पुरुषका मन पिगल जावे है तो तिस कालमें तिसके शरीरमें रोमांच होना कंपन होना शिथिलता होनी इत्यादिक चिह्न होते हैं सो जबपर्यंत ऐसे चिह्न शरीरमें नहि होवें तो जानना चहिये कि अबी मेरा चित्त द्रवीभूत नहि हूया है इति ॥ ३७ ॥

किंच ।

तल्लीनस्यात्मविस्मरणम् ॥ ३८ ॥

द्रवीभूतं सद्यदा चित्तं भगवत्स्वरूपे ध्यानाभ्यासबलेन लीनं भवति तन्मयतामुपगच्छति तदात्मानं परं वा न स्मरति केवलं ध्येयस्वरूपेणैवावतिष्ठते सेयं पराकाष्ठा प्रेमभक्तेः अस्या एवाभ्यासपाटवेन पुरुषः स्वहृदयकमले ज्योतिर्मयं भगवत्स्वरूपमवलोकयतीति ॥ ३८ ॥

किंच ।

'तल्लीनस्यात्मविसरणम्' उक्त रीतिसे द्रवीभूत भया चित्त जिस कालमें चिरकालके ध्यानके अभ्याससे भगवत्स्वरूपमें लीन हो जावे

है अर्थात् तन्मय हो जावे है तो तिस कालमे 'आत्मविसरणं' कहिये उपासक पुरुषको अपने शरीरका और वाह्य पदार्थोंका विसरण हो जावे है अर्थात् कुछभी याद नहि रहता है केवल ध्येयके स्वरूपमय होकरहि चित्तकी स्थिरता हो जावे है सो यहि प्रेमभक्तिकी परम अवधि है इसीके अभ्यासके वढनेसे उपासक पुरुषको अपने हृदयकमलमें ईश्वरके ज्योतिर्मय स्वरूपका दर्शन होवे है इति ॥ ३८ ॥

तदेवं ध्यानाभ्यासक्रमेण भगवत्स्वरूपे लीनमपि चेतो भेदबुद्धिसंस्कारसद्भावात् ततः पुनरावर्त्तते न सम्यक् तन्मयतां गच्छत्यतश्चित्तविलयसमयात्पूर्वं सूत्रद्वयेन कर्त्तव्यविशेषं दर्शयति ।

आत्मनि तद्गुणारोपणम् ॥ ३९ ॥

तस्य परमेश्वरस्य ये सर्वज्ञत्वसर्वशक्तित्वादयो गुणाः संति तेषां गुणानां ध्यानसमये आत्मन्यारोपणं कुर्यात् । तथाहि। सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान् विश्वस्याधिपतिः सत्यकामः सत्यसंकल्पोऽहमित्येवं परमेश्वरगुणानात्मनि भावयेत् । ततोऽनेन दीर्घकालपरिभावितेन ध्यानाभ्यासेनायमपीश्वरगुणान् सत्यसंकल्पादीनवाप्नोतीति ॥ ३९ ॥

यद्यपि उक्त रीतिसे ध्यानाभ्यासके बलसे मन ईश्वरके स्वरूपमें लीनभी हो जावे तोभी भेदबुद्धिके संस्कारोंके होनेतें तहांसे पुनः

शीघ्रही व्युत्थानको प्राप्त हो जावे है सम्यक् प्रकारसे तन्मय नहि होवे है इस लिये ध्यानकालसे प्रथम दो सूत्रोंकरके कर्तव्यविशेष दिखलावे हैं.

'आत्मनि तद्गुणारोपणम्' परमेश्वरके जो सर्वज्ञ सर्वशक्तिपणादिक दिव्य गुण हैं तिन सर्व गुणोंका ध्यानकालमें उपासक पुरुषको अपनेमें आरोपण करना चहिये अर्थात् मैं सर्वज्ञ हुं सर्वशक्तिमान् हुं और सर्वविश्वका अधिपति हुं इत्यादि परमेश्वरके गुणोंको अपने आत्मामें भावना करे सो इस प्रकार दीर्घ कालपर्यंत ध्यानरूप भावनाके अभ्याससे इस उपासककोभी सत्यसंकल्पादिक गुणोंकी प्राप्ति होवे है इति ॥ ३९ ॥

तदात्मताभिमानश्च ॥ ४० ॥

ध्यानसमये भगवत्स्वरूपे यथा चित्तं सुष्ठु लीनं भवेत् तथा तद्गुणारोपणवत् तदात्मताभिमानोऽपि कर्त्तव्यः स्वकीयाकारवर्णजात्याद्यभिमानं हित्वा स्वयमात्मानं विष्णुस्वरूपेण भावयेदित्यर्थः। अयमहं चतुर्भुजश्चक्रगदादिधरः पीतांबरो दैत्यारिरवस्थितइत्येवमादिसर्वांगं सर्वोपकरणयुतं स्वकीयं रूपं चिंतयेत्। तथाचोक्तं योगवासिष्ठे। 'नाविष्णुः कीर्तयेद्विष्णुं नाविष्णुर्विष्णुमर्चयेत्।नाविष्णुः संस्मरेद्विष्णुं नाविष्णुर्विष्णुमाप्नुयादि' ति 'देवो भूत्वा यजेद्देव' मितिन्यायाच्चात्मानं ध्येयस्वरूपेण भावयेत् अनेनैव तादात्म्य-

ध्यानेन चिरकालपरिभावितेन कलेवरांते वैकुंठनिलये भगवत्सारूप्यमधिगच्छतीति ॥ ४० ॥

'तदात्मताभिमानश्च' ध्यानकालमें भगवान्के स्वरूपमें जैसे ठीक ठीक चित्त लीन होवे तैसेहि गुणोंके आरोपणकी न्यांई तदात्मताका ध्यानभी करणा चहिये अर्थात् अपने आकार वर्ण और जात्यादिकोंका अभिमान छोडकर स्वयं अपने शरीरमें विष्णुस्वरूपकी भावना करे जैसे कि यह मैं चतुर्भुज शंख चक्रादि धारण किये पीतांबर पहरे हूये दैत्योंके नाश करनेहारा साक्षात् विष्णुभगवान् विराजमान हुं इस प्रकार सर्वांग सर्वोपकरणोंकरके युक्त अपने स्वरूपको चिंतन करे अर्थात् अपनेको विष्णुस्वरूप जानकर ध्यान करे. तथा योगवासिष्ठमेंभी लिखा है 'नाविष्णुः कीर्तयेद्विष्णुं नाविष्णुर्विष्णुमर्चयेत् । नाविष्णुः संस्मरेद्विष्णुं नाविष्णुर्विष्णुमाप्नुयात् ।' अर्थ—उपासक पुरुष जबतक प्रथम आप विष्णुस्वरूप नहि होय लेवे तबपर्यंत विष्णुका कीर्तन नहि करे और जबपर्यंत आप विष्णुस्वरूप नहि होवे तबपर्यंत विष्णुका अर्चनभी नहि करे और जबतक आप विष्णुस्वरूप नहि होवे तबपर्यंत विष्णुका स्मरणभी नहि करे तथा जबतक आप विष्णुस्वरूप नहि होवे तबपर्यंत विष्णुको प्राप्तभी नहि होवे है इति ॥ तथा तंत्रशास्त्रोंकाभी सिद्धांत है 'देवो भूत्वा यजेद्देवं' अर्थात् प्रथम आप देवतारूप होय करके पीछे देवताका अर्चन करे इति ॥ यातें भगवान्के ध्यान करणे

कालमें अपनेकोभी तद्रूपहि चिंतन करना योग्य है सो इस तादात्म्य ध्यानके चिरकालपर्यंत अभ्यास करनेसे शरीर त्यागके अनंतर वैकुंठलोकमें उपासक पुरुषको सारूप्य मोक्ष पदकी प्राप्ति होवे है इति ॥ ४० ॥

यदेतद्बाह्याभ्यंतरभेदेन भगवतो नारायणस्यार्चनमभिहितं तत्किमु केवलं विष्णुव्यक्तेरेव कर्त्तव्यमुताहो तदवताराणामपीति जिज्ञासायामाह ।

अवताराश्च तदंशत्वात् ॥ ४१ ॥

श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणेषु प्रसिद्धा ये नृसिंहवामनरामकृष्णादयो विष्णोरवताराः संति तेपि पूजनीयाः कुतः तदंशत्वात् विष्णोरेवांशतः सर्वेषामवताराणामाविर्भावो जायते तस्माद्यथा बाह्याभ्यंतरभेदेन द्विविधं विष्णोरर्चनमभिहितं तथैव तेषामपि कर्त्तव्यमिति ॥ ४१ ॥

यह जो बाह्याभ्यंतरभेदसे दो प्रकारका विष्णुभगवान्का अर्चन कथन किया है सो क्या केवल विष्णुभगवान्काहि करना चहिये किंवा तिसके अवतारोंकाभी करना चहिये ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं.

'अवताराश्च तदंशत्वात्' श्रुति स्मृति इतिहास और पुराणोंमें प्रसिद्ध जो विष्णुभगवान्के नरसिंह वामन राम कृष्णादिक अवतार हैं सोभी पूजनीय हैं अर्थात् तिनकाभी अर्चन करना योग्य है

क्योंकि 'तदंशत्वात्' कहिये तिस विष्णुभगवान्के अंशसेहि सर्व अवतारोंका आविर्भाव होवे है यातें जिस प्रकार बाह्याभ्यंतर भेदसे दो प्रकारका विष्णुभगवान्का अर्चनविधान निरूपण किया है तैसेहि तिनके अवतारोंकाभी करना चाहिये इति ॥ ४१ ॥

ननु 'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः । मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य चे'त्यादिगीतावाक्येष्ववताराणां सर्वव्यापकाव्यक्तब्रह्मरूपत्वं श्रूयते तत्कथं सर्वेषां विष्ण्वंशत्वमुच्यते तत्राह ।

विष्णोरेवाधिकारात् ॥ ४२ ॥

विष्णोर्नारायणस्यैव वैकुंठनिलयस्यैते नृसिंहवामनादयो धरायामवतारा भवंति नाव्यक्तस्य निर्गुणस्य परमेश्वरस्य कुतः अधिकारात् विष्णोरेव जगदुत्पत्तिस्थितिप्रलयेष्वधिकारो वर्त्तते सर्वाधिकारयुक्तेनापि निर्गुणेश्वरेण यद्यज्जगदुद्भवादिकार्यं क्रियते तत्तदखिलं विष्णुव्यक्तिद्वारैव क्रियते यस्तु क्वचित् शिवब्रह्मादीनामपि जगत्सृष्टिप्रलयादिष्वधिकारः श्रूयते सोपि नारायणानुमत्यैव भवतीति विज्ञेयं । तथाचोक्तं महाभारते शांतिपर्वणि 'एतन्मयोक्तं नरदेव तत्त्वं नारायणो विश्वमिदं पुराणं । स सर्गकाले च करोति सर्गं संहारकाले च तदत्ति भूय' इति । तस्माद्यदा

यदा स्वनिर्मितभूमंडले दैत्यादिदुष्टजनकृतप्रजापीडनादि-विक्षेपोऽतितरां जायते तदा तदा नृसिंहवामनरामकृष्णा-दिरूपेणाविर्भूयानेकविधैरुपायैस्तस्य विक्षेपस्य शांतिं वि-धाय नारायणः पुनः स्वकं धामारोहतीति । 'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित' इत्यादिवाक्यानि तु परब्रह्म-णाऽभेदविवक्षयोक्तानीत्यवगंतव्यम् ॥ ४२ ॥

भगवद्गीतामें लिखा है 'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहमस्ट-तस्याव्ययस्य च ।' अर्थ—हे गुडाकेश अर्जुन मैं सर्वभूत प्राणियोंके हृदयमें अंतर्यामी आत्मारूपसे स्थित हुं और यह सर्व जगत सूत्रमें मणियोंकी न्यांई मेरेमें प्रोत हो रहा है तथा परब्रह्म और कैवल्य-मोक्षकी जो स्थिति है सोभी मैंही हुं इति । इत्यादि वाक्योंसे कृष्णादिक अवतारोंका सर्वव्यापक निर्गुण ब्रह्मस्वरूपपणा श्रवणमें आवे है तो फिर तुम सर्व अवतारोंको विष्णुके अंशसे प्रकट हूये क्यों कथन करते हो ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'विष्णोरेवाधिकारात्' विष्णोरेव कहिये वैकुंठलोकमें निवास करनेहारे जो विष्णुभगवान् हैं तिनहिके नरसिंह वामनादिक पृथि-वीमें अवतार होते हैं अव्यक्त जो निर्गुण ईश्वर है तिसके नहि होते क्योंकि 'अधिकारात्' कहिये विष्णुकाहि जगत्की उत्पत्ति स्थिति और प्रलयमें अधिकार है यद्यपि अव्यक्त ईश्वर सर्व प्रकारके

अधिकारोंकरके युक्त है तथापि सो जो जो जगत् उत्पत्ति आदिक कार्य करता है सो विष्णुव्यक्तिद्वाराहि करता है और जो शिवब्रह्मादिकोंकाभी क्वचित् शास्त्रोंमें सृष्टि और प्रलयादिकोंमें अधिकार श्रवणमें आवे है सोभी विष्णुकी अनुमतिसेंहि होवे है तथा महाभारतके शांतिपर्वमेंभी लिखा है 'एतन्मयोक्तं नरदेव तत्त्वं नारायणो विश्वमिदं पुराणं । स सर्गकाले च करोति सर्गं संहारकाले च तदत्ति भूयः ।' अर्थ—हे राजन् यह मैंने तेरेको सारभूत वस्तु कथन करी है कि यह सर्व जगत् सनातन नारायणरूप है और सोई नारायण उत्पत्तिकालमें जगत्को रचते हैं और संहारकालमें पुनः नाश करते हैं इति । यातें जिस जिस कालमें अपने रचेहूये भूमंडलमें दैत्यादिक दुष्ट जनोंकरके प्रजापीडनादिरूप अत्यंत विक्षेप होवे है तो तिस कालमें नरसिंह वामन राम कृष्णादि रूपसे प्रकट होयकरके नाना प्रकारके उपायोंसे तिस विक्षेपकी शांति करके विष्णुपरमात्मा पुनः अपने धामको आरोहण करते हैं और जो 'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः' इत्यादि गीताके वचनोंमें अवतारोंका निर्गुण ब्रह्मपणा कथन किया है सो तो विष्णु और निर्गुण ब्रह्मके अभेदके अभिप्रायसे कथन किया जानना चहिये इति ॥ ४२ ॥

तत्प्रसंगाच्च ॥ ४३ ॥

तत्प्रसंगादपि विष्णोरेव सर्वेऽवतारा भवंतीति विज्ञेयं । यत्र यत्र हि पुराणादीतिहासेष्ववतारधारणनिमित्तकथनं

वर्त्तते तत्र तत्र तस्य विष्णोरेव वरशापप्रदानादिप्रसंगः श्रूयते । दैत्यादिदुष्टजनोपद्रवव्यथिता महेन्द्रादयो देवा महर्षयश्च विष्णुमेव शरणं प्रयांति ततस्तत्प्रार्थनया दुष्टजनविनाशाय धरायामंशेन विष्णोरवतरणं भवतीति सर्वत्रावतारकथासु प्रसिद्धमेवातो विष्णोरेव सर्वेऽवतारा भवंति नाव्यक्तस्येश्वरस्येति ॥ ४३ ॥

किंच ।

'तत्प्रसंगाच्च' तिस विष्णुके प्रसंग होनेतें भी सर्व अवतार विष्णुकेहि जानने चहिये क्योंकि जहां जहां पुराणादिक इतिहासोंमें परमेश्वरके अवतार धारण करणेका निमित्त कथन किया है तो तहां विष्णुकाहि वर और शाप देना आदि प्रसंग सुननेमें आवे है जैसे कि दैत्यादिक दुष्ट जनोंके उपद्रवसे दुःखित भये इन्द्रादिक देवता और महर्षिलोक विष्णुकी शरणको प्राप्त हो करके प्रार्थना करते हैं तदनंतर तिन दुष्ट दैत्योंके विनाश करणेके लिये विष्णुभगवान् पृथिवीमें अपनी अंशसे अवतार ग्रहण करते हैं यह वार्ता सर्वत्र अवतारोंकी कथामें प्रसिद्ध है यातें व्यक्त ईश्वर विष्णुभगवानूकेहि सर्व अवतार होते हैं अव्यक्त ईश्वरके नहि होते इति ॥४३॥

अवगतमिदं विष्णोरेव सगुणस्येश्वरस्य सर्वेऽवतारा भवं-

तीति परंतु भगवता नारायणेन किमर्थमस्मिन् दुःखबहुले भूतले स्वयमवतारग्रहणं क्रियते तत्राह ।

धर्मस्थित्यर्थम् ॥ ४४ ॥

यस्मिन् यस्मिन् समये श्रुतिस्मृतिविहितस्य धर्मस्य प्रायशो विनाशो भवति विशेषतया प्रचारश्चाधर्मस्य जायते तदा तदा जगत्प्रवाहनिर्वाहकारणस्य धर्मस्याधार्मिकजनक्षपणद्वारा स्थापनार्थं भगवतो महाविष्णोरीश्वरस्य स्वांशेन धरायामवतारो भवति । तथाचोक्तं भगवता श्रीकृष्णेन 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं । परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां । धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे' इति ॥ ४४ ॥

इस उक्त वार्तासे निश्चय हूया कि सगुण ईश्वर विष्णुकेहि सर्व अवतार होते हैं परंतु इस दुःखरूप भूमंडलमें स्वयं विष्णुभगवान् किस लिये अवतार ग्रहण करते हैं ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'धर्मस्थित्यर्थम्' जिस जिस कालमें पृथिवीमंडलमें वेद और शास्त्रविहित धर्मका नाश हो जावे है तथा विशेष करके सर्वत्र अधर्मका प्रचार हो जावे है तिस तिस कालमें जगत्के प्रवाहके निर्वाहका कारण जो धर्म है तिसके दुष्ट पुरुषोंके नाशनद्वारा पुनः

स्थापन करणेके लिये विष्णुभगवान्‌का अंशरूपसे पृथिवीमें अवतार होवे है। तथा गीतामें श्रीकृष्णजीनेभी कहा है 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं ॥ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे ॥' अर्थ—हे भारत कहिये अर्जुन जिस जिस कालमें भूमंडलमें धर्मकी हानि हो जावे है और अधर्मका प्रचार विशेष करके हो जावे है तो तिस कालमें मैं आपनेको प्रकट करता हुं तथा धार्मिक पुरुषोंकी रक्षाके लिये और पापी पुरुषोंके नाश करनेके लिये मैं युगयुगमें पृथिवीमें अवतार धारण करता हुं इति ॥ ४४ ॥

भगवतः संकल्पमात्रेणैव दुष्टजनविनाशो धर्मस्थापनं च भवितुमर्हति सत्यसंकल्पत्वात्परमेश्वरस्य किन्तु तर्हि विविधावतारग्रहणप्रयासेनेत्यत्राह।

स्वयशोविजृंभणार्थं च ॥ ४५ ॥

यद्यपि परमेश्वरेण दूरादेव संकल्पमात्रेणैव सर्वं कार्यं कर्तुं शक्यते नात्र संशयस्तथापि स्वयशसो विशेषेण जगतीतले विस्तारणार्थं भगवतावतारग्रहणं क्रियते श्रुतिस्मृतिप्रख्यातकीर्तेरपि परमेश्वरस्य नृसिंहवामनरामकृष्णाद्यवतारग्रहणपूर्वकं नानाविधैरुपायैरसुरादिदुष्टजनदमनद्वारा धराभारनिर्हरणेन धार्मिकजनपरिरक्षणपुरःसरं धर्म-

स्थापनेन च विशेषतया पृथिव्यां कीर्तिप्रचारो भवतीति बोद्धव्यम् ॥ ४५ ॥

भगवान्‌के संकल्पमात्रसेंहि दुष्ट पुरुषोंका नाश और धर्मका स्थापन हो सके है क्योंकि ईश्वर सत्यसंकल्प है तो फिर नाना-प्रकारके अवतार ग्रहण करणेमें परिश्रम करनेका क्या प्रयोजन है ऐसी शंका होनेतें कहे हैं ।

'स्वयशोविजृंभणार्थं च' यद्यपि संकल्पमात्रसे परमेश्वर दूरसेंहि सर्व कार्य कर सकता है इसमें कुछ संशय नहि है तथापि अपने पवित्र यशको विशेष करके पृथिवीमें विस्तार करनेके लिये भग-वान् अवतार ग्रहण करते हैं । यद्यपि वेद और शास्त्रोंमें जगाजगा परमेश्वरका यश वर्णन किया हूया प्रसिद्धहि है तथापि नरसिंह वामन राम कृष्णादिक अवतार ग्रहणपूर्वक अनेक उपायोंसें दैत्या-दिक दुष्ट पुरुषोंके दमनद्वारा पृथिवीके भार दूर करनेसें और धार्मिक पुरुषोंके रक्षणपूर्वक धर्मके स्थापन करनेसे भगवान्‌का भूमंडलमें विशेषकरके यशका प्रचार होवे है इति ॥ ४५ ॥

सर्वयशसां निधानस्य नित्यतृप्तस्येश्वरस्य लोककृतयशसा किं प्रयोजनमित्यत्राह ।

तेन लोकोपकरणम् ॥ ४६ ॥

यद्यपीश्वरस्याप्तकामत्वात्स्वयशःप्रचारणेनात्मीयं किमपि प्रयोजनं नास्तीति सत्यं तथापि तेन रामकृष्णाद्यवतारग्र-

हृणोद्दीपितेन यशसा लोकानामुपकारो भवति भगवद्यशः-श्रवणेन कीर्त्तनेन च लोका विधूतदुरितसंचयाः परां गतिं गच्छंति तथोक्तमध्यात्मरामायणे । 'कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे' इति भागवतेपि । 'आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यंजसानुकौ । तमोनया तरिष्यं-तीत्यगात्स्वं पदमीश्वर' इति ॥ ४६ ॥

परमेश्वर तो स्वतः हि सर्व यशोंका निधानभूत और नित्य तृप्त हैं तिसको लोकोंके किये हूये यशकी क्या आवश्यकता है इस प्रकारके आक्षेप होनेतें कहे हैं.

'तेन लोकोपकरणम्' यद्यपि ईश्वरको लोकोंमें यशप्रचार करणेसे अपना कुछभी प्रयोजन नहि है तथापि लोकोपकरणं कहिये राम-कृष्णादिक अवतार ग्रहणसे विशेष करके प्रकट हूये तिस यश-करके लोकोंका उपकार होवे है क्योंकि भगवान्‌के पवित्र यशके श्रवण तथा कीर्तन करनेसे सर्व पापसमूहोंसे रहित होकर लोक परमगतिको प्राप्त होते हैं । तथा अध्यात्मरामायणमेंभी लिखा है 'कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे ।' अर्थ—सर्व लोकों के पाप नाश करणेहारी अपनी कीर्तिको जगत्‌में विस्तार करके जो अपने धामको चले गये तिस जानकीके पति रामचन्द्रका मैं आरा-धन करता हुं इति ॥ तथा भागवतमेंभी लिखा है 'आच्छिद्यकीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यंजसानुकौ। तमोनया तरिष्यंतीत्यगात्स्वं पदमीश्वरः'।

अर्थ—कृष्णावतारमें अपनी मनोहर सुंदरमूर्तिसे लोकोंके चित्त और नेत्रोंको आकर्षण करके और पृथिवीमंडलमें अपनी पवित्र कीर्तिको विस्तार करके कि इस कीर्तिकरके अनायाससेहि सर्व लोक पाप और अज्ञानरूप अंधेरेको तर जावेंगे पश्चात् ईश्वर अपने धामको चले जाते भये इति ॥ ४६ ॥

असंगस्य परमेश्वरस्य किमु लोकोपकारकरणेनेत्यत्राह ।

दयालुत्वात्तु नौदासीन्यम् ॥ ४७ ॥

तुशब्दः शंकानिरासार्थः असंगस्यापीश्वरस्य दयालुस्वभावत्वात् जीवेषूदासीनत्वं नास्ति संसारार्णवनिमज्जनोन्मज्जनहेतुभूताविद्याच्छादितांतःकरणानां जीवानां संसृतिचक्रपरिभ्रमणजनितदुःखपरंपरामवेक्ष्य कथं न्वेते भवजालाद्विमुक्ता भवेयुरिति विचिंत्येश्वरो नानाविधैरुपनिषद्गीताद्यध्यात्मोपदेशैः कल्पे कल्पे सहस्रशो जीवानस्मात् भवार्णवात्समुद्धरति । तथाह योगभाष्ये द्वैपायनः । 'तस्यात्मानुग्रहाभावेपि भूतानुग्रहः प्रयोजनं ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामीति तस्मात्स्वयशःप्रचारणेनाध्यात्मोपदेशेन चेश्वरस्य लोकोपकारकरणं समंजसमेवेति ॥ ४७ ॥

परमेश्वर तो सर्वसे असंग है तिसको लोकोंके उपकार करणेसे क्या प्रयोजन है ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'दयालुत्वात्तु नौदासीन्यम्' यद्यपि ईश्वर सर्वसे असंगहि है तथापि दयालुत्वात् कहिये ईश्वरका दयालु स्वभाव है इसलिये सो जीवोंकी तरफसे उदासीन नहि होता है संसाररूप समुद्रमें निमज्जन और उन्मज्जनका हेतुभूत जो अविद्या है तिसकरके आच्छादित भये अंतःकरणवाले और जन्ममरणरूप चक्रपर भ्रमण करते हूये जीवोंकी दुःखपरंपराको देखकरके कि किसी प्रकारसे यह जीव भवजालसे मुक्त हो जावें ऐसा चिंतन करके परमेश्वर नानाप्रकारसे उपनिषत् गीतादिक आध्यात्मिक उपदेशोंकरके कल्पकल्पमें हजारों जीवोंको इस संसारसमुद्रसे उद्धार करता है । तथा योगभाष्यमें व्यासजीने भी लिखा है । तस्यात्मानुग्रहाभावेपि भूतानुग्रहः प्रयोजनं ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामि ।, अर्थ—यद्यपि ईश्वरको अपनी अनुग्रहकी आवश्यकता नहि है तथापि जीवोंपर अनुग्रह करनेका तिसको अवश्य प्रयोजन है इस लिये ईश्वरका यह संकल्प है कि ज्ञानधर्मके उपदेश करके कल्पप्रलय और महाप्रलयमें संसारी जीवोंका उद्धार करूंगा इति । यातें अवतारधारणद्वारा अपने पवित्र यशके प्रचार करनेसे और आध्यात्मिकविषयक उपदेश करके ईश्वरको लोकोंका उपकार करना युक्त हि है इति ॥ ४७ ॥

ननु मनुष्यपश्वादियोनिष्ववतारं धारयतः परमेश्वरस्य तत्तच्छरीरसंबंधादस्मदादिवत्कथं न तुच्छत्वं भवेत् तत्राह ।

लीलामात्रत्वान्न दूषकं नटवत् ॥ ४८ ॥

मनुष्यादिशरीरसंबंधादीश्वरस्य तुच्छत्वं न संभवति कुतः लीलामात्रत्वात् केवलं लीलया मत्स्यादिरूपेण विहरतः परमेश्वरस्य तत्तच्छरीरधारणं दूषकं न भवति तत्रेदं निदर्शनं नटवदिति । यथाहि नटो लीलया बहूनि परस्परविलक्षणानि रूपाणि धारयन् न तेन तेन रूपेणेपदपि लिप्यते न चात्मानं तद्भावापन्नं वा मन्यते तथैवेश्वरोपि तत्तच्छरीरधारणेन तत्तद्गुणैर्दोषैर्वा न संसज्यते । 'असंगो ह्ययं पुरुष' इति श्रुतेः । 'न मां कर्माणि लिंपंति न मे कर्मफले स्पृहा । जन्म कर्म च मे दिव्य' मिति भगवद्वचनाच्च । तस्मान्नास्मदादिवदीश्वरस्य शरीरसंबंधात्तुच्छत्वं संभवतीति ॥ ४८ ॥

मनुष्य पशु आदिक योनियोंमें अवतार धारण करनेसे परमेश्वरको तिन शरीरोंके संबंधसे अस्मदादिकोंकी न्यांई तुच्छपणा क्यों नहि होवे है. ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'लीलामात्रत्वान्न दूषकं नटवत्' मनुष्यादि शरीरोंके संबंधसे ईश्वरको तुच्छपणा नहि संभवे है क्योंकि लीलामात्रत्वात् कहिये केवल क्रीडारूपसे मत्स्यकच्छपादिक स्वरूपोंको धारण करके विहार करते हूये परमेश्वरको तिन शरीरोंके धारण करनेसे दूषण नहि होवे है, नटवत् कहिये जैसे नटपुरुष क्रीडाके अर्थ परस्पर विल-

क्षण अनेक रूपोंसे किंचित्मात्र भी लिपायमान नहि होवे है और न अपनेको तिस भावको प्राप्त भया समझे है तैसेहि ईश्वर भी तिन शरीरोंके गुण और दोषोंसे लिपायमान नहि होवे है तथा श्रुतिका भी वाक्य है 'असंगो ह्ययं पुरुषः ।' अर्थ–यह अंतर्यामी पुरुष असंग है इति । तथा भगवत् गीतामें भी लिखा है, 'न मां कर्माणि लिंपंति न मे कर्मफले स्पृहा । जन्मकर्म च मे दिव्यं ।' अर्थ–हे अर्जुन, मेरेको शुभाशुभ कर्म लिपायमान नहि कर सकते क्योंकि मेरेको कर्मोंके फलकी अभिलाषा नहि है और मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं अर्थात् जीवोंसे विलक्षण हैं इति । यातें असदादिकोंकी न्यांई शरीरके संबंधसे ईश्वरको तुच्छपणा नहि होवे है इति ॥ ४८ ॥

तदेवमुक्तप्रकारेणेश्वरस्य व्यक्तं स्वरूपं तदर्चनं तस्यावताराणां पूज्यत्वमवतारग्रहणप्रयोजनं च निरूपयित्वेदानीमव्यक्तस्येश्वरस्यार्चनप्रकारं वर्णयति । तत्रादौ कस्मिन् स्थले तस्यार्चनं कार्यमिति जिज्ञासायामाह ।

हृदये श्रवणात् ॥ ४९ ॥

स्वहृदयकमल एवाव्यक्तस्येश्वरस्यार्चनं कर्त्तव्यं कुतः श्रवणात् श्रुतिस्मृतीतिहासादिषु पुरुषस्य हृदयमेव हि परमेश्वरस्य स्थानं श्रूयते । तथाचोक्तं वाजसनेयब्राह्मणोपनिषदि । 'एष प्रजापतिर्यद्धृदयमेतद्ब्रह्मैतत्सर्वं तस्मिन्नंत-

हृदये यथा व्रीहिर्वा यतो वा स एष सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किंचेति'। कृष्णयजुर्वेदेपि। 'एष वेदो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्ट' इति। भगवद्गीतायामपि। 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति। सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनंचेति' ब्रह्ममीमांसायां महर्षिव्यासेनाप्युक्तं। 'अंतस्तद्धर्मोपदेशादिति' तस्मात्स्वहृदयकमले परमेश्वरस्य चिंतनं कृत्वैकाग्रेण मनसार्चनं कुर्यादिति' ॥४९॥

इसप्रकार उक्त रीतिसे परमेश्वरके व्यक्त स्वरूपका और तिसके पूजनका विधान निरूपण करके पश्चात् तिसके अवतारोंका पूज्यपणा और अवतार धारण करनेका प्रयोजन कथन करके अव ईश्वरके अव्यक्त स्वरूपका अर्चनवर्णन करते हूये प्रथम तिसका अर्चन किस स्थानमें करना चहिये ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं-

'हृदये श्रवणात्' अपने हृदयकमलमेंही अव्यक्त ईश्वरका अर्चन करना चहिये क्योंकि श्रवणात् कहिये श्रुतिस्मृतिइतिहासादिक शास्त्रोंमें पुरुषके हृदयमेंही परमेश्वरकी स्थितिसुननेमें आवे है। तथा यजुर्वेदीय वाजसनेय ब्राह्मणोपनिषत् का वाक्य है। एष प्रजापतिर्यद्धृदयमेतद्ब्रह्मैतत्सर्वं' तस्मिन्नंतर्हृदये यथा व्रीहिर्वा यवो वा स एष सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किंचेति।'

अर्थ—यह जो हृदयमें है सोई प्रजापति सर्वव्यापक ब्रह्म है तथा तिस

हृदयके अंतर व्रीहि और यवकी न्यांई सूक्ष्मरूप जो ज्योति है, सोई सर्व जगत्का ईश्वर और सर्वका अधिपति और इस सर्व जगत्के शासन करनेहारा है इति । तथा कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतर उपनिषत्में भी लिखा है । एष वेदो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः । अर्थ—यह ज्ञानसरूप और सर्व विश्वका कर्ता जो परमात्मा है सो सर्व जीवोंके हृदयमें प्रविष्ट होय रहा है इति । तथा भगवत्गीतामें भी लिखा है । 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति । सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।' अर्थ—हे अर्जुन, सर्वभूत प्राणियोंके हृदयमें ईश्वर स्थित हो रहा है । तथा हे अर्जुन मैं सर्वभूत प्राणियोंके हृदयमें प्रविष्ट हो रहा हुं मेरे सकाशसेहि जीवोंको पदार्थोंकी स्मृति ज्ञान और तर्क उत्पन्न होवे है इति ॥ तथा ब्रह्ममीमांसामें महर्षि व्यासजीनें भी कहा है । 'अंतस्तद्धर्मोपदेशात् ।' अर्थ—हृदयके अंतर ईश्वरकोहि निश्चय करना चहिये क्योंकि जगत्के अधिपति आदिक ईश्वरके धर्मोंकाहि वेदमें कथन किया हैं इति । यातें अपने हृदयकमलमें परमेश्वरका चिंतन करके एकाग्र मनसे अर्चन करना योग्य है इति ॥ ४९ ॥

सर्वव्यापकस्य परमेश्वरस्य कथमंगुष्ठमात्रे हृदयप्रदेशे स्थितिर्भवितुमर्हतीति शंकायामुत्तरमाह ।

स्वच्छत्वादर्कवत्सान्निध्यम् ॥ ५० ॥

यद्यपि परमेश्वरस्य सर्वत्र समानमेव व्यापकत्वमस्तीति

सत्यं तथापि हृदयदेशे विशेषतया तस्य सान्निध्यं वर्तते । कुतः स्वच्छत्वात् । प्रकृतेर्हि सत्त्वांशविकारत्वादंतःकरणस्यान्यपदार्थेभ्यः स्वच्छत्वमस्त्यतस्तस्मिन्नेवेश्वरस्य विशेषतया सन्निधानं वर्तते। तत्रेदं निदर्शनं अर्कवदिति । यथा सूर्यालोकः सर्वत्र घटपटोपलकुड्यादिषु समानतया वर्तमानोपि दर्पणादिस्वच्छपदार्थेष्वेव विशेषतया संनिहितो भवति तद्वदीश्वरस्यापि हृदये विशेषतयावस्थानं भवतीति विज्ञेयमिति ॥ ५० ॥

परमेश्वर तो सर्वव्यापक है अंगुष्ठमात्र हृदयस्थानमें तिसकी कैसे स्थिति संभवे है ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'स्वच्छत्वादर्कवत्सान्निध्यम्' यद्यपि परमेश्वर समानरूपसे सर्वत्रहि व्यापक है यह वार्ता यथार्थ है तथापि हृदयस्थानमें तिसकी विशेष करके संनिधि है क्योंकि स्वच्छत्वात् कहिये प्रकृतिके सत्व गुणके अंशका कार्य होनेतें अंतःकरण अन्य पदार्थोंसे स्वच्छ पदार्थ है इस लिये तिसमें सर्वव्यापक ईश्वरकी प्रतिबिंबरूपसे विशेष करके स्थिति संभवे है अर्कवत् कहिये दृष्टांतमें जैसे सूर्यका प्रकाश सर्वत्र घट पट शिला भित्ति आदिकोंमें समानरूपसे वर्तता हूया भी दर्पण आदिक स्वच्छ पदार्थोंमें विशेष करके संनिहित होवे है तैसेहि ईश्वरकीभी हृदयस्थानमें विशेष करके स्थिति होवे हैं इति ॥५०॥

यदुक्तमीश्वरस्य हृदयकमले चिंतनं कार्यं तदव्यक्तस्येश्वरस्वरूपस्याकारविशेषाभावात्कथं तस्य चिंतनं कर्त्तव्यमित्यपेक्षायामाह ।

ज्योतिर्मयं तथावलोकनात् ॥ ५१ ॥

ज्योतिर्मयमेवेश्वरस्य स्वरूपं चिंतनीयं । कुतः तथावलोकनात् । ध्यानसमये योगिभिस्तथैव ज्योतिष्ट्वेनैवेश्वरस्य स्वरूपमवलोक्यते । प्रतिपादितं चैतत्पूर्वमेव समाधावालोकनात्प्रत्यक्षत्वमित्यस्मिन् सूत्रे योगिनां ज्योतिर्दर्शनमिति ॥ ५१ ॥

पूर्व जो कहा कि ईश्वरका हृदयकमलमें चिंतन करना चहिये सो ईश्वरके अव्यक्त स्वरूपका कोई आकारविशेष नहि है तो किस प्रकारसें तिसका चिंतन करना चहिये ऐसी अपेक्षा होनेतें कहे हैं॥

'ज्योतिर्मयं तथावलोकनात्' अपने हृदयकमलमें ईश्वरका ज्योतिर्मयस्वरूपसेहि चिंतन करना चहिये क्योंकि तथावलोकनात् कहिये ध्यानकालमें योगी पुरुष परमेश्वरको ज्योतिःस्वरूपसेहि अवलोकन करते हैं सो जिस प्रकारसे योगीलोक ईश्वरके ज्योतिर्मयस्वरूपका ध्यानकालमें दर्शन करते हैं सो वार्ता पूर्वहि प्रथम पादमें । समाधावालोकनात्प्रत्यक्षत्वम् । इस सूत्रकी व्याख्यामें कथन कर आये हैं इति ॥ ५१ ॥

किंच ।

सूर्याद्यवभासकत्वाच्च ॥ ५२ ॥

सूर्याद्यवभासकत्वादपीश्वरस्य ज्योतिर्मयमेव स्वरूपं ध्येयं सर्वाणि हि सूर्यचंद्रादीनि ज्योतींषीश्वरज्योतिषैवाप्यायितान्यनिशं प्रकाशंते । तथा चोक्तं यजुर्वेदीयकठोपनिषदि । 'न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः । तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाती'ति भगवद्गीतायामपि 'यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलं । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकमिति ॥ ५२ ॥

किंच

'सूर्याद्यवभासकत्वाच्च' सूर्यादिकोंके प्रकाश करनेवाला होनेतें भी ईश्वरका स्वरूप ज्योतिर्मयहि चिंतन करना चहिये क्योंकि सूर्य चंद्रादि सर्व ज्योतिर्गण ईश्वरके ज्योतिःस्वरूप करके उत्तेजित हूयेहि निरंतर प्रकाशवान् हो रहे हैं तथा यजुर्वेदीय कठ उपनिषत्में भी लिखा है । न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोयमग्निः । तमेवभांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति । अर्थ— तिस परमेश्वरके स्वरूपमें सूर्य चंद्रया तारे और विजलियां प्रकाश नहि कर सकती तो यह अग्नि कैसे प्रकाश कर सकता है क्योंकि

तिस ईश्वरके प्रकाशसेहि यह सर्व जगत् प्रकाशवान् होय रहा है इति ॥ तथा भगवत्गीतामें श्रीकृष्णजीने भी कहा है । 'यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेखिलं। यच्चंद्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ।' अर्थ—हे अर्जुन, जो तेज सूर्यमंडलमें स्थित भया सर्व जगत्कों प्रकाशता है और जो तेज चंद्रमा तथा अग्निमें प्रतीत होवे है सो सर्व तेज तूं मेराहि जान इति ॥ ५२ ॥

तदेतस्य ज्योतिःस्वरूपस्य केन प्रकारेणार्चनं कर्त्तव्यमिति जिज्ञासायामाह ।

ध्यानमेव प्रशंसनात् ॥ ५३ ॥

ध्यानमेवेश्वरस्यार्चनं विज्ञेयं। कुतः प्रशंसनात्। श्रुतिस्मृतीतिहासादिशास्त्रेष्वितरकर्मणः सकाशात् ध्यानस्यैव विशेषतया प्रशंसा श्रूयते । तथाच सामवेदीयछान्दोग्योपनिषद्वचनं 'ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवांतरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायंतीवापो ध्यायंतीव पर्वता ध्यायंतीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महतां प्राप्नुवंति ध्यानापादांशा इहैव ते भवंति ध्यानमुपास्वेति' योगियाज्ञवल्क्येनाप्युक्तं । 'ध्यानमेव हि जंतूनां कारणं बंधमोक्षयो'रिति । तस्मादेकाग्रेण मनसा स्वहृदयपद्मे ज्योतिर्मयस्येश्वरस्य ध्यानात्मकमेवार्चनं कर्त्तव्यमिति ॥ ५३ ॥

सो इस ज्योतिर्मय स्वरूपका किस प्रकारसे अर्चन करना चहिये ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं,

'ध्यानमेव प्रशंसनात्' एकाग्र चित्तसें ध्यान करनाहि ईश्वरके ज्योतिर्मय स्वरूपका अर्चन जानना चहिये क्योंकि प्रशंसनात् कहिये श्रुतिस्मृति इतिहासादिक शास्त्रोंमें अन्य कर्मोंकी अपेक्षासे ध्यानकीहि विशेष करके प्रशंसा कथन करी है। तथा सामवेदकी छान्दोग्य उपनिषत्में लिखा है 'ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवांतरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायंतीवापो ध्यायंतीव पर्वता ध्यायंतीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महतां प्राप्नुवंति ध्यानापादांशा इहैव ते भवंति ध्यानमुपास्त्वेति'। अर्थ–पृथिवी ध्यान करतेकी न्यांई है अंतरिक्ष ध्यान करतेकी नयांई है स्वर्गलोक ध्यान करतेकी न्यांई है जल ध्यान करतेकी न्यांई हैं पर्वत ध्यान करतेकी न्यांई हैं और देवता मनुष्य भी ध्यान करतेकी न्यांई हैं इसलिये जो मनुष्योंमें महत्पणेको प्राप्त होते हैं सो ध्यानके अंशसेहि प्राप्त होते हैं यातें ध्यानकीहि उपासना करनी चहिये इति। तथा योगी याज्ञवल्क्यने भी कहा हैं। 'ध्यानमेव हि जंतूनां कारणं बंधमोक्षयोः'। अर्थ–ध्यानहि जीवोंको बंधन और मोक्षका कारण है अर्थात् ध्यानके नहि करनेसे बंधन होवे है और ध्यानके करनेसे मुक्ति होवे है इति॥ यातें एकाग्र मनसे अपने हृदयकमलमें ईश्वरके ज्योतिर्मय स्वरूपका ध्यानरूपहि अर्चन करना योग्य है इति॥ ५२॥

किंच ।

अन्येषामनुपयोगाच्च ॥ ५४ ॥

ज्योतिर्मयस्याव्यक्तस्येश्वरस्यार्चने अन्येषां गंधपुष्पादिपूजनद्रव्याणामुपयोगाभावादपि ध्यानात्मकमेव तस्यार्चनं कार्यं । नहि कंचिदाकारमंतरा गंधपुष्पधूपदीपनैवेद्यादीनामर्पणं समीचीनं भवति तस्मान्निरंतरमनन्यचेतसा श्रद्धया तस्य ज्योतिःस्वरूपस्य ध्यानमेव कर्त्तव्यमित्यर्थः ॥ ५४ ॥

किंच

'अन्येषामनुपयोगाच्च' ईश्वरके ज्योतिर्मय अव्यक्त स्वरूपके अर्चन करणेमें अन्य जो गंध पुष्पादिक पूजनके पदार्थ हैं तिनके उपयोगके नहि होनेतें भी ईश्वरका ध्यानरूपहि अर्चन करना युक्त है क्योंकि किसी आकार और व्यक्तिके विना गंध पुष्प धूप दीप नैवेद्यादिकोंका अर्पण करना ठीक नहि होवे है यातें निरंतर एकाग्र चित्तसे श्रद्धापूर्वक ईश्वरके ज्योतिर्मय स्वरूपका ध्यानहि करना योग्य है इति ॥ ५४ ॥

तदेतदीश्वरस्य ज्योतिर्मयं स्वरूपं किमग्न्यादिज्योतिरिव ज्योतिरस्ति ततो विलक्षणं वेति जिज्ञासायामाह ।

चिन्मयं प्रकृतिप्रेरकत्वात् ॥ ५५ ॥

चिन्मयं चैतन्यात्मकमेवेश्वरस्य स्वरूपमस्ति नाग्न्यादिज्योतिरिव भौतिकं ज्योतिरीश्वरस्य स्वरूपं 'ज्ञातव्यं किंतु ज्ञानात्मकमेव तज्ज्योतिरस्तीति वेदितव्यं कुतः प्रकृतिप्रेरकत्वात् त्रिगुणात्मिका जडस्वभावा प्रकृतिश्चेतनेन परमात्मनैव प्रेरिता सती चराचरजगत्स्वरूपेण परिणामं भजते। तथाह वासुदेवः। 'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरमि'ति। सर्वं प्रकृतिविकारजातं च चेतनेनैव प्रेर्यमाणं दृश्यते। अस्मदादिशरीराण्यपि तदंशभूतेन चेतनेनैव जीवात्मना प्रेर्यमाणान्यनुभूयंते। वेदेऽपि 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म'। 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्चे'त्यादिवचनैश्चैतन्यात्मकमेव परमात्मनः स्वरूपं प्रतिपादितं। यत्तु क्वचिदयस्कांतादौ जडेपि प्रेरकत्वं दृश्यते तदबुद्धिपूर्वकत्वान्न विचित्ररचनायामुपयोगं भजते। निर्णीतं चैतत्पूर्वमेवानुमानप्रकरणे। तस्माच्चेतनस्यैव प्रेरकत्वं युक्तमिति ॥ ५५ ॥

यह जो ईश्वरका ज्योतिर्मय स्वरूप है सो क्या अग्नि आदिक ज्योतियोंकी न्यांई प्रकाशवान् ज्योति है किंवा तिनसे विलक्षण है ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं.

'चिन्मयं प्रकृतिप्रेरकत्वात्' चिन्मयं कहिये चैतन्यात्मकही ईश्व-

रका स्वरूप है अग्नि आदिक ज्योतिकी न्यांई भौतिक ज्योति ईश्वरका स्वरूप नहि जानना चहिये किंतु ज्ञानमय ज्योतिहि ईश्वरका स्वरूप जानना चहिये क्योंकि प्रकृतिप्रेरकत्वात् कहिये त्रिगुणरूप जड स्वभाववाली जो प्रकृति है सो चेतनस्वरूप ईश्वर करकेहि प्रेरित भयी इस चराचर जगत्‌रूप परिणामको प्राप्त होवे है तथा गीतामें श्रीकृष्णजीने भी कहा है 'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्' । अर्थ—हे अर्जुन, मेरे आश्रयसेहि प्रकृति चराचर जगत् उत्पन्न करती है इति। और प्रकृतिके विकार जो पांच महाभूतादिक हैं सो भी चेतन करके प्रेरित हूये देखनेमें आते हैं। तथा अस्मदादिकोंके जड शरीर भी परमेश्वरके अंशभूत चेतन जीवात्मा करकेहि प्रेरित होते अनुभवमें आते हैं तथा 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म' 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च'। अर्थ—परमात्मा सत्य ज्ञान और अनंत स्वरूप है और सो नित्य वस्तुओंका भी नित्य है और चेतन पदार्थोंका भी चेतन तथा सर्वका साक्षीभूत चेतन करनेहारा और केवल निर्गुण है इति । इत्यादि वेदसे वाक्योंमें भी परमेश्वरका चेतनात्मकहि स्वरूप प्रतिपादन किया है और जो कचित् अयस्कांतादिक जड पदार्थोंमें भी लोहाकर्षणादिक किया देखनेमें आवे है सो विचारसे शून्य होनेते विचित्र रचनामें उपयोगी नहि हो सकै है यह वार्ता पूर्वहि अनुमानप्रकरणमें कथन करि आये हैं यातें चेतनकाहि प्रेरकपणा युक्त है इति ॥ ५५ ॥

तन्नित्यमपरिणामित्वात् ॥ ५६ ॥

तत् परमात्मनः स्वरूपभूतं चैतन्यं नित्यं त्रिकालं समसत्ताकमविनाशि विज्ञेयं। कुतः अपरिणामित्वात् । यद्धि परिणामशीलं द्रव्यं भवति तदेव कालांतरे विनश्यत्यनित्यं चोच्यते । चितिशक्तेरपरिणामित्वान्नित्यत्वं अखंडप्रकाशित्वं च ज्ञानशक्तेरपरिणामित्वं निगमयति । घटज्ञानं जातं पटज्ञानं नष्टमित्यत्र यो ज्ञानस्यापि परिणामो दृश्यते सत्वंतःकरणवृत्तिधर्म एवावगंतव्यो न ज्ञानस्य । वृत्तीनामुत्पत्तिविनाशयोरुभयोरखंडावभासकत्वात् ज्ञानस्यापरिणामित्वमवसेयं। तथाच श्रुतिवचनं 'न द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वादि'ति । भगवद्गीतायामपि । 'अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततमि'ति ॥ ५६ ॥

किंच ।

"तन्नित्यमपरिणामित्वात्" सो परमेश्वरका स्वरूपभूत जो चेतनपणा है सो "नित्यं, कहिये भूतभविष्यत्वर्तमान तीनों कालमें समान सत्तावाला अविनाशी है क्योंकि अपरिणामित्वात् कहिये तिसका किसी कालमें भी परिणाम नहि होवे है । जो परिणामस्वभाववाला पदार्थ होवे है तिसीका कालांतरमें विनाश होवे है और सोई अनित्य कहलाता है और चितिशक्ति तो अपरिणामि

होनेतें नित्य कहिये है क्योंकि अखंड प्रकाशकपणाहि चितिशक्तिके अपरिणामिपणेको जनावता है और जो घटज्ञान उत्पन्न भया पटज्ञान नष्ट भया इस स्थलमें ज्ञानकाभी परिणाम प्रतीत होवे है सो तो अंतःकरणकी वृत्तियोंका धर्म जानना चहिये ज्ञानका नहि सो सर्ववृत्तियोंकी उत्पत्ति और विनाशके अखंड प्रकाशक होनेतें ज्ञानका अपरिणामिपणा निश्चय करना चहिये । तथा बृहदारण्यकउपनिषत्‌मेंभी लिखा है 'न द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् ।' अर्थ—द्रष्टा जो चेतन पुरुष है तिसकी ज्ञानशक्तिका कबी लोप नहि होवे है क्योंकि सो अविनाशी है इति । तथा भगवत्‌गीतामेंभी कहा है 'अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।' अर्थ—हे अर्जुन तिस परमात्माके स्वरूपको तूं अविनाशि जान जिस करके यह सर्व जगत् व्याप्त होय रहा है इति ॥ ५६ ॥

किंच ।

आनंदमयं चानुभवात् ॥ ५७ ॥

यदेतच्चैतन्यात्मकं परमेश्वरस्य स्वरूपमुक्तं तदानंदमयमपि विज्ञेयं कुतः अनुभवात् । परमेश्वरस्यैवानंदस्यांशो जगति शब्दस्पर्शादिविषयसंयोगकाले सुषुप्तिसमये समाधौ चानुभूयते 'एतस्यैवानंदस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवंती'ति श्रुतेः न बाह्यविषयेष्वेवानंदोस्तीति मंतव्यं सुषुप्तिकाले समाधौ च विषयाभावेप्यानंदस्यानुभवात् विषयसं-

योगस्य तु चित्तैकाग्र्यहेतुत्वात्केवलमानंदाभिव्यंजकत्वं तस्मात्स परमात्मन एवानंदोस्तीति वेदितव्यं तथा वेदेपि 'विज्ञानमानंदं ब्रह्म'। 'कं ब्रह्म' 'खं ब्रह्म'। 'आनंदं ब्रह्मणो विद्वानि'त्यादिवाक्यैरानंदात्मकमेव परमात्मनः स्वरूपं प्रतिपादितमित्येवं सच्चिदानंदात्मकं परमेश्वरस्य स्वरूपं विज्ञेयमिति सूत्रत्रयस्य समुच्चितोऽर्थः ॥ ५७ ॥

किंच।

'आनंदमयं चानुभवात' यह जो चेतनात्मक अविनाशी परमेश्वरका स्वरूप कथन किया है सो आनंदमयभी जानना चहिये क्योंकि 'अनुभवात्' कहिये परमेश्वरकेहि आनंदका अंश जगत्में शब्दस्पर्शादि विषयोंके संयोगकालमें सुषुप्तिके समय और समाधिमें अनुभव होवे है। तथा श्रुतिमेंभी लिखा है 'एतस्यैवानंदस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवंति।' अर्थ—इसी परमात्माके आनंदकी लेशसे दूसरे सर्वभूत प्राणिलोक आनंदको भोगते हैं इति। शब्दस्पर्शादिविषयोंके संयोगकालमें जो आनंद प्रतीत होवे है सो आनंदबाह्यविषयोंमें ही है ऐसा नहि मानना चहिये क्योंकि सुषुप्ति और समाधिकालमें विषयोंके नहि होनेपरभी आनंदका अनुभव होवे है यातें विषयोमें आनंद नहि है विषयोंके संयोगको तो चित्तकी एकाग्रताका हेतु होनेतें केवल आनंदका अभिव्यंजकपणा है यातें सो परमात्माकाही आनंद जानना चहिये तथा वेदमें भी 'विज्ञान-

मानंदं ब्रह्म' 'कं ब्रह्म' 'खं ब्रह्म' 'आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्' इत्यादि वाक्योंसे आनंदमयही परमात्माका स्वरूप प्रतिपादन किया है यातें सत् चित् और आनंदमय परमेश्वरका स्वरूप निश्चय करना चहिये यह उक्त तीनों सूत्रोंका समुच्चय अर्थ है इति ॥ ५७ ॥

एतेन जीवस्वरूपं व्याख्यातम् ॥ ५८ ॥

एतेन परमेश्वरस्वरूपनिरूपणेन तदंशभूतस्यजीवस्यापि सच्चिदानंदात्मकं स्वरूपंव्याख्यातं विज्ञेयं परमेश्वरावयवस्यैवमहाकाशस्यघटाकाशवत् लिंगशरीरोपाधियुक्तस्य जीवरूपत्वादिति ॥ ५८ ॥

एतेन जीवस्वरूपं व्याख्यातम् ॥ एतेन कहिये उक्तरीतिसे परमात्माके स्वरूपनिरूपण करनेसे तिसके अंशभूतजीवकाभी सच्चिदानंदात्मकस्वरूप कथन किया जानलेना क्योंकि जैसे महाकाशका घटाकाश अवयव होवे है तैसेहि परमेश्वरका अवयवही लिंगशरीर उपाधियुक्तभयाजीव होवे है इति ॥ ५८ ॥

तदेवमव्यक्तस्य परमेश्वरस्य स्वरूपं निरूपयित्वाधुनोपासनोपयोगाय तत्स्वभावं संक्षेपेण वर्णयति ।

सर्वांतर्यामित्वं तच्छ्रुतेः ॥ ५९ ॥

परमात्मनः सर्वस्य चराचरभूतजातस्यांतर्यामित्वं विज्ञे-

यं । कुतः तच्छ्रुतेः तस्य परमात्मनोंतर्यामित्वस्य प्रतिपादकश्रुतिप्रामाण्यात् । तथाहि वाजसनेयिब्राह्मणे । 'यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्योंतरो यं सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यंतरो यमयत्येष त आत्मांतर्याम्यमृतः' इति । भगवद्गीतायामपि । 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायये'ति । अनेनांतर्यामित्वप्रतिपादनेन सर्वभूतांतःकरणप्रेरकत्वात् परमेश्वरस्याखिलभूतवशित्वमपि प्रदर्शितं भवतीति ॥ ५९ ॥

इसप्रकार पूर्वोक्त रीतिसे अव्यक्त परमेश्वरका स्वरूप निरूपण करके अब उपासनाके उपयोगके लिये तिसके स्वभावका संक्षेपसे वर्णन करे हैं.

'सर्वांतर्यामित्वं तच्छ्रुतेः' परमेश्वरको सर्व चराचर जगत्का अंतर्यामी जानना चहिये क्योंकि 'तच्छ्रुतेः' कहिये तिस परमेश्वरके अंतर्यामीपणेके प्रतिपादन करनेहारे वेदके वाक्य प्रमाण हैं जैसे कि यजुर्वेदीय वाजसनेय ब्राह्मणमें लिखा है 'यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्योंतरो यं सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यंतरो यमयत्येष त आत्मांतर्याम्यमृतः।' अर्थ—जो परमेश्वर सर्वभूत प्राणियोंमें रहता है सर्वभूत प्राणियोंके अंतर है जिसको सर्वभूत प्राणि नहि जानते जिसके

सर्वभूत प्राणी शरीर हैं और जो सर्वभूत प्राणियोंको भीतरसे प्रेरणा करे है सोई अंतर्यामी अमृत तुमारा आत्मा है इति । तथा भगवद्गीतामेंभी लिखा है 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ।' अर्थ–हे अर्जुन सर्वभूत प्राणियोंके हृदयकमलमें ईश्वर रहता है और सो मायारूप यंत्रपर आरूढ भये सर्वभूत प्राणियोंको भ्रमण करावता है इति ॥ इस अंतर्यामीपणेकें प्रतिपादनसे सर्व प्राणियोंके अंतःकरणके प्रेरक होनेतें ईश्वरका सर्वभूतवशित्वभी प्रतिपादन किया जानलेना इति ॥ ५९ ॥

इत्थं परमेश्वरस्यांतर्यामित्वं निरूप्याधुना सर्वज्ञत्वं वर्णयति ।

कर्मफलदातृत्वात्सार्वज्ञ्यम् ॥ ६० ॥

परमात्मनः सर्वज्ञत्वमपि विज्ञेयं कुतः कर्मफलदातृत्वात् । तथाहि वेदवचनं । 'याथातथ्यतोर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्य'इति । 'फलमत उपपत्तेरि'ति वेदव्याससूत्राच्च चतुर्दशभुवनांतर्गतजीवजातकृतशुभाशुभकर्मानुसारेण यथायोगं फलदानात्परमेश्वरस्य सर्वज्ञत्वं निश्चीयते । नहि सर्वज्ञमंतरा प्रतिदिनं क्रियमाणानि परस्परविलक्षणानि जंतूनामसंख्यानि कर्माणि कश्चित् ज्ञातुं समर्थः स्यात् तद्विषयकज्ञानमंतरा फलदानं च नोपपद्यते ।

तस्मात्सर्वस्य जीवजातस्य कर्मणा फलदानादीश्वरस्य सर्वज्ञत्वं सिद्ध्यतीति ॥ ६० ॥

इसप्रकारसे परमेश्वरका अंतर्यामिपणा प्रतिपादन करके अब सर्वज्ञपणा निरूपण करे हैं.

'कर्मफलदातृत्वात्सार्वज्ञ्यम्' परमेश्वरका सर्वज्ञपणाभी जानना चहिये क्योंकि परमेश्वरही सर्व जीवोंको कर्मका फल देवे है यातें सर्वज्ञ है । तथा यजुर्वेद संहितामेंभी लिखा है 'याथातथ्यतोर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।' अर्थ–ईश्वर अनेक वर्षोंसे अर्थात् सर्वदाहि यथायोग्य कर्मोंके फलको धारण करता भया है अर्थात् जीवोंको देता भया है इति । तथा ब्रह्मसीमांसामें व्यासजीनेभी कहा है 'फलमत उपपत्तेः ।' अर्थ–कर्मोंका फल ईश्वरही देवे है क्योंकि ईश्वरको सर्वज्ञ होनेतें कर्मोंका फल देना संभवे है जडकर्मोंमें स्वतः फल देना नहि संभवे है इति ॥ यातें चतुर्दश भुवनोंमें रहनेहारे सर्व जीवोंके किये हूये शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार यथायोग्य फल देनेसे ईश्वरका सर्वज्ञपणा निश्चय होवे है क्योंकि सर्वज्ञके विना प्रतिदिन किये हूये परस्पर विलक्षण जीवोंके असंख्यात कर्मोंको कौन जान सकता है और सर्व कर्मोंके जानेविना तिनका फल देनाभी नहि संभवे है यातें सर्व जीवोंको कर्मफल देनेसे परमेश्वरका सर्वज्ञपणा सिद्ध होवे है इति ॥ ६० ॥

किंच ।

निगमागमाभ्यां च ॥ ६१ ॥

निगमो वेदः आगमश्च शास्त्रं ताभ्यां श्रुतिस्मृतिभ्यामपि परमात्मनः सर्वज्ञत्वं निश्चीयते । तथाचोक्तमथर्ववेदीयमुंडकोपनिषदि । 'यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तप'इति । कृष्णयजुर्वेदेपि । 'ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्य'इति । भगवद्गीतायामपि । 'वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन । भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चने'ति । महर्षिपतंजलिरपीममर्थं सूत्रयामास । 'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजमि'ति ॥ ६१ ॥

किंच ।

'निगमागमाभ्यां च' निगम कहिये वेद और आगम कहिये शास्त्र तिन दोनों करके अर्थात् श्रुतिस्मृतियोंके प्रमाण करकेभी ईश्वरका सर्वज्ञपणा निश्चय होवे है जैसे कि अथर्ववेदीयमुंडक उपनिषत्में लिखा है 'यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः ।' अर्थ—जो परमेश्वर सर्वज्ञ और सर्वके जाननेहारा है. और जिसका ज्ञानरूपही तप है इति । तथा कृष्णयजुर्वेदकाभी वचन है 'ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः' अर्थ—जो परमेश्वर सर्वज्ञ और कालकाभी काल सर्व गुणोंका प्रेरक और सर्वके जाननेहारा है इति । तथा गीतामें श्रीकृष्णजीकाभी कथन है 'वेदाहं समतीतानि वर्त-

मानानि चार्जुन । भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ अर्थ—हे अर्जुन मैं अतीत वर्तमान और भविष्यत् सर्वभूत प्राणियोंको जानताहुं और मेरेको अज्ञानी लोक कोई नहि जानता है इति । तथा महर्षिपतंजलिनेभी कहा है 'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।' अर्थ—ईश्वरमें सर्वज्ञ पणेका बीज निरतिशय है अर्थात् ईश्वरके बराबर कोई सर्वज्ञ नहि है इति ॥ ६१ ॥

श्रूयंते हि खल्विंद्रादयो देवा वसिष्ठादयो महर्षयश्चापि सर्वज्ञाः किमु परमेश्वरस्यैव सर्वज्ञत्वमभिधीयते तत्राह ।

आलोचनपूर्वकत्वात्तु नान्येषां तत्साम्यम् ॥ ६२॥

तुशब्देनाक्षेपं व्यावर्तयति। देवानां महर्षीणां च यत्कचित्सर्वज्ञत्वं श्रूयते तत्तु आलोचनं ध्यानं तत्पूर्वकमित्यर्थः । ते हि यदा भूतं भविष्यं वा यमर्थं ज्ञातुमिच्छंति तदा क्षणमंतर्मुखतामुपेत्य तमर्थं स्मरंति परमेश्वरस्य तु सर्वकालमालोचनानपेक्षं सर्वपदार्थविषयमक्रमं करामलकोपमं ज्ञानं वर्तते । अतो नान्येषां देवानां महर्षीणां वा तस्य परमेश्वरस्य सर्वज्ञतायां साम्यं भवितुमर्हति । तस्मात्परमेश्वरस्यैव मुख्यं सर्वज्ञत्वमस्तीति ॥ ६२ ॥

इन्द्रादि देवता और वसिष्ठादिक महर्षिलोकभी इतिहास पुराणोंमें सर्वज्ञ सुननेमें आते हैं तो तुम एकले परमेश्वरकोही सर्वज्ञ क्यों कथन करते हो ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'आलोचनपूर्वकत्वात्तु नान्येषां तत्साम्यम्' देवता और महर्षियोंका जो क्वचित् सर्वज्ञपणा श्रवणमें आवे है सो आलोचन कहिये ध्यानपूर्वक होवे है अर्थात् सो देवतादिक जिस कालमें भूत वा भविष्यत् वार्ताको जानना चाहते हैं तो क्षणमात्र अंतर्मुख हो करके तिस वार्ताको स्मरणकर लेते हैं और ईश्वरको तो सर्वकाल ध्यानकी अपेक्षासे रहित सर्व पदार्थोंके विषय करनेहारा क्रमसे रहित करामलकवत् ज्ञान है यातें दूसरे देवता और महर्षियोंको सर्वज्ञपणेमें ईश्वरकी तुल्यता नहि संभवे है इसलिये परमेश्वरकाही सर्वज्ञपणा मुख्य है इति ॥ ६२ ॥

एवं परमात्मनः सर्वज्ञत्वं वर्णयित्वेदानीं सर्वशक्तित्वं निरूपयति ।

सर्वशक्तित्वं जगन्निर्माणकर्तृत्वात् ॥ ६३ ॥

परमेश्वरस्य सर्वशक्तित्वमप्यनुसंधेयं । कुतः जगन्निर्माणकर्तृत्वात् संकल्पमात्रेण ग्रहनक्षत्रपर्वतसागरादिविचित्रजगद्रचनेन परमेश्वरस्य सर्वशक्तित्वं निश्चीयते । नह्यल्पशक्तिकेन पुरुषेणैवंविधं महत्कार्यं कर्तुं शक्यते । यत्तु ब्रह्मादिदेवानां योगिनामपि सिद्धानां क्वचित्किंचिन्निर्माणसामर्थ्यं श्रूयते तदपि परमेश्वरप्रसादादेव तेषां केनचिदंशेन प्रादुर्भवतीत्यवगंतव्यं । अतः परमेश्वरस्यैव मुख्यं सर्वशक्ति-

त्वमस्ति। तथाच कृष्णयजुर्वेदवचनं। 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चे'ति ॥ ६३ ॥

इसप्रकार परमात्माका सर्वज्ञपणा निरूपण करके अब सर्वशक्तिपणा कथन करे हैं.

'सर्वशक्तित्वं जगन्निर्माणकर्तृत्वात्' उपासक पुरुषको परमेश्वरका सर्वशक्तिमान्पणाभी चिंतन करना चहिये क्योंकि 'जगन्निर्माणकर्तृत्वात्' कहिये संकल्पमात्रसेही ग्रह नक्षत्र पर्वत सागरादिक विचित्रजगत्की रचना करनेसे परमेश्वरका सर्वशक्तिमान्पणा निश्चय होवे है क्योंकि अल्पशक्तिवाला पुरुष ऐसे महत्कार्यको नहि कर सकता है और जो ब्रह्मादिक देवता योगी और सिद्ध लोकोंकोभी क्वचित् किंचित् वस्तु रचनेकी सामर्थ्य सुननेमें आवे है सोभी परमेश्वरकी अनुग्रहसेही तिनमें किसी अंशसे प्रादुर्भाव होवे है यातें परमेश्वरकाही मुख्य सर्वशक्तिपणा जानना चहिये तथा कृष्णयजुर्वेदीयश्वेताश्वतर उपनिषत्मेंभी लिखा है 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'। अर्थ—इसपरमेश्वरकी विविध प्रकारकी ज्ञान बल और क्रियारूप परमशक्ति श्रवणमें आवे है इति ॥६३॥

जगन्निर्माणकर्तुः परमेश्वरस्यापि कश्चिन्निर्माता स्यादेवेत्याक्षेपं परिहरन्नाह।

न तत्परोऽनवस्थाप्रसंगात् ॥ ६४ ॥

परमात्मनः परोन्यः कश्चिदुत्कृष्टो नास्ति। कुतः अन-

वस्थाप्रसंगात् । यदि परमेश्वरस्यापि परः कश्चिज्जनको भवेत् तदा तस्यापि कश्चिदन्यो जनकोऽङ्गीकर्तव्यः। ततस्तस्याप्यन्यस्तस्याप्यन्य इत्येवमनवस्थैव स्यात्। न चैतद्युक्तमतः परमेश्वर एव सर्वेषां परो जनको नान्यः कश्चित्तत्पर इत्यवगंतव्यं। तथाच कृष्णयजुर्वेदे। 'स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिप'इति। भगवद्गीतायामपि 'मत्तःपरतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय। मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव। पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामह'इति। योगशास्त्रे पतंजलिरप्याह। 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदादि'ति॥ ६४॥

सर्व जगत्के रचनेहारे परमेश्वरकाभी कोई दूसरा रचनेहारा होवेगा ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'न तत्परोऽनवस्थाप्रसंगात्' परमेश्वरसे परे दूसरा कोई उत्कृष्ट नहि है क्योंकि 'अनवस्थाप्रसंगात्' कहिये परमेश्वरसे परे दूसरा माननेसे अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवे है जो परमेश्वरकाभी कोई रचनेहारा मानें तो तिसकाभी कोई दूसरा रचनेहारा मानना पडेगा फिर तिसकाभी तीसरा फिर तिसकाभी चौथा रचनेहारा मानना पडेगा इसप्रकारसे कहींभी स्थिति नहि होनेतें अनवस्थाही होवेगी तो यह वार्ता युक्त नहिं है इसलिये परमेश्वरही सर्वका परम पिता जानना चहिये तिसतें परे दूसरा कोई नहि है तथा श्वेताश्वतर

उपनिषत्‌मेंभी लिखा है. 'स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चि-
ज्जनिता न चाधिपः ।' अर्थ–सो ईश्वर सर्व जगका कारण और
जीवात्माकाभी नियंता है तिसका कोई पिता और अधिपति नहि
है इति । तथा भगवत्‌गीतामें श्रीकृष्णजीनेभी कहा है 'मत्तः परतरं
नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय । मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा
इव ॥ पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ॥ अर्थ–हे धनं-
जय मेरेसे परे दूसरा कोई नहि है और यह सर्व जगत् मेरेमें
सूत्रमें मणियोंकी न्यांई परोया हूया है और मैंही इस जगत्‌का
पिता माता विधाता और पितामह हुं इति । तथा योगशास्त्रमें
पतंजलिनेभी कहा है 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।'
अर्थ–सो ईश्वर प्रथमसे उत्पन्न भये जो ब्रह्मादिक हैं तिनकाभी
गुरु है क्योंकि तिसका काल करके कदाचित् विनाश नहि होवे
है इति ॥ ६४ ॥

किंच ।

निरीश्वरत्वश्रुतेश्च ॥ ६५ ॥

परमेश्वरस्य निरीश्वरत्वश्रवणादपि न ततोन्यः कश्चित्प-
रोस्तीति विज्ञेयं । तथाहि श्वेताश्वतरोपनिषद्वचनं । 'न तस्य
कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिंगं । न
तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यत' इति । भगवद्गीतायामप्याह

भगवंतं प्रति कौंतेयः । 'न त्वत्समोस्त्यभ्यधिकः कुतोन्यो लोकत्रयेप्यप्रतिमप्रभाव'इति ॥ ६५ ॥

किंच ।

'निरीश्वरत्वश्रुतेश्च' परमेश्वरके निरीश्वरत्वके श्रवण होनेतेंभी तिसतें परे दूसरा कोई नहि है यह निश्चय होवे है । तथा श्वेताश्वतर उपनिषत्में लिखा है 'न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके नचेशिता नैव च तस्य लिंगं । न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।' अर्थ–तिस ईश्वरका सर्व जगत्में कोई पति नहि है और न तिसका कोई दूसरा ईश्वर है और न तिसका कोई चिह्न है न तिसके कोई दूसरा बराबरका है और न कोई तिसतें अधिक देखनेमें आवे है इति । तथा गीतामें अर्जुनकाभी वाक्य है 'न त्वत्समोस्त्यभ्यधिकः कुतोन्यो लोकत्रयेप्यप्रतिमप्रभाव' अर्थ–हे अप्रतिमप्रभाव भगवन् त्रिलोकीमें तुमारे समानका दूसरा कोई नहि है तो तुमारेसे अधिक तो कहांसे होवेगा इति ॥ ६५ ॥

किंच ।

अतएव स्वातंत्र्यम् ॥ ६६ ॥

अतएव निरीश्वरत्वादेव परमेश्वरस्य स्वतंत्रत्वमपि बोद्धव्यं । द्वितीये परे सत्येव भवति पारतंत्र्यं तदभावात्परमात्मनो निरंकुशत्वेन स्वतःसिद्धमेव स्वतंत्रत्वं । तथाच श्रुतिवाक्यं । 'सोक्षरः परमः स्वराडि'ति ॥ ६६ ॥

किंच ;।

'अतएव स्वातंत्र्यम्' अतएव कहिये किसी दूसरे उत्कृष्टके नहि होनेतेंही परमेश्वरका स्वतंत्रपणाभी जानलेना चहिये क्योंकि किसी दूसरे उत्कृष्टके होनेसेही परतंत्रपणा होवे है सो तिसके अभावसे परमेश्वरका निरंकुश स्वतंत्रपणा स्वतः सिद्धही है। तथा इस वार्तामें वेदका वचनभी प्रमाण है 'सोक्षरः परमः स्वराट्।' अर्थ–सो परमेश्वर अविनाशी और परम स्वतंत्र है इति ॥ ६६ ॥

इत्थं परमेश्वरस्य स्वतंत्रत्वं निरूप्याधुना सर्वव्यापकत्वं वर्णयति।

सर्वव्यापित्वं च कारणत्वात् ॥ ६७ ॥

परमेश्वरस्य सर्वत्र चराचरेस्मिन् जगति व्यापकत्वमपि विज्ञेयं। कुतः कारणत्वात्। परमेश्वरो हि समस्तस्यास्य जगतः कारणं कारणेन च कार्यं व्याप्तं भवतीति नियमात्। ततोस्य विश्वस्यांतर्बहिश्चानुस्यूतत्वात्परमेश्वरस्य सर्वव्यापित्वं निश्चेयं। तथाचोक्तं कृष्णयजुर्वेदे। 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मे'ति। भगवद्गीतायामपि। 'नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातन' इति ॥ तदेवं चतुर्भुजविष्णुस्वरूपध्यानानंतरं परमेश्वरस्य

सच्चिदानंदात्मकं सर्वगतं सर्वसाक्षिभूतं ज्योतिर्मयमव्यक्तं स्वरूपमेकाग्रेण मनसा सततं चिंतनीय'मिति ॥ ६७ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदस्वामिप्रणीतेश्वरदर्शनभाष्ये द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

इसप्रकार परमेश्वरका स्वतंत्रपणा निरूपण करके अब सर्वव्यापकपणा वर्णन करे हैं.

'सर्वव्यापित्वं च कारणत्वात्' परमेश्वरको इस चराचर जगत्में व्यापक जानना चहिये क्योंकि कारणत्वात् कहिये परमेश्वरही इस जगत्का कारण है और यह नियम है कि उपादान कारणसे कार्य व्याप्त होवे है यातें इस प्रपंचके अंतर बाहिर अनुस्यूत होनेतें परमेश्वरको सर्वव्यापक निश्चय करना चहिये तथा कृष्णयजुर्वेदीयश्वेताश्वतर उपनिषत्का वचन है 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा ।' अर्थ—एकही ईश्वर सर्वभूत प्राणियोंमें गुप्त सर्वव्यापी और सर्वका अंतरात्मा हे इति । तथा भगवद्गीतामेंभी कहा है 'नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः ।' अर्थ—हे अर्जुन यह अंतर्यामी आत्मा सर्वव्यापक स्थिर अचल और सनातन है इति । इसप्रकार पूर्वोक्त क्रमसें चतुर्भुज विष्णुस्वरूपके ध्यानके अनंतर परमेश्वरका सच्चिदानंदात्मक सर्वगत सर्वका साक्षीभूत ज्योतिर्मय अव्यक्त स्वरूप एकाग्र मनसे निरंतर चिंतन करणा योग्य है इति ॥ ६७॥

इति श्रीब्रह्मानंदस्वामिप्रणीतेश्वरदर्शनस्य भाषाटीकायां द्वितीयः पादः ॥२॥

तदेवं पूर्वोक्तप्रकारेणेश्वरस्य व्यक्ताव्यक्तभेदेन द्विविधं स्वरूपं निरूप्य तदर्चनविधानं च पृथगुक्त्वानंतरमुपासनोपयोगायेश्वरस्वभावं च संक्षेपेण वर्णयित्वाधुनोपासनांगभूतं कृत्यविशेषं तत्त्वज्ञानलब्धिप्रकारं च दर्शयितुं तृतीयः पादः प्रारभ्यते। तत्रादौ पूर्वोक्तज्योतिर्मयेश्वरस्य ध्यानानंतरं व्युत्थानकाले किं कर्तव्यं तद्दर्शयति।

प्रणवादिजपस्तदंगत्वात् ॥ १ ॥

परमेश्वराराधनपरेण पुरुषेण पूर्वोक्तध्यानानंतरं परमेश्वरपरायणानां प्रणवादिपवित्रमंत्राणां जपः कर्तव्यः। कुतः तदंगत्वात्। परमेश्वराराधने प्रणवादिमंत्रजपस्यांगभूतत्वादित्यर्थः। नह्यंगैर्विना कदाचिदंगिसिद्धिर्जायते। प्रणवादिपवित्रमंत्रजपेन विद्रविताशेषदुरितस्यैव शुद्धांतःकरणतया भगवत्स्वरूपध्याने योग्यता भवति। 'यज्ञानां जपयज्ञोस्मी'ति भगवद्वचनात् 'जपतो नास्ति पातकमि'ति मनुवाक्याच्च। तत्र प्रणवः ओंकारः स च परमेश्वरस्यादिनामधेयं। तथाचोक्तं महर्षिणा याज्ञवल्क्येन। अदृष्टविग्रहो देवो भावग्राह्यो मनोमयः। तस्योंकारः स्मृतो नाम तेनाहूतः प्रसीदती'ति। पतंजलिरपीममर्थं सूत्रयांचकार। 'तस्य वाचकः प्रणव' इति। तस्य परमेश्वरस्ये-

त्यर्थः । आदिशब्देनाष्टाक्षरद्वादशाक्षरादयो मंत्रा गीता-सहस्रनामादिस्तोत्राणि च संगृहीतव्यानीति ॥ १ ॥

इसप्रकार पूर्वोक्त रीतिसे ईश्वरका व्यक्त और अव्यक्त भेदसे दो प्रकारका स्वरूप निरूपण करके तथा तिन दोनोंके अर्चनका विधान भिन्न भिन्न कथन करके तिसके अनंतर उपासनाके उपयोगके लिये ईश्वरका संक्षेपसे स्वभाव वर्णन किया अब उपासनाके अंगभूत कृत्यविशेषके और तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके प्रकारके वर्णन करनेकेलिये तीसरे पादका आरंभ करते हैं तहां प्रथम पूर्वोक्त ज्योतिर्मय ईश्वरके ध्यानके अनंतर व्युत्थानकालमें क्या करना चहिये सो दर्शावे हैं.

'प्रणवादिजपस्तदंगत्वात्' परमेश्वरके आराधनपरायण पुरुषको पूर्वोक्त ध्यानके अनंतर प्रणवादिक जो परमेश्वरपरायण मंत्र हैं तिनका जप करणा चहिये क्योंकि 'तदंगत्वात्' कहिये परमेश्वरके आराधनमें प्रणवादि मंत्रोंका जप करना अंगभूत है अंगोंके विना अंगीकी सिद्धि नहि होवे है क्योंकि प्रणवादि पवित्र मंत्रोंके जप करके सर्व पापोंसे रहित भये शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषकोही भगवत्स्वरूपके ध्यान करनेमें योग्यता होवे है । तथा गीतामें श्रीकृष्णजीकाभी वचन है 'यज्ञानां जपयज्ञोस्मि ।' अर्थ—हे अर्जुन सर्व यज्ञोंमें जपरूप यज्ञ मेरा स्वरूप है इति । तथा मनुस्मृतिमेंभी लिखा है ' जपतो नास्ति पातकं ।' अर्थ—जप करनेहारे पुरुषको

पाप नहि स्पर्श करता है इति । तहां प्रणव नाम ओंकारका है और सो परमेश्वरका आदि नाम है तथा महर्षि याज्ञवल्क्यनेभी कहा है 'अदृष्टविग्रहो देवो भावग्राह्यो मनोमयः । तस्योंकारः स्मृतो नाम तेनाहूतः प्रसीदति ।' अर्थ–अदृश्य शरीरवाला और भावना करके ग्रहण करने योग्य मनोमय जो परमात्मा देव है तिसका नाम ओंकार है और सो तिसके जप करनेतें प्रसन्न होवे है इति । तथा पतंजलिमुनिनेभी कहा है 'तस्य वाचकः प्रणवः ।' अर्थ–तिस ईश्वरका ओंकार नाम है इति । आदिशब्दसे अष्टाक्षर नारायणमंत्र और द्वादशाक्षर षडक्षरादिक मंत्रोंका तथा गीताविष्णुसहस्रनामादिक स्तोत्रोंकाभी ग्रहण जानलेना इति ॥ १ ॥

प्रणवादिमंत्रजपपरेण तदुपयोगि ऋष्यादिज्ञानमपि संपादनीयमित्याह ।

ऋषिच्छन्दोधिदैवतज्ञानपूर्वकं वैशेष्यात् ॥ २ ॥

अस्य मंत्रस्य कः प्रवर्तकः ऋषिः किं छन्दः का चास्य देवतास्तीति जपारंभे तेषामवश्यं स्मरणं कर्तव्यं । कुतः वैशेष्यात् ऋष्यादिज्ञानपूर्वकं मंत्रजपेन हि विशेषफलावाप्तिर्भवति । तदुक्तं योगियाज्ञवल्क्यसंहितायां 'ऋषिंछंदोधिदैवं च ध्यायन् मंत्रस्य सत्तमे । यस्तुगार्गि जपेन्मंत्रं तदेव हि फलप्रदमि'ति ऋष्यादयश्च तंत्रशास्त्रतो विज्ञेयाः

सूत्रे वैशेष्यपदग्रहणादज्ञातमुन्यादिकस्यापि श्रद्धया जपतो यथोक्तंफलं भवतीति प्रदर्शितम् ॥ २ ॥

प्रणवादिक मंत्रोंकि जप करनेवालेको जपके उपयोगी मंत्रके ऋषि आदिकभी अवश्य जानने चहिये यह वार्ता कथन करे हैं।

'ऋषिच्छन्दोधिदेवतज्ञानपूर्वकं वैशेष्यात्' इस मंत्रका प्रवर्तक कौन ऋषि है क्या इसका छन्द है और कौन इसका अधिष्ठाता देवता है सो जपके आरंभ कालमें अवश्य तिनका स्मरण करना चहिये क्योंकि 'वैशेष्यात्' कहिये मंत्रके ऋषिछंदादिक जानकरके जप करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होवे है तथा योगियाज्ञवल्क्य-नेभी कहा है। 'ऋषिं छन्दोधिदैवं च ध्यायन् मंत्रस्य सत्तमे। यस्तु मंत्रं जपेत् गार्गि तदेव हि फलप्रदम्।' अर्थ—हे गार्गि जो पुरुष मंत्रके ऋषि छन्द और देवताका ध्यान करता हूया मंत्रका जप करता है तिसहीको विशेषफलकी प्राप्ति होवे है इति। सो मंत्रोंकि जुदा जुदा ऋषिछन्दादिक मंत्रमहोदधि शारदातिलकादि तंत्रशास्त्रोंमें लिखे हूये हैं जिज्ञासु पुरुषको तहांसे जानलेने चहिये। सूत्रमें वैशेष्यपद होनेतें यह सूचन किया है कि ऋषिछन्दादि-कोंके विनाजानेभी जो पुरुष श्रद्धापूर्वक केवल मंत्रका जप करता है तिसकोभी यथोक्त फलकी प्राप्ति होवे है इति ॥ २ ॥

एवं जपारंभे कर्तव्यमुक्त्वाधुना जपकाले दर्शयति ।

तदर्थभावनमन्यनिषेधार्थम् ॥ ३ ॥

तस्य मंत्रस्य यः शास्त्रसंमतो देवतास्वरूपादिप्रतिपादनपरोऽर्थः स्यात् तस्यार्थस्य मंत्रावर्तनसमये भावनं पुनः पुनश्चेतसा चिंतनं कर्तव्यं । तथाचोक्तं योगशास्त्रे । 'तज्जपस्तदर्थभावनमि'ति ॥ प्रयोजनमाह । अन्यनिषेधार्थं यतो जपकाले ध्येयस्वरूपं विहाय मनो नान्यत्र गच्छेदित्यर्थः । प्रतिक्षणं परिणामित्वाच्चंचलं हि चेतः तस्य सर्वतो निवारणं कृत्वा भगवत्स्वरूपे निवेशनं कुर्यादिति ॥ ३ ॥

इसप्रकार जपके आरंभकालमें कर्तव्य कह करके अब जपकरणकालमें कथन करे हैं.

'तदर्थभावनमन्यनिषेधार्थम्' जपने योग्य मंत्रका जो देवताके स्वरूपादिक प्रतिपादन करनेहारा शास्त्रसंमत अर्थ होवे तिस अर्थको मंत्रके जप करनेकालमें भावना करना चहिये अर्थात् वारंवार अपने मनमें चिंतन करना चहिये तथा योगशास्त्रमेंभी लिखा है 'तज्जपस्तदर्थभावनम् ।' अर्थ—प्रणवादि मंत्रका जप करते वकत तिसके अर्थकाभी मनमें चिंतन करना चहिये इति । मंत्रके अर्थ चिंतनका प्रयोजन कहते हैं 'अन्यनिषेधार्थं' कहिये जिससे जपकालमें अपने इष्टदेवके स्वरूपको छोड करके मन दूसरी जगापर नहि जावे अर्थात् यह चित्त क्षणक्षण परिणामी स्वभाववाला होनेतें

चंचलस्वभाववाला है सो तिसको और सर्व तरफसे निवारण करके केवल भगवत्स्वरूपमें लगाना चहिये इति ॥ ३ ॥

सामान्यतश्चित्तनिरोधप्रकारं दर्शयित्वाऽधुनोपायांतरमाह ।

अधिष्ठातृवीर्यानुचिंतनंच ॥ ४ ॥

जप्यमानस्य मंत्रस्य यत् भगवत्स्वरूपमधिष्ठातृ दैवतं स्यात् तस्य यानि वीर्याणि पराक्रमनिमित्तानि निगमागमप्रसिद्धानि कर्माणि श्रुतानि शास्त्रतो वा स्वयमवलोकितानि भवेयूस्तेषामपि जपकाले चिंतनं कर्तव्यं । अत्रेदं तात्पर्यं सर्वतः प्रसरणशीलत्वाच्चित्तस्य ध्येयस्वरूपमात्रचिंतने सहसा स्थितिर्न जायते अतस्तदनुकूलतया चतुर्दशभुवनोत्पादनपालनसंहरणमधुकैटभहननहिरण्यकशिपुवक्षोविदारणक्षीरार्णवनिर्मंथनरावणवंशविध्वंसनकंसकेशाकर्षणादिषु भगवतो लीलाविहारेष्वेव चित्तस्य प्रसारणं कुर्यान्नान्यपदार्थेष्विति ॥ ४ ॥

इसप्रकार सामान्यसे चित्तनिरोधका प्रकार दिखलाकर अब दूसरा उपाय कथन करते हैं.

'अधिष्ठातृवीर्यानुचिंतनं च' जपने योग्य मंत्रका जो ईश्वरका विग्रह अधिष्ठाता देवता होवे तिसके जो वीर्य कहिये पराक्रम निमित्तसे प्रकट भये शास्त्रोंमें प्रसिद्ध दिव्यकर्म हैं सो विद्वानोंके

मुखसे श्रवण किये होवें अथवा स्वयमेव शास्त्रोंमें देखे होवें तिन-काभी जप कालमें मनसे चिंतन करना चहिये यहां यह तात्पर्य है कि सर्वतरफ फैलने स्वभाववाला जो चित्त है सो केवल ध्येय देवताके स्वरूपमें एकदम स्थिर नही होसके है यातें तिसके अनु-कूलही चतुर्दश भुवनोंका उत्पत्ति पालन और संहार करना मधु-कैटभादि दैत्योंका हनन करना हिरण्यकशिपुका पेटविदारण करना क्षीरसागरका मथन करना रावणके वंशका नाश करना और कंसके केशोंका आकर्षण करना इत्यादिक जो भगवान्के दिव्य लीलाविहार हैं तिनहीमें चित्तको फैलाना चहिये दूसरे पदार्थोंमें नहि इति ॥ ४ ॥

सर्वत्र तन्मयत्वावलोकनं वा ॥ ५ ॥

अथवा सति विशेषचांचल्ये सर्वत्र तन्मयत्वं ध्येयात्मकत्वमेवावलोकयेत् । यत्र यत्र मनो गच्छेत् तत्र तत्रैव भगवत्स्वरूपत्वं भावयेदित्यर्थः । 'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्य' इति श्रुतेः। 'मयाततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिने'ति भगवद्वचनाच्च सर्वपदार्थेष्वनुगतत्वात्परमेश्वरस्य जपकाले 'सर्वं विष्णुमयं जगदि'ति धियावलोकनं कुर्यादिति ॥५॥

किंच ।

'सर्वत्र तन्मयत्वावलोकनं वा' अथवा विशेष चंचलताके कार-णसे जो चित्त एक जगा भगवान्के स्वरूपमें स्थित नहि होसकै तो

'सर्वत्र तन्मयत्वं' कहिये सर्व जगामें अपने इष्ट देवकाही चिंतन करे अर्थात् जप करते वकत जहां जहां मन जावे तहां तहांही भगवान्‌के स्वरूपकी भावना करे क्योंकि 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' इस वेदके वाक्यमें परमेश्वरको सर्वजगा व्यापक लिखा है। तथा गीतामें श्रीकृष्णजीनेभी कहा है 'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।' अर्थ—हे अर्जुन यह सर्व जगत् मैंने मेरे अव्यक्तरूपसे व्याप्त कर रखा है इति । यातें सर्व पदार्थोंमें परमेश्वरको अनुगत होनेतें जपकालमें 'सर्वं विष्णुमयं जगत्' इस रीतिसे सर्व जगत्‌को मनसें विष्णुस्वरूपही देखे इति ॥ ५ ॥

इत्थं जपप्रकारं निरूपयित्वाधुना मंत्रग्रहणविधिमाह ।

आचार्यमुखादेव साफल्यात् ॥ ६ ॥

आचार्यस्य मंत्रशास्त्रविधानाभिज्ञस्य सदाचारनिष्ठस्य परमेश्वरस्वरूपाववोधयुक्तस्य गुरोर्मुखादेव मंत्रस्य विधिवद्ग्रहणं कर्तव्यं न तु स्वयमेव शास्त्रतोवलोक्य श्रुत्वा वा जपं कुर्यात् । कुतः साफल्यात् गुरुमुखादेव गृहीतस्य मंत्रस्यावर्तनं सफलं भवति । 'आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयती'ति सामवेदीयछान्दोग्योपनिषद्वाक्यात् । 'भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्रसमुद्भवा । अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदुःखदे'ति । शिवसंहितावचनाच्चेति ॥ ६ ॥

इस रीतिसे जपका प्रकार निरूपण करके अब मंत्रके ग्रहण करनेकी विधि कथन करे हैं.

'आचार्यमुखादेव साफल्यात्' आचार्य कहिये मंत्रशास्त्रके रहस्यके जाननेहारा सदाचारनिष्ठ और परमेश्वरके स्वरूपके ज्ञानकरके युक्त जो गुरु होवे तिसहीके मुखसे मंत्रका विधिपूर्वक ग्रहण करना चहिये । स्वयं शास्त्रमें देख करके अथवा कथा प्रसंगादिकोंमें श्रवण करके मंत्रका जप नहि करना चहिये क्योंकि 'साफल्यात्' कहिये गुरुमुखद्वारा ग्रहण कियेहूये मंत्रका जप करनाही सफल होवे है तथा सामवेदीय छांदोग्यउपनिषत्‌मेंभी लिखा है 'आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयति ।' अर्थ—गुरुमुखसे जानीहुई विद्याही अभीष्ट फलकी प्राप्तिका हेतु होवे है इति । तथा शिवसंहितामेंभी कहा है 'भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्रसमुद्भवा । अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदुःखदा ।' अर्थ—गुरुमुखसे ग्रहण करी हुई विद्या बलवाली होती है और विना गुरुमुखसे फलहीन बलरहित और क्लेशदेनेवाली होवे है इति ॥ ६ ॥

तदेवमुपासनांगभूतं जपविधानमुक्त्वेदानीं परमेश्वरोपासनासक्तमानसैः पुरुषैरितराणि श्रुतिस्मृतिविहितानि कर्माणि कर्तव्यानि न वेति जिज्ञासायां निर्णयमाह ।

तदुपयोगिकर्मापि ॥ ७ ॥

तस्येश्वराराधनस्योपयोगीनि श्रुतिस्मृतिविहितानि नि-

त्यनैमित्तिकानि कर्माण्यपि यथासमयं यथासंभवं भगवदुपासकेन कर्तव्यानि न तेषां सर्वथा परित्यागो युक्तः। सम्यगारूढतामुपगते तु परमेश्वराराधने तत्त्यागे दोषप्रसंगो न भवति। तदुक्तं भगवद्गीतायां 'आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्मकारणमुच्यते। योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते' इति ॥ ७ ॥

इसप्रकारसे परमेश्वरकी उपासनाके अंगभूत जपका विधान निरूपण करके अब परमेश्वरके आराधनपरायण पुरुषोंको दूसरे श्रुतिस्मृतियोंकरके विहित जो कर्म हैं सो करने चहिये कि नहि ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं.

'तदुपयोगिकर्मापि' परमेश्वराराधनके उपयोगी जो श्रुतिस्मृतिविहित नित्यनैमित्तिक कर्म हैं सो भी अवकाश और अपनी शक्तिके अनुसार परमेश्वरके उपासक पुरुषको करने चहिये क्योंकि सर्वथा तिनका परित्याग करना उचित नहि है और जब सम्यक् प्रकारसे परमेश्वरके ध्यानमें वृत्ति आरूढ हो जावे तो पश्चात् कर्मोंके त्याग होजानेमें दोषप्रसंग नहि होवे है। तथा भगवत्गीतामेंभी कहा है 'आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्मकारणमुच्यते । योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।' अर्थ—परमेश्वरके ध्यानरूपयोगमें आरूढ होनेकी इच्छावाले मुनिको प्रथम कर्म करणे उपयोगी हैं

और जब सोई पुरुष योगारूढ हो जावे तो पश्चात् तिसको कर्मोंका परित्यागही उपयोगी होवे है इति ॥ ७ ॥

एवं कर्मकरणानुज्ञां प्रदायाधुना विशेषप्रवृत्तिं वारयति ।

विक्षेपहेतुत्वान्न बहुलम् ॥ ८ ॥

बाह्यकर्मणां परमेश्वरानुचिंतने विघ्नभूतत्वात् तेषां बहुलतया विस्तारं न कुर्वीत श्रुतिस्मृतिविहितत्वादवश्यं मयैतान्यखिलानि कर्तव्यानीत्येवं कर्मस्वादरं कृत्वा न तत्परतामुपेयात् । नहि बाह्यक्रियास्वासक्तांतःकरणेन पुरुषेण सम्यक्तया भगवच्चिंतनं कर्तुं शक्यते । तस्मात्कर्मणः सकाशात्परमेश्वरोपासनाया विशेषफलहेतुत्वं निश्चित्य तत्पर एव सततं भवेत् । ततो लब्धावकाशस्तु संध्यातर्पणादीनि नित्यानि होमश्राद्धादीनि नैमित्तिकानि च कर्माणि यथासंभवं कुर्यादिति ॥ ८ ॥

इसप्रकार कर्म करनेकी अनुज्ञा देकर अब तिनमें विशेष प्रवृत्तिका निषेध करते हैं.

'विक्षेपहेतुत्वान्न बहुलम्' बाह्य कर्मोंको परमेश्वरके ध्यान करणेमें विघ्नरूप होनेतें तिनका बहुलतासे विस्तार नही करना चहिये । श्रुतिस्मृतियोंकरके विहित होनेतें मेरेको यह सर्वही अवश्य करने चहिये इसप्रकार कर्मोंमें आदर करके तिनके तत्पर नही होना चहिये क्योंकि बाह्यक्रियामें आसक्त अंतःकरणवाला पुरुष सम्यक्

प्रकारसे परमेश्वरका ध्यान नही कर सकता है यातें कर्मोंकी अपे-क्षासे परमेश्वरकी उपासनाको विशेष फलका हेतु निश्चय करके निरंतर तिसहीके परायण होना चहिये तहांसे अवकाश मिले तो संध्यातर्पणादि नित्यकर्म और होम श्राद्धादि नैमित्तिक कर्म यथा-शक्ति करने चहिये इति ॥ ८ ॥

यदेतदुपवर्णितं तन्न संगच्छते कुतः जनकयुधिष्ठिरादि-भिर्भगवदाराधनपरायणैरपि राजसूयाश्वमेधादीनि महांति कर्माणि पुरा कृतानि श्रूयंते तत्कथं कर्मविस्तारस्यानादरः क्रियते तत्राह ।

तदारंभदर्शनादिति चेन्नान्यहेतुकत्वात् ॥ ९ ॥

तस्य यज्ञादेर्विस्तृतस्यापि कर्मणः भगवद्भक्तेषु युधिष्ठि-रादिष्वारंभो दृष्ट इति चेत् नैवमत्राशंकनीयं । कुतः अन्य-हेतुकत्वात् । नहि तेषां युधिष्ठिरादीनां परमेश्वरप्रसन्नतार्थं तदाराधनबुद्ध्या वा तेषु यज्ञादिमहत्कर्मसु प्रवृत्तिरभवत् । किंतु अन्यहेत्वर्थमभवत् स च हेतुर्द्विविधः लोकप्रवृत्ति-रूपः प्रायश्चित्तात्मकश्च अन्यलोकप्रवृत्त्यर्थं युद्धादिहिंसाज-नितदोषपरिहारार्थं च तैर्युधिष्ठिरादिभिरश्वमेधादीनि कर्माण्यनुष्ठितानीतिबोध्यं तस्मान्नैकांतपरमेश्वरस्वरूपचिं-तनपराणामयं विधिरस्तीति ॥ ९ ॥

तुमने जो कहा कि बाह्यकर्मोंका विस्तार नही करना चहिये

सो यह वार्ता संभवे नहि क्योंकि जनकयुधिष्ठिरादिक भगवत्के आराधनपरायण पुरुषोंनेभी राजसूय अश्वमेघादिक बडेबडे कर्म पहले किये सुननेमें आते हैं तो फिर तुम किस लिये कर्मविस्तारका निरादर करते हो ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'तदारंभदर्शनादिति चेन्नान्यहेतुकत्वात्' यज्ञादि विस्तृत कर्मोंकाभी युधिष्ठिरादिक भगवत्भक्तोंमें आरंभ देखनेमें आया है यह जो तुमने कहा सो ठीक है परंतु इस स्थलमें ऐसी शंका नहि संभवे है क्योंकि 'अन्य हेतुकत्वात्' कहिये तिन युधिष्ठिरादिकोंकी जो यज्ञादिक बडे कर्मोंमें प्रवृत्ति होती भई है सो परमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये अथवा तिसके आराधनकेलिये नहि होती भई है किंतु अन्यहेतुकेलिये होती भई है सो हेतु दो प्रकारका जानना चहिये एक तो लोकप्रवृत्तिरूप और दूसरा प्रायश्चित्तरूप सो अन्यलोकोंकी प्रवृत्तिके अर्थ और युद्धादिजन्यहिंसादोषकी निवृत्तिके लियेही तिन युधिष्ठिरादिकोंने अश्वमेघादिकर्मोंका अनुष्ठान किया है यातें एकांत परमेश्वरके आराधनपरायण पुरुषोंके लिये यह विधि नहि है इति ॥९॥

भवतु नामान्यलोकप्रवृत्त्यर्थं तेषां यज्ञादिषु प्रवृत्तिः परं तु प्रायश्चित्तं न युज्यते । कुतः 'महापातकयुक्तोपि ध्यायन्निमिषमच्युतं । भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावन' इत्यादिस्मृतेरीश्वराराधनेनैवाखिलदुरितविनाशात् किमर्थं पुनः पृथक् प्रायश्चित्तानुष्ठानं तत्राह ।

प्रायश्चित्ताचरणं चोपदेशार्थम् ॥१० ॥

प्रायश्चित्ताचरणमपि तेषामुपदेशार्थमेव विज्ञेयं । यद्यपि परमेश्वराराधनपराणां जनानामीश्वरचिंतनं विहाय नान्य-प्रायश्चित्ताचरणापेक्षास्ति 'प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मा-त्मकानि वै । यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परमि' ति विष्णुपुराणवचनात् । तथापि 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्त-देवेतरो जन' इति न्यायेन लोकानामुपदेशार्थं तेषां तत्र प्रवृत्तिर्जायते यथास्मानवलोक्यान्येपि लोकाः प्रायश्चित्ता-दिकर्मसु प्रवृत्ता भविष्यंतीति साधारणलोकशिक्षार्थं स्वकी-यप्रयोजनाभावेपि ते प्रायश्चित्ताचरणं कुर्वंतीति बोध्यं । तदेतदुपदिष्टं भगवता श्रीकृष्णेनाप्यर्जुनं प्रति 'सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत । कुर्याद्विद्वांस्तथासक्त-श्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहमिति' तस्मात् क्वचित् भगवद्भक्तानामपि सति संभवे युधिष्ठिरादिवत् पृथक् प्रायश्चित्ताचरणं न विरुद्धमित्यवसेयम् ॥ १० ॥

यद्यपि अन्यलोकोंकी प्रवृत्तिके लिये तिनकी यज्ञादि कर्ममें प्रवृत्ति होनी युक्त है परंतु भगवान्के भक्तोंकी प्रायश्चित्त कर्ममें प्रवृत्ति युक्त नहि है क्योंकि विष्णुपुराणमें लिखा है 'महापातकयु-क्तोपि ध्यायन्निमिषमच्युतं । भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः ।'

अर्थ—ब्रह्महत्यादिक महापातकोंकरके युक्त भयाभी पुरुष जो निमिषमात्र विष्णुभगवान्‌का ध्यान करता है तो सो पुनः तपस्वी और पंक्तिपावन करनेहारोंकाभी पावन करनेहारा होवे है इति । इत्यादि स्मृतिवचनोंमें ईश्वरके आराधनसेंही सर्वपापोंका विनाश हो जावे है तो फिर जुदा प्रायश्चित्त कर्मके अनुष्ठान करनेकी क्या आवश्यकता है ऐसी शंका होनेतें कहे हैं ।

'प्रायश्चित्ताचरणं चोपदेशार्थम्' प्रायश्चित्तका आचरण करनाभी तिनका लोकोंके उपदेशके लियेही जानना चहिये यद्यपि परमेश्वरके आराधनपरायण पुरुषोंको ईश्वरके चिंतनको छोड करके दूसरे किसी प्रायश्चित्ताचरण करनेकी अपेक्षा नहि है क्योंकि विष्णुपुराणमें लिखा है 'प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै । यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ।' अर्थ—यावन्मात्र तप वा कर्मरूप प्रायश्चित्त धर्मशास्त्रोंमें कथन किये हैं तिन सर्वोंसे विष्णुभगवान्‌का स्मरण करना श्रेष्ठ है इति । तथापि 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः' इस गीतावचनके अनुसार लोकोंके उपदेशके निमित्त परमेश्वरके भक्तोंकीभी तिन कर्मोंमें प्रवृत्ति होवे है जैसे कि हमारेको देखकरके दूसरे लोकभी प्रायश्चित्तादि कर्मोंमें प्रवृत्त होवें इस लिये अपना कुछ प्रयोजन नहि होनेपरभी साधारण लोकोंकी शिक्षाके अर्थ सो लोक प्रायश्चित्ताचरण करते भये हैं तथा भगवत्गीतामेंभी लिखा है 'सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत ।

कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ।' अर्थ–हे भारत जैसे अज्ञानी लोक कर्मोंमें आसक्त हो करके तिनका अनुष्ठान करते हैं तैसेही ज्ञानी पुरुषकोभी लोकोंकी प्रवृत्तिके अर्थ आसक्तिसे रहित होकरके कर्म करने चहिये इति । यातें क्वचित् भगवत्भक्तोंकोभी धन आदि सामग्रीके होनेतें युधिष्ठिरादिकोंकी न्यांई पृथक् प्रायश्चित्ताचरणकरणा निषिद्ध नहि है इति ॥ १० ॥

एवं प्रासंगिकमाक्षेपं समाधायाधुना तमेव कर्मविस्तारं दूषयति ।

समुच्चयानभिधानात् ॥ ११ ॥

इतश्च परमेश्वरानुचिंतनपरो न बाह्यकर्मविस्तारं कुर्यात् समुच्चयानभिधानात् । नहि वेदे परमेश्वरोपासनया सह कर्मणां समुच्चयो विहितोस्ति 'अंधं तमः प्रविशंति येऽविद्यामुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायांरताः' इत्यत्र वाजसनेयसंहितायां यो विद्याकर्मणोः समुच्चयः श्रूयते स तु केवलकर्मनिंदापरः न तु केवलोपासनानिंदापरः । ततो यज्ञादिकर्मांगभूतदेवतोपासनाकर्मिभिरवश्यं कर्तव्या न तु परमेश्वरोपासकैः कर्माण्यप्यवश्यं कर्तव्यानीति नियम्यते । 'कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोक' इति भिन्नफलश्रवणादप्युपासनया सह कर्मणो न समुच्चयः । विद्यया तदारोहंति यत्र कामाः परा गताः । न तत्र

कर्मिणो यांति नाविद्वांसस्तपस्विन' इति वचनाच्च नेश्वराराधने यज्ञादिकर्मापेक्षा विद्यते तस्मात् भगवद्ध्यानपरेण बाह्यकर्मविस्तारेषु नादरः कर्तव्य इति ॥ ११ ॥

इस प्रकार प्रसंगपतित आक्षेपका समाधान निरूपण करके अब पुनः पूर्वोक्त कर्मविस्तारका निषेध करते हैं।

'समुच्चयानभिधानात्' वेदमें परमेश्वरकी उपासनाके साथ कर्मोंका समुच्चय विधान नहि किया है इसलियेभी परमेश्वरके चिंतनपरायण पुरुषको बाह्यकर्मोंका विस्तार नहि करना चहिये और जो 'अंधं तमः प्रविशंति येऽविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳरताः।' अर्थ—जो पुरुष केवल कर्म करते हैं सो अंधतमको प्रवेश करते हैं और जो केवल देवतायोंकी उपासना करते हैं सो तिसतेभी अधिक तमको प्रवेश करते हैं अर्थात् कर्म और उपासना दोनों मिलाय करके करणे चहिये इति। इस यजुर्वेदके वचनमें जो कर्म और उपासनाका समुच्चय श्रवणमें आवे है सो तो एकले कर्म करणेका निषेध करता है एकली उपासना करणेका निषेध नहि करता है यातें यज्ञादिकर्मोंके अंगभूत देवतायोंकी उपासना कर्मियोंको अवश्य करनी चहिये किंतु परमेश्वरके उपासकोंको कर्मभी अवश्य करने चहिये इस वार्ताका नियम नहि किया है तथा 'कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः' इस वेदके वचनमें कर्मोंका और उपासनाका भिन्नभिन्न फल कथन किया है

यातेंभी उपासनाके साथ कर्मोंका समुच्चय नहि संभवे है तथा 'विद्यया तदारोहंति यत्र कामाः परागताः । न तत्र कर्मिणो यांति नाविद्वांसस्तपस्विनः ।' अर्थ—उपासना करके उस पदको प्राप्त होते हैं कि जहां सर्व कामना पूर्ण हो जाती हैं सो तिस पदको कर्म करनेवाले और अविद्वान् तपस्वी लोक नहि प्राप्त हो सकते हैं इति । इस वचनसेभी परमेश्वरके आराधनमें यज्ञादि कर्मोंकी अपेक्षा नहि है यह वार्ता सिद्ध होवे है यातें परमेश्वरके ध्यानपरायण पुरुषको बाह्य कर्मोंके विस्तारमें विशेष आदर नहि करना चहिये इति ॥ ११ ॥

किंच ।

प्रयोजनाभावाच्च ॥ १२ ॥

प्रयोजनाभावादपीश्वराराधनेनकर्मविस्तारापेक्षास्ति नहि चित्तैकाग्रतामात्रसाध्ये परमेश्वराराधने बाह्यकर्मणां किंचित्प्रयोजनमस्ति यज्ञादिकर्मणां हि द्विविधं प्रयोजनं भवति सकामानां स्वर्गादिभोगप्राप्तिर्निष्कामानामंतःकरणशुद्धिश्च तत्रेश्वरोपासनया सर्वभोगावधिब्रह्मलोकस्यापि सुलभत्वात् किमुत स्वर्गादयः । तथाचोक्तं विष्णुपुराणे 'वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु । तस्यांतरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फल' मिति समस्तपापक्षयकारित्वञ्चांतःकरणशुद्धिहेतुत्वमपीश्वराराधनस्य श्रुतिस्मृतीतिहासादिषु प्रसिद्धमेवातः उभयथापीश्वराराधने नबाह्यकर्मणां प्रयोजनमस्तीति ॥ १२

किंच ।

'प्रयोजनाभावाच्च' प्रयोजनके अभावसेभी ईश्वरके आराधनमें कर्मोंके विस्तारकी अपेक्षा नहि है केवल चित्तकी एकाग्रतामात्र करके साध्य जो परमेश्वरका आराधन है तिसमें वाह्यकर्मोंका किंचित्सी प्रयोजन नहि है क्योंकि यज्ञादिकर्मोका दो प्रकारकाही प्रयोजन होवे है एक तो सकाम पुरुषोंको स्वर्गादि भोगोंकी प्राप्ति होनी और दूसरे निष्काम पुरुषोंको अंतःकरणकी शुद्धि होनी सो परमेश्वरकी उपासना करणेसे सर्व भोगोंकी अवधिरूप ब्रह्मलोकभी सुलभ होवे है तो स्वर्गादिकोंकी तो क्याही वार्ता कहनी है तथा विष्णुपुराणमेंभी कहा है 'वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु । तस्यांतरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम्' अर्थ—पराशरमुनि कहते हैं हे मैत्रेय जिस पुरुषका मन वासुदेव भगवान्के जप होम और अर्चनादिकोंमें लगा हूया है तिसको देवेन्द्रादिकोंका पद मिलनाभी विघ्नरूप है इति ॥ तथा सर्व पापोंके नाशका हेतु होनेतें परमेश्वरके आराधनको अंतःकरणकी शुद्धिकी हेतुताभी श्रुतिस्मृतियोंमें प्रसिद्धही है यातें उभयथापि ईश्वरके आराधनमें वाह्य कर्मोंका प्रयोजन नहि है इति ॥ १२ ॥

एवं यद्युभयथा कर्मणां प्रयोजनं नास्ति भविष्यति तदा तेषां सर्वथा समुच्छेद एव तथा सति च तत्प्रतिपादकशास्त्रस्याप्यनर्थकत्वं प्रसज्येत तत्राह ।

अधिकारिभेदान्नोच्छेदप्रसंगः ॥ १३ ॥

भवत्यत्राधिकारिभेदेन व्यवस्थितिरतो न कर्मणामनर्थकत्वमाशंकनीयं । नहि किंचिदपि शास्त्रविहितमनुपयोगि भवितुमर्हति । अस्तिकश्चिज्जननमरणसंसृतिचक्रभीरुरपगताशेषदुरितः समाहितचेता विरक्तः परमेश्वरोपासनाधिकारी अन्यस्तूपार्जितसर्वोपकरणोऽनवस्थितमतिरशुद्धांतःकरणः स्वर्गादिफलासक्तः कर्मणामधिकारी तत्रैतस्य कर्मभिरेव कृत्यमस्ति तस्य चेश्वरानुचिंतनेनैव केवलेनेति तयोर्वैलक्षण्यं अतो नास्ति सर्वथा यज्ञादिकर्मणामुच्छेदप्रसंगः । यद्यपियत्कर्मकलापेन कार्मिणः कृत्यमस्ति तदीश्वराराधनेन सुतरां संपद्यते परं तु स्थूलमतितया तत्रैव श्रद्दधानस्य कर्मस्वेव प्रवृत्तिर्जायते नेश्वराराधने तस्मात्तं प्रत्यस्ति कर्मणां प्रयोजनवत्त्वमिति ॥ १३ ॥

उक्तरीतिसे दोनोंप्रकारसे जो कर्मोंका प्रयोजन नहि है तो सर्वथा तिनका समुच्छेदही हो जावेगा और कर्मोंके समुच्छेद होनेतें तिनके प्रतिपादक शास्त्रोंको व्यर्थापत्ति होवेगी ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'अधिकारिभेदान्नोच्छेदप्रसंगः' कर्म और उपासनाकी अधिकारीके भेद होनेतें व्यवस्था होवे है इसलिये कर्मोंके अनर्थकपणेकी शंका नहि करणी चहिये क्योंकि शास्त्रविहित कोई पदार्थभी अनु-

पयोगी नहि होवे है जो पुरुष जन्ममरणरूप संसारचक्रसे भय मानता है और शुभ कर्मोंसे जिसके सर्व पाप दूर हो गये है और समाहित चित्तवाला भोगोंसे विरक्त है सो तो परमेश्वरकी उपासनाका अधिकारी है तथा जो कर्म करणे योग्य सर्व सामग्री करके युक्त है और चंचल चित्त मलिन अंतःकरणवाला और भोगोंमें आसक्त पुरुष है सो कर्मोंका अधिकारी है तिसको कर्मोंमेंही प्रीति होवे है और दूसरेको केवल ईश्वरचिंतनमेंही प्रीति होवे है इतना तिन दोनोंका विलक्षणपणा है इसलिये यज्ञादि कर्मोंका सर्वथा समुच्छेद प्रसंग नहि संभवे है यद्यपि जो तिस कर्मीपुरुषका कर्मोंके समूहसे प्रयोजन सिद्ध होवे है सो ईश्वरके आराधनसे सहजहीमें सिद्ध होसके है परंतु स्थूल बुद्धिके कारणसे कर्मोंमें श्रद्धा होनेतें तिनमेंही तिसकी प्रवृत्ति होवे हैं परमेश्वरके चिंतनमें नहि होती यातें तिसके प्रति कर्मोंकी सफलता है इति ॥ १२ ॥

ननु अनेन 'जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविश'दित्यादिवेदवचनेषु 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिहे' त्यादिस्मृतिवाक्येषु च जीवेश्वरयोरेकरूपत्वं श्रूयते तत्कथं पूर्वोक्तक्रमेणेश्वराराधनं तदुपयोगिजपादिकं च जीवं प्रति निर्दिश्यते तत्राह।

तदधीनत्वमभेदेऽपि जीवस्याविमोक्षात् ॥१४॥

परमेश्वरांशभूतत्वात्स्वरूपतो जीवस्येश्वरेण सहाभेदेऽपि तस्येश्वराधीनत्वमेव भवति आविमोक्षात् कैवल्यमोक्षपर्यंतमित्यर्थः । अयं जीवो यावत्पर्यंतमंतःकरणाद्युपाधियुक्तो भवति तावत्पर्यंतमस्येश्वरतंत्रत्वं न निवर्तते कैवल्ये तूपाधिविरहात्पारतंत्र्याद्विमुक्तो भवति 'स स्वराड् भवती'ति श्रुतिवचनात् ॥ १४ ॥

'ननु अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्' । अर्थ–परमेश्वरने संकल्प किया कि मैं इस जीवरूपसे प्रवेश करके नामरूपात्मक प्रपंचकी रचना करूं और सो ईश्वर इस देहादिक प्रपंचको निर्माण करके आपही इसमे प्रवेश कर जाता भया इत्यादि वेदके वचनोंमें तथा 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः । ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिह' । अर्थ–हे अर्जुन इस जगत्में मेराही सनातन अंश जीवरूप हो रहा है और ईश्वरही जीवरूपसे इस शरीरमें प्रविष्ट हो रहा है इत्यादि स्मृतिवाक्योंमें जीव और ईश्वरका एकही स्वरूप श्रवणमें आवे है तो फिर तुम पूर्वोक्तरीतिसे ईश्वरका आराधन और तिसके उपयोगी जपादिकोंका विधान जीवके प्रति क्यों कथन करते हो ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'तदधीनत्वमभेदेऽपि जीवस्याविमोक्षात्' यद्यपि परमेश्वरका अंशभूत होनेतें स्वरूपसें जीवका ईश्वरके साथ अभेदही है तथापि 'अविमोक्षात्' कहिये कैवल्यमोक्षपर्यंत यह जीव ईश्वरके अधीनही रहता है क्योंकि जबपर्यंत यह जीव अंतःकरणादि उपाधिकरके युक्त होवे है तबपर्यंत इसका ईश्वरका परतंत्रपणा निवृत्त नहि होता और कैवल्यमोक्षमें तो तिस उपाधिके वियोग हो जानेसे जीवका परतंत्रपणा छूट जावे है तथा सामवेदीयछान्दोग्यउपनिषत्‌मेंभी कहा है 'स स्वराड् भवति' । अर्थ—कैवल्यदशामें सो जीव स्वतंत्र होवे है इति ॥ १४ ॥

ननूभयोः स्वरूपतस्तुल्यत्वे कथमेकस्य परतंत्रत्वं जातं तत्राह ।

गुणरागात्तद्योगो न स्वभावात् ॥ १५ ॥

नेदं स्वभावतो जीवस्य परतंत्रत्वमस्ति किंतु गुणरागात् गुणेषु सत्त्वरजस्तमःपरिणामभूतेषु देहेन्द्रियांतःकरणेषु बाह्यविषयेषु च जीवात्मनः सुखसाधनत्वेन योऽभिरुच्यात्मको रागो भवति तेनैव तस्य परतंत्रत्वसंबंधो जायते । तथाचोक्तं भगवता श्रीकृष्णेन गीतायां 'कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मस्वि'ति। सांख्यशास्त्रेऽपि 'गुणयोगाद्बद्धः शुकवदि'ति ॥ १५ ॥

जो ईश्वर और जीव दोनोंकी स्वरूपसे तुल्यता है तो एकले जीवको परतंत्रपणा कैसे प्राप्त होवे है तहां कहे हैं.

'गुणरागात्तद्योगो न स्वभावात्' यह जीवका परतंत्रपणा स्वाभाविक नहि है किंतु 'गुणरागात्' कहिये सत्त्व रज तम इन तीनो गुणोंके परिणामरूप देह इन्द्रियादिकोंमें तथा शब्दस्पर्शादिक बाह्य विषयोंमें जीवात्माका जो सुखसाधनपणेसे अभिरुचि रूप राग होवे है तिस करकेही जीवको परतंत्रपणेका संवंध होवे है तथा गीतामें श्रीकृष्णजीनेभी कहा है। 'कारणं गुणसंगोस्य सदसद्योनिजन्मसु'। अर्थ—हे अर्जुन इस जीवका जो तीनों गुणोंमें संग अर्थात् राग है सोई उंच नीच योनियोंमें जन्मका कारण है इति। तथा सांख्यशास्त्रमेंभी लिखा है। 'गुणयोगाद्बद्धः शुकवत्'। अर्थ—यह जीव तीनों गुणोंके योग अर्थात् रागसे बंधनको प्राप्त होवे है जैसे शुकपक्षी डोरेसे बंधनको प्राप्त होवे है इति ॥ १५ ॥

परतंत्रत्वापादकस्य कैवल्यप्रतिबंधकस्य चास्य रागस्य केनोपायेन निवृत्तिर्जायते तत्राह।

परावबोधात्तन्निवृत्तौ कैवल्यम् ॥ १६ ॥

परावबोधात् परस्य परमात्मनो यथावत् स्वरूपज्ञानात् प्रपंचमिथ्यात्वबोधेन यदा तस्य रागस्य निवृत्तिर्जायते तदास्य जीवस्य भवति कैवल्यं। तथाचोक्तं न्यायशास्त्रे

'वीतरागजन्मादर्शनादि'ति। भारतेऽपि मोक्षधर्मे 'इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च नोपसर्पंत्यतर्षुलं। हीनश्च करणैर्देही न देहं पुनरर्हती'ति ॥ १६ ॥

परतंत्रताका हेतु और कैवल्यमोक्षका प्रतिबंधक जो यह राग है तिसकी किस उपायकरके निवृत्ति होवे है ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं.

'परावबोधात्तन्निवृत्तौ कैवल्यम्'। परावबोधात्' कहिये जिसकालमें जीवको परमात्माके स्वरूपका यथावत् ज्ञान होवे है तो सर्व प्रपंचके मिथ्यापणेके निश्चय होनेतें तिस रागकी निवृत्ति हो जावे है तदनंतर यह जीवात्मा कैवल्यदशाको प्राप्त होवे है तथा न्यायशास्त्रमेंभी लिखा है 'वीतरागजन्मादर्शनात्।' अर्थ—जिस पुरुषका राग निवृत्त हो जावे है तिसका फिर जन्म देखनेमें नहि आवे है इति। तथा महाभारतके मोक्षधर्मपर्वमेंभी लिखा है 'इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च नोपसर्पंत्यतर्षुलं। हीनश्च करणैर्देही न देहं पुनरर्हति'। अर्थ—ज्ञानके प्रभावसे जिस कालमें इस पुरुषकी विषयोंसे तृष्णा निवृत्त हो जावे है तो पुनः श्रोत्रादिक इन्द्रिय तथा तिनके शब्दादिक विषय जीवके पास नहि आते हैं और सो इन्द्रियोंसे रहित भया फिर जन्मको धारण नहि करे है इति ॥ १६ ॥

सोयं परावबोधः केनोपायेन भवतीत्यपेक्षायां तदुपलब्धिप्रकारं क्रमेण वर्णयति।

विरहीवानुतर्कणम् ॥ १७ ॥

परमेश्वरस्वरूपाववोधस्य प्रथमावस्थायां पूर्वसंस्कारजनितप्रेमातिशयप्रावल्यादेवंविधाः प्रतिक्षणं पुरुषस्य मनसि वितर्का जायंते कदा मे भगवद्दर्शनं भविष्यति कथं च स जगदीश्वरो ममोपरि प्रसन्नतामुपयास्यति जननमरणसंसृतिभयाच्च कथं मे निर्गमो भविष्यतीत्येवं गच्छंस्तिष्ठन्ननुक्षणं चेतसा चिंतयति विरहीवेति निदर्शनं यथा वियोगातुरः स्वप्रियां निरंतरं मनसि भावयति तद्वदस्यापि परमेश्वरानुभावनं जायत इति ॥ १७ ॥

यह जो राग निवृत्तिपूर्वक कैवल्यमोक्षका हेतु परमेश्वरके स्वरूरूपका ज्ञान है सो किस उपायसे प्राप्त होवे है ऐसी जिज्ञासा होनेतें अब क्रमसे ज्ञानप्राप्तिका प्रकार वर्णन करे हैं.

'विरहीवानुतर्कणम्' परमेश्वर स्वरूपके बोधकी प्रथमावस्थामें पूर्व संस्कारोंसे परमेश्वरमें प्रेमके अतिशयकी प्रवलता होनेतें उपासक पुरुषके मनमें क्षणक्षण प्रति इसप्रकारके वितर्क उत्पन्न होते हैं कि कब मेरेको भगवान्का दर्शन होवेगा और किसप्रकार सो जगदीश्वर मेरेऊपर प्रसन्न होवेगा तथा जन्ममरणरूप संसारभयसे किसप्रकारसे मेरा निकलना होवेगा इसप्रकार चलते वैठते क्षणक्षण प्रति चित्तमें चिंतन करता रहता है विरहीव कहिये जैसे वियोग करके आतुर

भया कामीपुरुष निरंतर अपनी प्यारी स्त्रीका चिंतन करता है तैसेही तिस उपासक पुरुषको परमेश्वरका अनुचिंतन होवे है इति॥ १७ ॥

ततः किं भवति ।

तद्यशःश्रवणकीर्तनौत्सुक्यम् ॥ १८ ॥

तस्य परप्रेमास्पदस्य भगवतो नारायणस्य यदखिलदुरितापहारि श्रुतिस्मृतीतिहासादिषु प्रसिद्धं यशस्तस्य श्रवणेऽभिरुचिरस्योपजायते साधुजनमुखादवकर्ण्य स्वयमपि च तदनिशं कीर्तयति यत्र यत्र परमेश्वरसंबंधिनी चर्चा भवति तत्र तत्र प्रयत्नेन श्रोतुमुपगच्छति श्रुत्वा च स्वयमप्यन्यानानुरागिणः श्रावयतीत्यर्थः ॥ १८ ॥

तिसके अनंतर क्या होवे है सो दिखलावे हैं

'तद्यशःश्रवणकीर्तनौत्सुक्यम्' तिसपर प्रेमास्पदभूत परमेश्वरका जो सर्व पापोंके नाश करनेहारा और श्रुतिस्मृतिइतिहासादिकोंमें प्रसिद्ध पवित्र यश है तिसके श्रवण करनेमें तिस उपासक पुरुषकी प्रतिदिन रुचि होवे है और साधुजनोंके मुखसे भगवान्‌का यश श्रवण करके पश्चात् आपभी तिसका निरंतर कीर्तन करे है तथा जहांजहां परमेश्वर संबंधी चर्चा होती होवे तहां तहां प्रयत्नसे सुननेको जावे है और तहांसे श्रवण करके पश्चात् आपभी दूसरे परमेश्वरके अनुरागी पुरुषोंको प्रीतिपूर्वक श्रवण करावे है इति १॥८॥

एवं भगवत्प्रभावश्रवणानंतरं ।

तद्गत्युपायान्वेषणम् ॥ १९ ॥

तस्य परमेश्वरस्य या गतिरुपलब्धिर्यथावत् तत्स्वरूप-ज्ञानमिति यावत् तदुपायान्वेषणं करोति तस्य परमेश्वरस्य किं स्वरूपं चतुर्भुजाद्याकारमेव ततोऽन्यद्विलक्षणं वा कथं च तदहं विजानीयां किंच मया तदवबोधार्थमनुष्ठेयमित्येवं प्रत्यहमितस्ततः पर्यन्वेषणं कुरुत इति ॥ १९ ॥

इसप्रकार भगवान्के प्रभाव श्रवणके अनंतर क्या होवे है सो कथन करे हैं.

'तद्गत्युपायान्वेषणम्' तिस परमेश्वरकी जो गति कहिये प्राप्ति है अर्थात् परमेश्वरके स्वरूपका जो यथार्थ ज्ञान है तिसके उपायको ढूंढता है अर्थात् परमेश्वरका क्या स्वरूप है चतुर्भुजादि आकारवाला ही स्वरूप है किंवा तिसतें विलक्षण है और सो मैं किसप्रकारसे जान सकूं तिस स्वरूपके यथार्थ जाननेके लिये मुझको क्या उपाय करना चहिये इसरीतिसे इधर उधर सर्वदा अन्वेषण करता है इति ॥ १९ ॥

इत्थं जाताभिरुचिना किं कर्तव्यमित्याचार्यः स्वयमेवोपायं दर्शयति ।

तज्जनानुगमनाभ्यर्चनानुकरणानि ॥ २० ॥

तस्य परमेश्वरस्य जना भागवताः परमेश्वरस्वरूपाभिज्ञा

निखिलश्रुतिस्मृतिरहस्यवेत्तारः पक्षपातविवर्जिता यथार्थाभिधायिनो महात्मानो यत्र भवेयुस्तेषां प्रतिदिनमनुगमनं कर्तव्यं एतेषामुपदेशेन मम परमात्मस्वरूपाववोधोऽवश्यं भविष्यतीति श्रद्धया तेषां समागमः कर्तव्यः समागमानंतरं स्वांतःकरणविशुद्धये तत्प्रसादसंपादनाय च स्वजात्याद्यभिमानं विहाय तेषां तत्त्वविदामभ्यर्चनं करणीयं गन्धपुष्पाद्यैरुपचारैर्वस्त्रान्नपानादिभिश्च पदार्थैः स्वशक्त्यनुसारेण प्रत्यहं तेषां सेवा कर्तव्येत्यर्थः । एवं सेवया संप्रेरितचेतसः प्रसादाभिमुखास्ते महात्मानो यथायथाचरणमुपदिशेयुः मार्गं च यं यं दर्शयेयुस्तथा तथा तदनुकरणपरेण भाव्यं तद्वाक्यानुसारेण वर्तितव्यमित्यर्थः । नहि किंचिदपि स्वकल्पनया तद्विरुद्धमाचरणं विधेयमिति ॥ २० ॥

जब इसप्रकारसे परमेश्वरके स्वरूप जाननेकी रुचि होवे तो पश्चात् क्या उपाय करना चहिये सो स्वयं ग्रंथकार दर्शावें हैं.

'तज्जनानुगमनाभ्यर्चनानुकरणानि॥' 'तज्जनानुगमन' कहिये तिस परमेश्वरके यथार्थ स्वरूपके जाननेहारे और सर्व श्रुतिस्मृतियोंके रहस्यके वेत्ता तथा मतमतांतरके पक्षपातसे रहित यथार्थ कथन करणेहारे महात्मा लोक जहां होवें नित्यं प्रति तिनका अनुगमन करना चहिये इनके उपदेशसे मेरेको परमेश्वरके स्वरूपका ज्ञान अवश्य होवेगा ऐसे श्रद्धापूर्वक तिनका समागम करना चहिये और

पुनः महात्मा पुरुषोंके समागम होनेके पश्चात् अभ्यर्चन कहिये अपने अंतःकरणकी शुद्धिके लिये और तिनकी प्रसन्नताके संपादन करणेके लिये अपनी उच्च जातिकुलादिकोंका अभिमान छोडकर तिन तत्त्ववेत्ता पुरुषोंका पूजन करना चहिये अर्थात् गंधपुष्पादिक उपचारोंसे और अन्नवस्त्रादिक पदार्थोंसे अपनी शक्तिके अनुसार तिनकी पूजा और सेवा करणी चहिये पश्चात् सेवासे प्रसन्नचित्त हूये सो महात्मा पुरुष जैसे जैसे आचरणोंका उपदेश करैं और जिसजिस मार्गको वतलावें तैसे तैसेही तिसके अनुकरणमें तत्पर होना चहिये अर्थात् तिनके वचनके अनुसार चलना चहिये किंचित्मात्रभी अपनी कल्पनासे तिनके विरुद्ध आचरण नहि करना चहिये इति ॥ २० ॥

किंच ।

प्रश्नावधारणपरत्वं च ॥ २१ ॥

चकारः पूर्वसूत्रान्वयार्थः। उक्तप्रकारेणाभ्यर्चनादिभिस्तेषां महात्मनां तुष्टिं संपादयित्वा ततो लब्धावकाशस्तदग्रेऽध्यात्मविषयं प्रश्नं कुर्यात् । यत्र यत्र मनसि शंका जायेत तत्तदखिलं परिपृच्छेत् श्रुत्वा च तन्मुखादवधारयेत् सम्यक्तया चेतसा निश्चयं कुर्यादित्यर्थः। तदेवं यतमानस्य श्रद्धालोः समाहितचित्तस्य शमदमादिगुणयुक्तस्य परमेश्व-

रस्वरूपज्ञानं यथावत् भवत्येव तदेतत्सर्वमुपदिष्टं भगवता श्रीकृष्णेनापि । 'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः । ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छती'ति ॥ २१ ॥

किंच ।

'प्रश्नावधारणपरत्वं च' । उक्तप्रकारसे सेवादिकोंसे तिन तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकी प्रसन्नता संपादनकरके जिस वकत अवकाश मिले तो तिनके आगे अध्यात्मविषयक प्रश्न करे अर्थात् जिस जिस विषयमें मनमें शंका उत्पन्न होवे सो सो सर्वही तिनसें पूछ लेना चहिये तथा तिनके मुखारविंदसे समाधान श्रवण करके सम्यक् प्रकारसे तिसका अपने चित्तमे निश्चय करणा चहिये सो इस रीतिसे यत्न करते हूये श्रद्धालु समाहितचित्त और शमदमादि गुणयुक्त पुरुषको अवश्यही परमेश्वरके स्वरूपका ज्ञान यथावत् प्राप्त होवे है तथा यह सर्व वार्ता गीतामें श्रीकृष्णजीनेंभी कथन करी है 'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ॥ ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ।' अर्थ—हे अर्जुन तिस ज्ञानको तूं महात्मा पुरुषोंसे नम्रताभाव करके प्रश्न करके और सेवा करके जान सेवासे प्रसन्न भये सो तत्त्वदर्शी लोक तेरेको ज्ञानका उपदेश करेंगे क्योंकि श्रद्धावान्

तत्पर और जितेन्द्रिय पुरुषकोही ज्ञानकी प्राप्ति होवे है इति ॥२१॥

एवं परमेश्वरस्वरूपावबोधलब्ध्युपायं सत्समागमं निरूपयित्वाधुना तत्र विशेषविमर्शं दर्शयति ।

न लिङ्गमात्रधारिषु तद्बुद्धिरपार्थत्वात् ॥ २२ ॥

शंखचक्रमालातिलकदंडभस्मादिबाह्यलिंगधारिष्वेव न साधुबुद्धिं कुर्यात् नहि लिंगमात्रधारणेन श्रेयोवाप्तिर्भवति तदुक्तं मनुना। 'न लिंगं धर्मकारण'मिति न चायं नियमोस्ति वैष्णवादिसंप्रदायेषु वा विप्राद्युत्तमजातिष्वेव विष्णुभक्ता वा तत्त्वविदो भवंतीति पूर्वजन्मार्जितसंस्कारवशात्तेषां सर्वत्र प्रादुर्भावसंभवात् प्रसिद्धं चैतत् श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणेषु शुकजनकतुलाधारव्याधसुलभाविभीषणहनुमद्भुशुंडादीनां भगवद्भक्तानां जातितारतम्यं तस्माद्यस्मिन् कुले संप्रदाये वा परमेश्वरस्वरूपाभिज्ञा विद्वांसः सदाचारनिष्ठा भवेयुस्तेषामेव पूर्वोक्तमनुगमनादिकं कर्तव्यं नेतरेषां भगवद्भक्तिविहीनानां परमेश्वरस्वरूपानभिज्ञानां केवलं जगद्रंजनायैव धृतबाह्यचिह्नानां पुरुषाणां कुतः अपार्थत्वात् तत्संगस्य निरर्थकत्वादित्यर्थः । नहि तेषां समागमेन कश्चित्परमार्थलाभो जायत इति ॥ २२ ॥

'न लिंगमात्रधारिषु तद्बुद्धिरपार्थत्वात्' शंख चक्र माला तिलक

दंडभस्मादिक बाहिरके लिंग मात्र धारण करणेवालोंमेंही केवल साधुबुद्धि नहि करलेनी चहिये क्योंकि केवल लिंगमात्र धारण करनेसे कल्याणकी प्राप्ति नहि होवे है तथा मनुजीकाभी वचन है 'न लिंगं धर्मकारणम्' अर्थात् केवल बाह्यलिंग धारण करणाही धर्मका कारण नहि होवे है। और यह भी नियम नहि है कि वैष्ण-वादिक संप्रदायमें अथवा ब्राह्मणादिक उत्तम जातिमेंही विष्णु-भक्त और ज्ञानी महात्मा पुरुष होते हैं किंतु पूर्वजन्मार्जित संस्कारोंके वशसें तिनका सर्वत्र प्रादुर्भाव होना संभव है तथा श्रुतिस्मृतिइति-हासोंमें शुकदेव जनक तुलाधार व्याध सुलभा विभीषण हनुमान् काकभुशुंडादिक भगवत्भक्तोंका जातितारतम्यपणा प्रसिद्धही है यातें जिस कुलमें वा जिस संप्रदायमें परमेश्वरके यथार्थ स्वरूपके जाननेहारे विद्वान् और सदाचारनिष्ठ यथार्थवक्ता पुरुष होवें तिन-हीका पूर्वोक्त रीतिसे अनुगमन अभ्यर्चनादि करना योग्य है दूसरे जो भगवत्भक्तिसे रहित परमेश्वरके स्वरूपको नहि जाननेहारे और केवल जगत्के दिखलानेके लिये बाह्यचिह्न धारण करणेवाले पुरुष हैं तिनका नहि करना चहिये क्योंकि अपार्थत्वात् कहिये तिनका संग करना निरर्थक होवे है तिनके समागमसे किसी प्रकारकाभी परमार्थलाभ नहि होयसके है इति ॥ २२ ॥

यथा सत्पुरुषाणां समागमः प्रयत्नेन विधेयस्तथैव तद्विप-रीतानां वर्जनमपि यत्नेन कर्त्तव्यमित्याह ।

तद्भंगिभीतिश्च ॥ २३ ॥

तस्य परमेश्वरस्वरूपाववोधस्य ये भंगिनो विक्षेपकारिणो भगवद्भक्तिविमुखा नास्तिकाः शिश्नोदरपरायणा जनाः स्युस्तेभ्यो भीतिः करणीया एतेषां संगान्मम बुद्धिविभ्रमो भविष्यत्ययं लोकः परलोकश्च भ्रष्टो भविष्यत्येवं निश्चित्य क्षणमपि तेषां संगतिं न कुर्यात् । संगं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् । तस्यानुगस्तमस्यंधे पतत्यंधानुगोंधवदिति भागवते भगवद्वचनात् दृढचित्तत्वान्ममैते किं करिष्यंतीति तेषु विश्रब्धो न भवेत् प्रबलत्वात्कुसंगमाहात्म्यस्य तथाचोक्तं पूर्वाचार्यैः 'निःसंगता मुक्तिपदं यतीनां संगादशेषाः प्रभवंति दोषाः । आरूढयोगोपि निपात्यतेधः संगेन योगी किमुताल्पसिद्धि'रिति ॥ २३ ॥

जैसे सत्पुरुषोंका समागम प्रयत्नसे करना चहिये तैसेही तिसके विपरीत पुरुषोंका वर्जनभी प्रयत्नसे करना चहिये यह वार्ता कथन करे हैं ।

'तद्भंगिभीतिश्च' तिस परमेश्वरके स्वरूपके ज्ञानमें भंग करणेहारे अर्थात् विक्षेप करनेहारे जो परमेश्वरके विमुख नास्तिक और केवल शिश्नोदरपरायण पुरुष होवें तिनसें 'भीतिः' कहिये सर्वदाकाल भय करना चहिये अर्थात् इनके संगसे मेरी बुद्धिका विभ्रम हो जावेगा तथा यह लोक और परलोक दोनों मेरे भ्रष्ट हो जावेंगे ऐसे निश्च

यकरके क्षणभरभी तिनका संग नहि करना चहिये तथा भागवतमें भगवान्‌काभी वचन है 'संगं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित्। तस्यानुगस्तमस्यंधे पतत्यंधानुगोंधवत्।' अर्थ—शिश्नोदरतर्पणपरायण असत् पुरुषोंका मुमुक्षुपुरुषको कदाचित्‌भी संग नहि करना चहिये क्योंकि तिनके पीछे चलनेहाराभी अंधेके पीछे दूसरे अंधेकी न्यांई अज्ञानरूप अंधकूपमें पडजावे है इति। मेरा चित्त बडा दृढ है इनके संगसे मेरी क्या हानी हो सकती है इस प्रकारसे चित्तका विश्वास नहि करना चहिये क्योंकि कुसंगका माहात्म्य बडा प्रबल है तथा पूर्वाचार्योंकाभी वचन है 'निःसंगता मुक्तिपदं यतीनां संगादशेषाः प्रभवंति दोषाः। आरूढयोगोऽपि निपात्यतेधः संगेन योगी किमुताल्पसिद्धिः।' अर्थ—यति पुरुषोंको सर्वसे निःसंग रहनाही मोक्षपदका हेतु है संगसेही सर्व दोष उत्पन्न होते हैं क्योंकि कुसंगसे आरूढ योगीकाभी नीचे पतन हो जावे है तो दूसरें अल्पसिद्धिवालेकी क्या वार्ता कहनी है इति ॥ २३ ॥

एवं प्रसंगतः कुसंगनिषेधमुक्त्वाधुना परमेश्वरस्वरूपावबोधानंतरं कृत्यविशेषं दर्शयति।

परस्परं परिकलनम् ॥ २४ ॥

पूर्वोक्तसत्पुरुषानुगमनादिभिरवगततत्त्वविज्ञानस्तत्परिपुष्ट्यर्थं तत्त्वविद्भिः साकं परस्परं परिकलनं पुनः पुनर्विवेचनं कुर्यात् गुरूणां मुखाद्यद्यदवकर्णितं भवेत् तदन्यत-

त्त्वविद्भिः सार्धं मुहुर्मुहुः प्रश्नानुवचनादिभिर्विचारयित्वा यथावन्मननं कुर्यादित्यर्थः ॥ २४ ॥

इस प्रकार प्रसंगसे कुसंगका निषेध कथन करके अब परमेश्वरके स्वरूपके जाननेके अनंतर कर्तव्य विशेष दर्शावे हैं।

'परस्परं परिकलनम्' पूर्वोक्त तत्त्ववेत्ता पुरुषोंके अनुगमनादिकोंसे जब तत्त्वज्ञानकी यथार्थ प्राप्ति हो जावे तो पश्चात् तिस ज्ञानकी पुष्टिके लिये तत्त्ववेत्ता ज्ञानी पुरुषोंके साथ परस्पर परिकलनं कहिये पुनः पुनः विवेचन करना चहिये अर्थात् गुरु तथा आचार्योंके मुखसे जो जो ज्ञान श्रवण किया होवे सो दूसरे तत्त्ववेत्ता विचारशील पुरुषोंके साथ वारंवार प्रश्नोत्तरद्वारा विवेचन करके यथावत् अपने हृदयमें मनन करना चहिये इति ॥ २४ ॥

इत्थं परस्परं विचारमुक्त्वाधुना दृढनिश्चयार्थं कृत्यांतरमाह।

महन्निवेदनं च ॥ २५ ॥

चकारः पूर्वसूत्रान्वयार्थः सम्यग् विचारानंतरं स्वहृदयगतं ज्ञानं समीचीनमसमीचीनं वा पूर्णमपूर्णं वेति परीक्षार्थं महन्निवेदनं कुर्यात् सर्वं मयाखिलं विदितं किमर्थमधुना जिज्ञासां कुर्यामित्यभिमातिं विहाय स्वसकाशाद्ये ज्ञानवृद्धाः सदाचारनिष्ठाः श्रुतिस्मृतिरहस्याभिज्ञाः पक्षपातवर्जिता महात्मानो भवेयुस्तेषामग्रे सर्वं स्वबुद्धिगतं

परमेश्वरस्वरूपविज्ञानं निवेदयेदित्यर्थः । नहि केवलेन स्वबुद्धितर्केण ज्ञानं सम्यगुपजायते 'नैषा तर्केण मतिराप- नेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ' इति श्रुतेरिति ॥२५॥

परस्पर विचारके अनंतर दृढ निश्चयके लिये पुनः दूसरा कर्त्तव्य कथन करे हैं।

'महन्निवेदनं च' सम्यक् प्रकारसें विवेचन करणेके पश्चात् अपने हृदयगत जो ज्ञान है सो ठीक है किंवा ठीक नहि है पूर्ण है किंवा अपूर्ण हैं इस वार्ताकी परीक्षाके लिये महान् पुरुषोंके आगे निवेदन करना चहिये अर्थात् मैंने सर्व संपूर्ण जानलिया है अब मैं क्यों किसीके पास जायकर जिज्ञासा करूं इस अभिमानको छोडकरके अपने सकाशसें जो ज्ञानमें बडे सदाचारनिष्ठ और सर्व श्रुतिस्मृति- योंके रहस्यके जाननेहारे पक्षपातसें रहित महात्मापुरुष होवें तिनके आगे सर्वही अपनी बुद्धिगत परमेश्वरस्वरूपके ज्ञानको निवेदन करना चहिये और जब सो तिसको यथार्थ कथन करें तो पश्चात् तिसका दृढ निश्चय करना चहिये केवल अपने चित्तमेंही संतोष मानकरके नहि बैठ जाना चहिये तथा यजुर्वेदीयकठउपनिषत्‌मेंभी लिखा है 'नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।' अर्थ—यमराजा कहते हैं हे प्रियतम नचिकेता यह ब्रह्मविद्यारूप मित केवल अपनी बुद्धिकी तर्कसे प्राप्त नहि होसके है किंतु दूसरे

तत्त्ववेत्ता पुरुषके उपदेशसेंही सो विद्याज्ञानकी प्राप्तिका हेतु होवे है इति ॥ २५ ॥

किमर्थमेतदनुष्ठेयं तत्राह ।

नापूर्णे तुष्टिरभीष्टालाभात् ॥ २६ ॥

अपूर्णे तत्त्वविज्ञाने तुष्टिं न कुर्यात् कुतः अभीष्टालाभात् स्वाभीष्टस्य मोक्षपदस्याप्राप्तेरित्यर्थः । नह्यपूर्णं ज्ञानं मोक्षायालं भवति । तस्मात् शास्त्राचार्यानुभवैः सम्यक्तया संपूर्णमसंदिग्धं तत्त्वविज्ञानं संपादयेत् येन संसारबंधनाद्विमुक्तो भवेत् तदेतत्पूर्णं तत्त्वविज्ञानं परमेश्वराराधनेनैव जायते न तु केवलेन शास्त्रश्रवणादिना बाह्योपायेन । तथाचोक्तं भगवद्गीतायां । 'भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः । ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतर' मिति ॥ २६ ॥

महत्पुरुषोंके आगे ज्ञानको किसलिये निवेदन करना चहिये तिसका कारण कथन करते हैं ।

'नापूर्णे तुष्टिरभीष्टालाभात्' जबपर्यंत ज्ञान पूर्ण नहि हो जावे तबपर्यंत तुष्टि नहि मान लेनी चहिये क्योंकि अभीष्टालाभात् कहिये वीचसें अपूर्ण दशामेंही चित्तमें तुष्टि मानलेनेसें अपना अभीष्ट जो मोक्षपद है तिसकी प्राप्ति नहि होवे है क्योंकि अपूर्णज्ञान मोक्षके लिये समर्थ नहि होवे है यातें शास्त्र आचार्य और अपने अनुभवसें

सम्यक् प्रकारसे संपूर्ण संशयविपर्ययसे रहित तत्वज्ञान संपादन करना चहिये जिससें संसारबंधनसें मुक्ति हो जावे सो यह पूर्ण तत्त्वज्ञान परमेश्वरके आराधनसेंही प्राप्त होवे है केवल शास्त्रश्रवणादिक बाह्यसाधनोंसे नहि होवे है तथा भगवद्गीतामें श्रीकृष्णजीकाभी वचन है 'भक्त्यामामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः । ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरम् । अर्थ– हे अर्जुन मैं जो वस्तु हुं और जितना मेरा यथार्थ स्वरूप है सो भक्तिसेंही यह पुरुष जान सके है और मेरेको यथार्थ जानकर पश्चात् सो मेरे स्वरूपमें प्रवेश करे है इति ॥ २६ ॥

तदनेन पूर्णेपि ज्ञाने पूर्ण न वेति संशयापत्तेरनवस्थैव स्यादिति शंकायामुत्तरमाह ।

काष्ठाश्रवणान्नानवस्थाप्रसंगः ॥ २७ ॥

'आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीतिपूरुषः । किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥ यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः । तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यत' इत्यादिवेदवाक्येषु 'य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह । सर्वथा वर्तमानोपि न स भूयोभिजायत' इत्यादिस्मृतिवचनेषु च ज्ञानस्यावधिः श्रूयते तथाच वेदाहमेतं पुरुषं महांतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । विदाम देवं भुवनेशमीड्य' मित्यादिश्रुतिवचनानि विदुषाम-

परोक्षानुभवं दर्शयंति तस्मात्परमेश्वरस्वरूपविज्ञानेनास्त्यनवस्थाप्रसंग इति ॥ २७ ॥

इस उक्तकथनसें तो ज्ञानके पूर्ण हो जानेपरभी अबी पूर्ण हुया कि नहि ऐसे संशयके होनेतें अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवेगी ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'काष्ठाश्रवणान्नानवस्थाप्रसंगः' 'आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः । किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् । यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः । तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।' अर्थ—जिसकालमें यह पुरुष अपने आत्माको यह वस्तु मेरा स्वरूप है ऐसे अपरोक्ष जानलेवे है तो पश्चात् सो किसके लिये किस वस्तुकी इच्छा करता हूया अपने शरीरको परिश्रम देवे है अर्थात् नहि देवे है। तथा जिस कालमें ज्ञानी पुरुषको सर्वभूतप्राणी अपना आत्मारूपही होजाते हैं तो पश्चात् तिस एकत्व देखनेहारे पुरुषके मनमें क्या मोह और क्या शोक होसके है अर्थात् नहि होसके है इति इत्यादि वेदके वचनोंमें तथा 'य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह । सर्वथा वर्तमानोपि न स भूयोभिजायते ।' अर्थ—जो ज्ञानी पुरुष इस प्रकारसे आत्माको असंग जानता है और प्रकृतिको गुणोंके सहित जानता है सो सर्वप्रकारसे वर्तता हूयाभी पुनर्जन्मको नहि प्राप्त होवे है अर्थात् मुक्त हो जावे है इति। इत्यादि स्मृतिवचनोंमें तत्त्वज्ञानकी अवधि

सुननेमें आवे है तथा 'वेदाहमेतं पुरुषं महांतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।' अर्थ—आदित्य जैसे प्रकाशवान् और अज्ञानरूपसे परे जो महान् परमात्मा पुरुष है तिसको मै जानता हूं तथा सर्वभुवनोंके ईश्वर पूजनीय देवको हम ऋषिलोक जानते हैं इति इत्यादि श्रुतियोंके वचन ज्ञानी पुरुषोंका अपरोक्षानुभव दिखलाते हैं यातें परमेश्वरके स्वरूपके ज्ञानके पूर्ण हूये पश्चात् संशय ओर अनवस्थादोषका प्रसंग नहि संभवे है इति ॥ २७ ॥

तदेवं पूर्णे ज्ञाने जाते सति तदनंतरं किमपि कर्तव्यमस्ति न वेति जिज्ञासायामाह।

शश्वदावर्त्तनं वासनाप्राबल्यात् ॥ २८ ॥

सत्संगसच्छास्त्राभ्यामुपलब्धस्य तत्त्वविज्ञानस्यैकांते स्थित्वा शश्वदावर्त्तनं मुहुर्मुहुर्मननं कर्तव्यं कुतः वासनाप्राबल्यात् जन्मजन्मांतराभ्यस्तत्वात् प्रबला हि देहगेहादिष्वहंममतादिरूपा संसारवासना नहि केवलेन ज्ञानश्रवणमात्रेणासा क्षयमुपगच्छत्यतस्तदुपशांत्यर्थमवश्यं चित्तवृत्तिनिरोधात्मकोभ्यासस्तत्त्वविद्भिरादरणीयः तथा चोक्तं सांख्यदर्शने 'न श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिरनादिवासनाया बलवत्त्वादिति' ब्रह्ममीमांसायामपि 'आवृत्तिरसकृदुपदेशा'दिति २८

इस प्रकारसें पूर्ण ज्ञानके उत्पन्न हो जानेके अनंतर पुनः तिस ज्ञानी पुरुषको कुछ कर्तव्य होवे है कि नहि ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं.

'शश्वदावर्तनं वासनाप्रावल्यात्' पूर्वोक्तरीतिसें सत्संग और सत्शास्त्रोंके श्रवणसें प्राप्त भया जो तत्त्वविज्ञान है तिसका एकांतस्थानमें बैठ करके निरंतर आवर्तन करना चहिये अर्थात् वारंवार तिसका मनन करना चहिये क्योंकि वासनाप्रावल्यात् कहिये जन्मजन्मांतरोंमें अभ्यास करी हुई देहगेहादिकोंमें अहंताममतादिरूप जो संसारकी वासना है सो वडी प्रवल है सो केवल ज्ञानके श्रवणमात्रसे नाशको नहि प्राप्त होसके है यातें तिसकी शांतिके लिये ज्ञानी पुरुषोंको अवश्य चित्तवृत्तिनिरोधरूप अभ्यास आदरपूर्वक करना चहिये तथा सांख्यदर्शनमेंभी लिखा है 'न श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिरनादिवासनाया वलवत्त्वात् ।' अर्थ—केवल शास्त्रोंके श्रवणमात्रसे मोक्षकी सिद्धि नहि होवे है क्योंकि संसारकी अनादिवासना वडी प्रवल है इति । तथा ब्रह्ममीमांसामेंभी लिखा है 'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्' अर्थ—ज्ञानका उपदेश श्रवण करके पश्चात् तिसकी पुनः पुनः आवृत्ति करनी चहिये क्योंकि सामवेदकी छांदोग्यउपनिषत्में श्वेतकेतुके प्रति उद्दालकमुनिने आत्मतत्त्वका पुनः पुनः उपदेश किया है इति ॥ २८ ॥

किंच ॥

दृढत्वापेक्षणाच्च ॥ २९ ॥

दृढत्वापेक्षणादपि तत्त्वज्ञानस्यावर्तनं विधेयं कैवल्यमोक्षपर्यवसायिनो ज्ञानस्य दृढत्वमपेक्ष्यते नहि शिथिलेनात्मज्ञानेन मोक्षप्राप्तिर्जायते तथाचोक्तं योगशास्त्रे 'विवेकख्यातिरविप्लवाहानोपाय' इति वेदांतश्रवणादिना जातमपि तत्त्वविज्ञानं सांसारिकवासनया प्रतिबद्धं सन्न कर्मबंधनोन्मूलने समर्थं भवति तथाच पराशरमुनेर्वचनं 'मणिमंत्रौषधैर्वह्निः प्रदीप्तोपि यथेंधनं । प्रदग्धुं नैव शक्तः स्यात्प्रतिबद्धस्तथैव हि । ज्ञानाग्निरपि संजातः सुदीप्तः सुदृढोपि च । प्रदग्धुं नैव शक्तः स्यात्प्रतिबद्धस्तु कल्मष' मिति ॥ २९ ॥

किंच ।

'दृढत्वापेक्षणाच्च' दृढत्वकी अपेक्षा होनेतेंभी तत्त्वज्ञानका वारंवार आवर्तन करना चहिये क्योंकि कैवल्यमोक्षके देनेहारे ज्ञानके दृढ होनेकी आवश्यकता है शिथिल आत्मज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति नहि होवे है तथा योगशास्त्रमेंभी लिखा है, 'विवेकख्यातिरविप्लवाहानोपायः । अर्थ—जन्ममरणरूप संसारबंधनकी निवृत्तिका दृढ ज्ञानही उपाय है इति । वेदान्तशास्त्रके श्रवणादिकोंसे उत्पन्न भयाभी ज्ञान संसारिक वासनाकरके प्रतिबद्ध भया कर्मरूप बंधनोंके छेदन करनेमें समर्थ नहि होवे है तथा पराशरमुनिनेभी कहा है 'मणि-

मंत्रौषधैर्वह्निः प्रदीप्तोपि यथेंधनं । प्रदग्धुं नैव शक्तः स्यात् प्रतिबद्ध-स्तथैवहि ॥ ज्ञानाग्निरपि संजातः सुदीप्तः सुदृढोपि च ॥ प्रदग्धुं नैव शक्तः स्यात् प्रतिबद्धस्तु कल्मषम् ।' अर्थ—जैसे प्रदीप्त भयाभी अग्नि मणिमंत्र और औषधिसे प्रतिबद्ध हूया लकडियोंके जलानेमें समर्थ नहि होवे है तैसेही ज्ञानरूप अग्नि प्रकट भयाभी सांसारिक वास-नाकरके प्रतिबद्ध भया पापकर्मोंके दहन करनेमें समर्थ नहि होवे है इति ॥ २९ ॥

तदेतद्दृढं ज्ञानं सर्वेषां कुतो न जायते दृश्यंते हि सत्समा-गमादि कुर्वतोपि बहवो ज्ञाननिष्ठा वर्जितास्तत्राह ।

सुकृतवैशेष्यादत्रैव ॥ ३० ॥

तत्त्वज्ञानश्रवणकालात्पूर्वं वर्तमानशरीरे पूर्वजन्मसु वा येषां जनानां विशेषतया पुण्यसंचयो भवति तेषामंतःकर-णस्य शुद्धत्वादत्रैवास्मिन्नेव कलेवरे सत्समागमसच्छास्त्रश्र-वणाद्युपायेन ज्ञानलाभो जायते तथाचोक्तं भगवता श्रीकृ-ष्णेन 'येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणां । ते द्वंद्व-मोहनिर्मुक्ता भजंते मां दृढव्रता' इति भारतेपि 'ज्ञानमु-त्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मण' इति अतः परमेश्वरस्व-रूपविज्ञानेप्सुना प्रथमतः सर्वथा पापकर्मप्रवृत्तिं विहाय सततं सुकृतसंचयपरेण भाव्यमिति ॥ ३० ॥

यह दृढज्ञान सर्वलोकोंको क्यों नहि प्राप्त होवे है क्योंकि बहु-तसे लोक सत्समागमादि करते हूयेभी प्रायः ज्ञाननिष्ठासे रहित देखनेमें आते हैं ऐसी जिज्ञासा होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'सुकृतवैशेष्यादत्रैव' तत्त्वज्ञानके उपदेशके श्रवणकालसें पूर्व-वर्तमान शरीरमें अथवा पूर्वजन्मोंमें जिन पुरुषोंके विशेष करके पुण्यसंचय किये हूये होवे हैं तो तिनके अंतःकरणके शुद्ध होनेतें तिनको सत्संग सत्शास्त्रश्रवणादिक उपायकरके अत्रैव कहिये इसी शरीरमें ज्ञानकी प्राप्ति हो जावे है तथा गीतामें श्रीकृष्णजीनेभी कहा है 'येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणां । ते द्वंद्वमोहनिर्मु-क्ता भजंते मां दृढव्रताः।' अर्थ–हे अर्जुन जिन पुण्यकर्मी पुरुषोंके पाप नष्ट हो गये हैं सो दृढव्रतवाले रागद्वेषादिक द्वंद्वमोहसे रहित भये मेरा आराधन करते हैं इति । तथा महाभारतके मोक्षधर्ममेंभी लिखा है 'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः।' अर्थ–जिस कालमें पुरुषके सर्वपाप क्षय हो जाते हैं तो पश्चात् ज्ञानकी उत्पत्ति होवे है इति । यातें परमेश्वरके स्वरूपके ज्ञानकी इच्छावाले पुरु-षको प्रथमसे सर्वथा पापकर्मोंकी प्रवृत्ति छोडकरके निरंतर पुण्य-संचय करनेमेंही तत्पर होना चहिये इति ॥ ३० ॥

एवं चेत्तर्हि येषां विशेषपुण्यसंचयो नास्ति तेषां सच्छास्त्र-श्रवणादिपरिश्रमो निरर्थक एव स्यात् तत्राह ।

पुनर्भवेष्वितरेषाम् ॥ ३१ ॥

इतरेषां विशेषसुकृतसंचयाभाववतां पुनर्भवेषु जन्मांतरेषु पूर्णं ज्ञानं जायते 'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परांगति'मिति भगवद्वचनात् यदत्र शास्त्रश्रवणाद्यनुष्ठितं तज्जन्मांतरे शीघ्रज्ञानोत्पत्तावुपयोगित्वान्न निरर्थकं भवति नहि किंचित्कालं पथि शयनेन पांथस्य पूर्वगमनं निरर्थकं भवति। तथाचोक्तं भगवद्गीतायां 'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकं। यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदने' त्यादिवाक्यैरिति ॥ ३१ ॥

जब ऐसी वार्ता हैं तो जिन पुरुषोंके विशेष पुण्यसंचय नहि है तिनका सत्शास्त्रश्रवणादिक निरर्थक होवेगा तहां कहे हैं.

'पुनर्भवेष्वितरेषाम्' इतर जो विशेष पुण्यसंचयसे रहित जिज्ञासु पुरुष हैं तिनको पुनर्भवेषु कहिये जन्मांतरोंमें पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति होवे है तथा भगवद्गीतामेंभी कहा है 'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ।' अर्थ—हे अर्जुन अनेक जन्मोंमें पूर्णज्ञानरूप सिद्धिको प्राप्त भया पुरुष पश्चात् मोक्षपदको प्राप्त होवे है इति। और जो इस जन्ममें शास्त्रश्रवणादिक साधनोंका अनुष्ठान किया होवे है सो जन्मांतरमें शीघ्र ज्ञानकी प्राप्तिमें उपयोगी होनेतें निरर्थक नहि होवे है क्योंकि जैसे किंचित्काल मार्गमें शयन करणेसें पथिक पुरुषका पूर्व किया हूया गमन निरर्थक नहि हो जावे है तथा यह

वार्ताभी भगवद्गीतामेंही निरूपण करी है 'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकं। यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन।' अर्थ हे कुरुनंदन योगसें भ्रष्ट हूया पुरुष जब दूसरे जन्मको धारण करे है तो तहांभी सो पूर्व देहकी बुद्धिके संयोगको प्राप्त होवे है और पुनः योगाभ्यासद्वारा तत्त्वज्ञानकी सिद्धिके लिये यत्न करे है इति॥ ३१॥

मृत्युमूर्च्छानंतरं पूर्वस्मृतिलोपात् तत्कथमत्र कृतस्य श्रवणादेर्जन्मांतरे कार्यकरत्वं स्यात् तत्राह।

संस्कारावस्थितेर्न लोपः ॥ ३२ ॥

अत्र कृतस्य श्रवणादेर्जन्मांतरे लोपो न भवति कुतः संस्कारावस्थितेः पूर्वसंस्काराणां विद्यमानत्वादित्यर्थः। शुभमशुभं वा यद्यत्कर्मानेन जीवेन बुद्धिपूर्वकं क्रियते तेन तेन कर्मणा स्वसमानः संस्कारश्चेतसि भित्ताविव चित्रमाधीयते ततो वर्तमानशरीरनाशे चित्तस्याविनाशात् जन्मांतरे चित्तगतानां संस्काराणां कार्यकरत्वं भवत्येवेति ॥३२॥

मृत्युकालकी मूर्छाके अनंतर पूर्वस्मृतिका लोप हो जावे है तो पुनः किस प्रकारसे यहां किये हुये श्रवणादिकोंको जन्मांतरमें कार्यकरणपणा संभवे है ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'संस्कारावस्थितेर्न लोपः' यहां किये हूये श्रवणादिकोंका जन्मांतरमें लोप नहि होवे है 'क्योंकि संस्कारावस्थितेः' कहिये पूर्वजन्मके

कर्मोंके संस्कार आगामि जन्ममें रहजाते हैं अर्थात् शुभ किंवा अशुभ जो जो कर्म यह जीव बुद्धिपूर्वक करता है तिस तिस कर्मके समान संस्कार चित्तमें जम जाते हैं जैसे भित्तिमें चित्र जमे होते हैं इसलिये वर्तमान शरीरके नाश होनेपरभी चित्तके नाश नहि होनेतें जन्मांतरमें चित्तमें रहे हूये संस्कारोंको कार्यकरणपणा संभवे है इति ॥ ३२ ॥

ननु संस्कारसद्भावे भवेत्सर्वेषां पूर्वजन्मकृतकर्मणां स्मरणं पूर्वाधीतशास्त्रस्यापि च स्वभावत एव स्फुरणं जायेत न चैवं दृश्यते तत्कथमेतदुपपद्यते तत्राह ।

अभिव्यंजकाधीनत्वान्न स्वभावात् ॥ ३३ ॥

मनसि निलीनानां संस्काराणां स्वत एवोत्थानं न भवति कुतः अभिव्यंजकाधीनत्वात् यदा हि येषां संस्काराणामभिव्यंजकं द्रव्यं सन्निधिमुपगच्छति तदैव तेषामेव संस्काराणामुद्गमो भवति नेतरेषां त एव च तदा स्वसमानकार्ये सहयोगित्वमुपगच्छंति यथा निशायां गृहे विद्यमानान्यपि द्रव्याणि दीपाद्यभिव्यंजकमंतरा नावलोक्यंते तद्वदत्रापि द्रष्टव्यं व्यंजकं चात्र द्विविधं साधारणमसाधारणं च तत्र पूर्वजन्मनि दृष्टश्रुतपदार्थानां संयोगः प्रथमं तच्च विशेषस्मृतिजनकं न भवति किंतु सामान्येन क्रियमाणे कर्मणि सहयोगि भवति यथा पूर्वाधीतविद्यस्यात्रा-

त्पायासेनैव शास्त्राधिगमः पूर्वार्जितसुकृतस्य चात्र धर्मे-
भिरुचिर्भोगप्राप्तिर्वेत्येवं विज्ञेयं असाधारणं तु योगाभ्या-
सादिरूपं तद्धि विशेषस्मृतिजनकं भवति प्रसिद्धं च श्रुति-
स्मृतीतिहासादिषु योगिनां तपस्विनां च पूर्वजन्मादि-
स्मरणं तथा चोक्तं योगशास्त्रे 'संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्व-
जातिज्ञान'मिति ॥ २३ ॥

जो पूर्वके संस्कार बने रहते हैं तो पूर्वजन्ममें किये हूये कर्मोंका सर्वको स्मरण स्वभावसेही होना चहिये और पूर्वजन्ममें अध्ययन किये शास्त्रका यहां विना पठन कियेही स्फुरण हो जाना चहिये और ऐसे देखनेमें नहि आवे है तो संस्कारोंका रहना कैसे संभव हो सकता है ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'अभिव्यंजकाधीनत्वान्न स्वभावात्' मनमें लीन भये संस्कारोंका जन्मांतरमें स्वतः उत्थान नहि होवे है क्योंकि 'अभिव्यंजकाधीन-त्वात्' कहिये पूर्वले संस्कारोंका उत्थान होना अभिव्यंजकके अधीन होवे है सो जिस कालमें जिन संस्कारोंका अभिव्यंजकद्रव्य समीप-वर्ती होवे है तिसकालमें तिनही संस्कारोंका उत्थान होवे है दूसरोंका नहि और तिसकालमें सोई संस्कार अपने समान कार्यमें सह योगी होते हैं जैसे रात्रीमें घरमें विद्यमान पदार्थभी विना किसी दीपका-दिक अभिव्यंजकके देखनेमें नहि आते हैं तैसेही पूर्वले संस्कारोंके उत्थानमेंभी बाह्यव्यंजक पदार्थकी आवश्यकता होवे है सो अभि-

व्यंजक दो प्रकारका होवे है एक तो साधारण और दूसरा असाधारण तिनमें पूर्वजन्ममें देखे किंवा श्रवण किये हूये पदार्थका जो वर्तमान शरीरमें चक्षुरादिक इन्द्रियोंसे संबंध होना है सो साधारण कहिये है सो विशेष स्मृतिका जनक नहि होवे है किंतु साधारणरीतिसे क्रियमाण कार्यमें सह योगी होवे है जैसे कि पूर्वजन्ममें विद्याका अध्ययन किये हूये पुरुषको यहां अल्पपरिश्रमसेही शास्त्रका ज्ञान हो जाना तथा पूर्वजन्ममें पुण्यसंचय किये हूये पुरुषकी यहां धर्ममें रुचि होनी अथवा भोगोंकी प्राप्ति होनी और जो योगाभ्यास वा तप आदिक उग्र कर्मरूप अभिव्यंजक होवे है सो असाधारण कहिये है क्योंकि सो विशेष स्मृतिका जनक होवे है। योगी और तपस्वी पुरुषोंको पूर्वजन्मादिकोंका स्मरण हो जावे है यह वार्ता श्रुतिस्मृतिइतिहासादिकोंमें प्रसिद्धही है तथा योगशास्त्रमें पतंजलिनेभी कहा है 'संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम्।' अर्थ–जिसकालमें योगी पुरुष समाधिद्वारा अपने संस्कारोंको साक्षात् करे है तो तिसकालमें तिसको संपूर्ण पीछले जन्मोंका स्मरण हो जावे है इति ॥ ३३ ॥

तद्योगश्चादृष्टवशात् ॥ ३४ ॥

तस्याभिव्यंजकस्य संबंधस्तु पूर्वकृतसुकृतदुष्कृतवशादेवभवति तत्र पुण्यात्मनां शुद्धांतःकरणानां तत्संगसच्छास्त्रादीनां तत्त्वज्ञानस्याभिव्यंजकानां संयोगो जायते पापा-

त्मनां मलिनमतीनां च कुसंगकुशास्त्रादीनामज्ञानाभिव्यं-
जकानां संबंधो भवतीति ॥ ३४ ॥

शुभाशुभ अभिव्यंजकके संयोगमें क्या हेतु है सो दिखलाते हैं.

'तद्योगश्चादृष्टवशात्' तिस शुभाशुभ व्यंजकका जो संयोग होना है सो जीवके पुण्य और पापोंके कारणसे होवे है तहां पुण्यात्मा शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषोंको सत्संग सत्शास्त्रादिक तत्त्वज्ञानके अभिव्यंजकोंका संयोग होवे है और पापात्मा मलिनचित्तवाले पुरुषोंको कुसंग कुशास्त्रादिक अज्ञानके अभिव्यंजक पदार्थोंका संयोग होवे है इति ॥ ३४ ॥

यद्यदृष्टवशादभिव्यंजकयोगो भवति तस्याधीनं च संस्कारोत्थानं ततश्च जीवस्य प्रवृत्तिरित्येवमदृष्टप्रेर्यत्वाज्जीवस्य प्राप्तमेव पारतंत्र्यमित्याशंक्य जीवं प्रति कस्य प्रेरकत्वमस्तीति निर्णयार्थं कानिचिन्मुनिमतान्युपदर्शयति । तत्र ।

कर्मवासनेति जैमिनिः ॥ ३५ ॥

'पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेने' त्यादिश्रुतिप्रामाण्यात् पूर्वार्जितकर्मवासनाया एव प्रेरकत्वमस्तीति जैमिनिराचार्यो मन्यतेस्म आप्तकामस्यासंगस्येश्वरस्य प्रेरकत्वं न संभवत्यतः पूर्ववासनैव शुभे वाशुभे कर्मणि जीवं

प्रतिप्रेरयति। तथा च तस्य सूत्रं 'भावार्थाः कर्मशब्दास्ते-भ्यः क्रिया प्रतीयेतैष ह्यर्थोऽभिधीयत' इति ॥ ३५ ॥

उक्तरीतिसे जो अदृष्टोंके वशसेही अभिव्यंजकका संयोग होवे है और तिससें संस्कारोंका उत्थान होवे है और तिसके अनंतर जीवकी प्रवृत्ति होवे है इसप्रकार अदृष्टोंकरके प्रेर्यमाण होनेतें जीवको सर्वथा परतंत्रपणाही प्राप्त होवेगा ऐसी शंका होनेतें जीवकेप्रति किसका प्रेरकपणा है इस वार्ताके निर्णय करणेके लिये संक्षेपसे केचित् मुनियोंके मतोंको दिखलावे हैं तहां प्रथम जैमि-निका मत कथन करे हैं.

'कर्मवासनेति जैमिनिः' 'पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन।' अर्थ—यह पुरुष पुण्यकर्मोंकरके उच्च जातिको प्राप्त होवे है और पापकर्मोंकरके नीच योनिको प्राप्त होवे है इति इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाण होनेतें पूर्वजन्मोंमें संचित करी हुई कर्मवासना-कोही प्रेरकपणा संभवे है ऐसा जैमिनिआचार्य मानता भया है क्योंकि पूर्णकाम और असंग होनेतें ईश्वरको प्रेरकपणा संभवता नहि है यातें पूर्वकी वासनाही जीवको शुभ अथवा अशुभ कर्मोंमें प्रेरणा करती है तथा पूर्वमीमांसामें जैमिनिने लिखा है 'भावार्थाः कर्मशब्दास्तेभ्यः क्रियाप्रतीयेतैष ह्यर्थोऽभिधीयते।' अर्थ—यावत्मा-त्रवेदमें क्रियाशब्द हैं सो सर्वही पुरुषकी भावनाकेलिये हैं अर्थात् जिस पुरुषके मनमें स्वर्गादि लोकोंकी वासना होवे है तिसकोही

ज्योतिष्टोमादि यज्ञोंमें क्रियाशब्द प्रेरणा करते हैं और तिनसें आगे क्रियाका आरंभ होवे है और इसीलिये वेदमें यज्ञादि कर्मोंका विधान कथन किया है इति ॥ ३५ ॥

ईश्वर इति पतंजलिः ॥ ३६ ॥

'एष ह्येव साधु कर्म कारयती'त्यादिवेदवचनात् ईश्वर एव शुभे वाशुभे कर्मणि जीवं प्रेरयतीति पतंजलिराचार्यो मन्यतेस्म वासनायाश्चेतनत्वाभावात् प्रेरकत्वं न संगच्छते सर्वज्ञत्वादीश्वरस्यैव प्रेरकत्वं समंजसं। तथा च तस्य सूत्रं 'समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्' इति' ॥ ३६ ॥

इसप्रकार जैमिनिका मत दिखलायकर अव पतंजलि मुनिका कथन करे हैं.

'ईश्वर इति पतंजलिः' 'एष ह्येव साधु कर्म कारयति'। अर्थात् यह ईश्वरही जीवोंसे शुभ और अशुभ कर्म करावता है इत्यादि वेदके वचनोंसें ईश्वरही शुभाशुभ कर्मोंमें जीवको प्रेरणा करता है ऐसे पतंजलि आचार्य मानता भया है क्योंकि केवल वासनाको अचेतन होनेतें प्रेरकपणा संभवता नहि सर्वज्ञ होनेतें ईश्वरकोही प्रेरकपणा संभवे है। तथा योगशास्त्रमें पतंजलिका वचन भी है 'समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।' अर्थ—ईश्वरके आराधन करनेसें तिसकी प्रसन्नता होनेसेही समाधिकी सिद्धि होवे है इति ॥३६॥

उभयमिति द्वैपायनः ॥ ३७ ॥

द्वैपायनाचार्यस्तु 'कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवास' इत्यादि श्रुतेः । उभयमेव प्रेरकं मन्यतेस्म कर्मवासनामीश्वरं च केवलवासनाया जडत्वात् प्रेरकत्वाभावः केवलेश्वरस्यापि प्रेरकत्वे विषमतादिदोषप्रसंगः ततस्तयोर्द्वयोरेव प्रेरकत्वं युक्तं । तथा च तस्य सूत्रं 'वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयती'ति ॥ ३७ ॥

पतंजलिके अनंतर अव व्यासजीका मत निरूपण करे हैं.

'उभयमिति द्वैपायनः' 'कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः ।' अर्थात् ईश्वरही सर्व कर्मोंका अधिपति और सर्वभूतप्राणियोंका आश्रयरूप है इति इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे द्वैपायनाचार्य तो कर्मवासना और ईश्वर दोनोंकोही प्रेरक मानता भया है क्योंकि स्वतः जड होनेतें केवल कर्मवासनाको प्रेरकपणा संभवे नहि तथा केवल ईश्वरकोभी माननेसें तिसमें विषमतादिक दोषोंकी प्राप्ति होवें है यातें तिन दोनोंकाही प्रेरकपणा युक्त है । तथा ब्रह्ममीमांसामें व्यासजीनेभी लिखा है 'वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति ।' अर्थ—जीवोंको नीच ऊंच फल देनेसें ईश्वरमें विषमता और निर्दयतादिक दोषोंकी प्राप्ति नहि होवे है क्योंकि वेदमें लिखा है कि ईश्वर जीवके कर्मोंके अनुसारही नीच ऊंच फल देवे है इति ॥३७॥

काम इति वासुदेवः ॥ ३८ ॥

'काममय एवायं पुरुषः स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुतेः' इत्यादि वेदवाक्यात् कामस्यैव शुभे वाशुभे कर्मणि प्रेरकत्वमस्तीति भगवान् वासुदेवो मन्यतेस्म विषयदोषदर्शनादिपुरःसरं योगाभ्यासाद्युपायेन कामनिग्रहे सति प्रवृत्तिसंकोचदर्शनात् कामस्यैव प्रेरकत्वं युक्तं तथाहि तस्य वचनं । 'काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः । महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिण'मिति ॥ ३८ ॥

इसप्रकार व्यासजीका मत दिखलाय करके अब श्रीकृष्ण भगवान्का वर्णन करे हैं.

'काम इति वासुदेवः' 'काममय एवायं पुरुषः स यथाकामो भवति तत् क्रतुर्भवति यत् क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते ।' अर्थ—यह पुरुष केवल कामकाही स्वरूप है सो जिस प्रकारकी कामनावाला होवे है तैसाही संकल्प करे है और जैसा संकल्प करे है तैसाही कर्म करे है इति । इत्यादि वेदके वाक्योंसे कामकाही शुभाशुभ कर्मोंमें प्रेरकपणा है ऐसा भगवान् वासुदेवने माना है क्योंकि विषयोंमें दोषदृष्टिपूर्वक योगाभ्यासादिक उपायसे कामके निग्रह होनेतें बाह्यप्रवृत्तिका संकोच देखनेमें आवे है यातें कामकाही प्रेरकपणा युक्त है । तथा गीतामें श्रीकृष्णने कहा भी हैं 'काम

एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः । महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।' अर्थ—हे अर्जुन, यह कामही पुरुषको दुष्ट कर्मोंमें प्रेरणा करता है और सोई क्रोधरूप हो जावे है तथा रजोगुणसें इसकी उत्पत्ति होवे है सो यह विषयोंके भोगनेसे कदाचित् तृप्त नहि होवे है और बडा पापरूप है यातें तूं इसको अपना वैरी जान इति ३८

एवं जीवस्य परतंत्रत्वे पृथङ्मतानि दर्शयित्वाधुना वसिष्ठ-मुनेर्मतं निरूपयन् जीवस्य स्वतंत्रत्वमपि दर्शयति ॥

तज्जयात्पौरुषं वसिष्ठः ॥ ३९ ॥

वसिष्ठमुनिस्तु 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधते' त्यादिश्रुतिवचनात् पौरुषमेव प्रेरकं मन्यतेस्म पूर्वोक्तानां कर्मवासनादीनां साधारणतया प्रेरकत्वेपि न मुख्यं प्रेरकत्वं संभवति कुतः तज्जयात् तेषां कर्मवासनादीनां पौरुषेण जयदर्शनादित्यर्थः । तथाहि शुभमार्गे प्रवृत्तस्य पूर्वार्जिता दुष्टवासना जीयते ईश्वरोपि यथाशास्त्रं प्रणवादिजपपरा-यणमनुगृह्णात्येव एवमुभयपक्षेपि द्रष्टव्यं । कामोपि विषय-दोषदर्शिनो विरक्तस्य प्रायशो विनिवर्तते इत्थं शास्त्रीयपौ-रुषस्य सर्वत्र प्रबलत्वात् तस्यैव पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरकर्मणि प्रेरकत्वं युक्तं तत्प्रयोगस्य च जीवाधीनत्वादागमस्य स्वातंत्र्यमपि तदप्रयोगे तु जीवस्यैव प्रमादोस्तीत्यतो न

प्रेरकांतरं कल्पनीयं। तथाच तस्य वचनं 'शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहंती वासना सरित्। पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि। न तदस्ति जगत्कोशे शुभकर्मानुपातिना। यत्पौरुषेण शुद्धेन न समासाद्यते जनै' रिति तस्मात्सर्वथा सांसारिकविषयाभिमुखतामपहाय परमेश्वराराधनात्मकं परं पौरुषमविरतं श्रेयोर्थिभिराश्रयणीयमिति ॥ ३९ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदस्वामिप्रणीतेश्वरदर्शनभाष्ये तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

इसप्रकारसे जीवके परतंत्रपणेमें भिन्नभिन्न मत दिखलाय करके अब वसिष्ठमुनिके मतको निरूपण करते हुये जीवका स्वतंत्रपणा भी दिखलावे हैं.

'तज्जयात्पौरुषं वसिष्ठः' वसिष्ठमुनि तो 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।' अर्थ—हे पुरुषो, तुम उठो अर्थात् पुरुषार्थ करो प्रमादरूप निद्रासे जागो और श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषोंके पास जाकर ज्ञानको संपादन करो इति इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसें पुरुषार्थकोही प्रेरक मानता भया है पूर्वोक्त कर्म वासनादिकोंको साधारण रीतिसे प्रेरक होनेपर भी तिनका मुख्य प्रेरकपणा नहि संभवे है क्योंकि तज्जयात् कहिये तिन कर्मवासनादिकोंका पुरुषार्थ करके जय देखनेमें आवे है तथाहि पुरुषार्थसे शुभ मार्गमें प्रवृत्त भये पुरुषकी पूर्वली दुष्ट वासना निर्बल हो जावे है और ईश्वर भी शास्त्रानुसार

प्रणवादि जपपरायण पुरुषपर अनुग्रह अवश्य करता है ऐसेही कर्मवासना और ईश्वरवाले उभय पक्षमें भी जानलेना. तथा कामभी विषयोंमें दोष देखनेवाले विरक्त पुरुषका प्रायः निवृत्त हो जावे है इस प्रकार शास्त्रीय पुरुषार्थकी सर्वत्र प्रबलता होनेतें. तिसही पूर्व पूर्व पुरुषार्थका उत्तर उत्तर कर्ममें प्रेरकपणा युक्त है तिस पुरुषार्थका प्रयोग करना जीवके अधीन होनेतें जीवका स्वतंत्रपणा भी सिद्ध होवे है और जो पुरुषार्थका प्रयोग नहि करना है तिसमें जीवकाही प्रमाद कारण है इसलिये किसी दूसरे प्रेरककी कल्पना नही करनी चहिये तथा वसिष्ठमुनिका वचन भी है 'शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहंती वासना सरित् । पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि । न तदस्ति जगत्कोशे शुभकर्मानुपातिना । यत्पौरुषेण शुद्धेन न समासाद्यते जनैः' ॥ अर्थ—शुभ और अशुभ दोनों मार्गोंमें वासनारूपी नदी वहती है सो पुरुषार्थरूप प्रयत्न करके अशुभसे हटाकर शुभ मार्गमें जोडनी चहिये तथा इस संपूर्ण जगत्में ऐसी कोई वस्तु नहि है कि जो शुभ कर्मोंके द्वारा शुद्ध पुरुषार्थ करनेसें लोकोंको नहि प्राप्त होसके है इति । यातें सर्वथा सांसारिक विषयोंकी अभिमुखताका परित्याग करके परमेश्वराराधनरूप जो परम पुरुषार्थ है तिसहीका निरंतर कल्याणाकांक्षी पुरुषोंको आश्रय करना योग्य है इति ॥ २९ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदस्वामिप्रणीतेश्वरदर्शनभाषाटीकायां तृतीयः पादः ॥३॥

तदेवं पूर्वोक्तग्रंथसंदर्भेणेश्वराराधनस्यावश्यकतां तल्लक्षणं च निरूप्यानंतरं परमेश्वरस्य सगुणं निर्गुणं स्वरूपं तदर्चनप्रकारं संक्षेपेण तत्स्वभावं क्रमेण तज्ज्ञानलाभोपायं च वर्णयित्वाधुना सगुणोपासकानां निर्गुणोपासकानां च प्रेत्य का गतिर्भवतीति निरूपणार्थं चतुर्थः पादः प्रारभ्यते । प्रथमं तावत्सगुणोपासनाफलं वर्णयति तत्र भगवदुपासको जन्मनैकेन विष्णुपदमारोहति बहुभिर्वा जन्मभिरिति जिज्ञासायां निर्णयमाह ।

परिपाके गत्यधिकारी ॥ १ ॥

उपासनायाः परिपाके जाते सत्येव वैकुंठलोकगतेरयं पुरुषोधिकारी भवति नान्यथा परिपाकश्च केषांचित्पुण्यकृतां सत्वरं भवत्यन्येषामल्पसुकृतवतां तु जन्मांतरेषु भवत्यतस्तत्रैकजन्मनो बहुजन्मनां वा नियमो नास्ति यदोपासना परिपक्वा भवति तदैव विष्णुपदमधिरोहति नापक्वदशायामिति ॥ १ ॥

इसप्रकार पूर्वोक्त ग्रंथ संदर्भ करके ईश्वरके आराधनकी आवश्यकता और तिसका लक्षण कथन करके पश्चात् परमेश्वरके व्यक्त और अव्यक्त स्वरूपका क्रमसे विस्तारसहित अर्चनप्रकार और परमेश्वरके स्वभावका संक्षेपसे निरूपण करके तदनंतर क्रमसे ईश्वरस्वरूपके ज्ञानकी प्राप्तिका उपाय कथन किया अव सगुणउपास-

कोंकी और निर्गुणउपासकोंकी परलोकमें क्या गति होवे है इस-वार्ताके निरूपण करनेकेलिये चतुर्थ पादका आरंभ करते हैं तहां प्रथम सगुण उपासनाका फल वर्णन करते हूये भगवत्भक्तका एकही जन्ममें विष्णुलोकमें आरोहण होवे है किंवा बहुत जन्मोंमें होवे है ऐसी जिज्ञासा होनेतें निर्णय कथन करे हैं.

'परिपाके गत्यधिकारी' उपासनाके परिपाक होनेसेंही यह पुरुष वैकुंठलोकगमनका अधिकारी होवे है अन्यथा नही सो उपा-सनाका परिपाक केचित् पुण्यात्मा पुरुषोंका शीघ्रही हो जावे है और अल्प पुण्यवालोंका जन्मांतरोंमें होवे है यातें तहां एक जन्म अथवा बहुत जन्मोंका कुछ नियम नहि है अर्थात् जिस कालमें उपासना परिपक्व हो जावे है तिसही कालमें उपासक पुरुष विष्णु-पदको आरोहण करे है अपक्वदशामें नही करे है इति ॥ १ ॥

कथं त्वेतद्विज्ञायतेधुनोपासना परिपक्वेति जिज्ञासायामाह ।

स्वांतशुद्ध्युपास्यगुणाविर्भावाभ्याम् ॥ २ ॥

स्वांतशुद्ध्या उपास्यगुणाविर्भावेन चोपासनायाः परिप-क्वता विज्ञेयेति वाक्यशेषः । यदा परमेश्वराराधनं कुर्वतो-स्य पुरुषस्य स्वांतस्यांतःकरणस्य सर्वथा शुद्धिर्जायेत कदा चित्क्वचिदपि पापकर्मण्यप्रवृत्तिः सांसारिकविषयवासनोप-रमश्चांतःकरणशुद्धिलक्षणं यदा चास्योपास्यदेवस्य भगवतो

वैकुंठनाथस्य सत्यसंकल्पादीनां गुणानामुपासकस्य शरीरेप्याविर्भावो दृश्येत तथाहि कस्मैचित्कार्याय कृतः संकल्पः सत्यतामुपेयात् वाक्चोक्ता प्रायः फलवती भवेत् समीहितं च वस्तु प्रायशः समुपस्थितं स्यात् स्वप्नेषु च यदा सिद्धानां महर्षीणां मुहुर्मुहुर्दर्शनादिकं भवेत् तदोपासना परिपक्केत्यवगंतव्यं यथा पुष्पसंयोगतस्तैले पुष्पगुणाविर्भावो जायते तद्वदुपासकस्य शरीरेपि भगवद्गुणसंक्रमो भवतीति ॥ २ ॥

यह वार्ता कैसे जानी जावे कि अव उपासना परिपक्क भई है ऐसी जिज्ञासा होनेसें तिसका लक्षण कथन करे हैं,

'स्वांतशुद्ध्युपास्यगुणाविर्भावाभ्याम्' स्वांतशुद्धि कहिये अंतःकरणकी शुद्धता और उपास्य देवताके गुणोंका आविर्भाव होना इनदोनोंसे उपासनाकी परिपक्कता जानलेनी चहिये जिस कालमें परमेश्वरके आराधन करते हूये पुरुषकी अंतःकरणकी शुद्धि हो जावे अंतःकरणकी शुद्धिका यह लक्षण है कि एक तो कदाचित् किसी स्थलमें भी बुद्धिपूर्वक पापकर्ममें प्रवृत्ति नही होनी और दूसरे सांसारिक विषयवासनासे चित्तका उपराम होजाना तथा जिस कालमें उपास्यदेव जो भगवान् वैकुंठनाथ हैं तिनके सत्यसंकल्पादिक गुणोंका उपासक पुरुषके शरीरमेंभी आविर्भाव देखनेमें आवे जैसे कि किसी कार्यकेलिये किया हूया संकल्प सत्य हो जावे और वचन कहा हूया प्रायः सफल हो जावे

तथा वांछित पदार्थकी प्रायः प्राप्ति हो जावे और जिस कालमें स्वप्नमें सिद्ध और महर्षियोंके वारवार दर्शनादिक होने लगे तब उपासना परिपक्क होगई जाननी चहिये अर्थात् जैसे पुष्पोंके संयोगसे तेलमें तिनकी सुगंध का आविर्भाव हो जावे है तैसेही उपासकके शरीरमें भगवान्के गुणोंका संक्रम हो जावे है इति ॥ २ ॥

यद्येवमुपासनापरिपाके सत्येव गत्यधिकारी भवति तदोपासनामध्य एवापक्कदशायां मृतस्य का गतिर्भवतीति जिज्ञासायां निर्णयं दर्शयति ।

पुण्यलोकगमनमनेवं वा ॥ ३ ॥

तत्रोपासकस्तावत् द्विविधो भवति स्वर्गादिभोगवासनायुक्तस्तद्रहितः केवलं मुमुक्षुश्च तयोराद्यस्य भगवदुपासनया विगतपापकर्दमस्य न तावन्नरकगमनं भवति न चोपासनापरिपाकमंतरा विष्णुलोकारोहणं जायते परिशेषात् पुण्यलोकगमनं यज्ञादिपुण्यकर्मकारिणां जनानां ये स्वर्गादयो लोका लोकपालानां च पुराणि सुमेरूपवनकुंजादीनि च विहारस्थानानि तत्रास्य गमनं भवति स्थित्वा च तत्र बहुकालं परमेश्वरप्रेरितानभिपतान् भोगान् स्ववासनानुसारेण भुक्त्वा पुनरस्मिँल्लोके सत्पुरुषाणां कुलीनानां सदाचारवतां गृहे जनिमवाप्य पूर्वकृतेश्वराराधनसंस्कारवशात्पुन-

स्तदेव पूर्वजन्माभ्यस्तं भगवदनुचिंतनमनुसरति क्रमेण वर्धयँश्चाभ्यासं परिपाके वैकुंठलोकगत्यधिकारी भवति अनेवं वा वा शब्दोत्र भिन्नव्यवस्थार्थः । द्वितीयस्य तु विषयभोगवासनारहितस्य केवलं मुमुक्षोरुपासकस्य नैवं स्वर्गादिलोकेषु गमनं भवति किंतु पूर्वदेहपातानंतरमत्रैव भगवद्भक्तानां सतां कुलेऽन्यशरीरमासाद्य पूर्ववासनानुसारेण भगवदाराधनमनुसृत्याभ्यासं वर्धयन्नसौ क्रमेणोपासनापरिपाके सति विष्णुलोकमधिरोहतीति तदेतदखिलं निर्णीतं भगवद्गीतायामपि 'प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः । शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमतां । पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोपि सः ॥ अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गति'मिति ॥ ३ ॥

जो उक्तरीतिसे उपासनाके परिपक्व होनेसेंही वैकुंठ लोककी गतिका पुरुष अधिकारी होवे है तो उपासनाके मध्यमेंही अपक्वदशामें मरे हूये उपासककी क्या गति होवे है ऐसी जिज्ञासा होनेतें निर्णय कथन करे हैं.

'पुण्यलोकगमनमनेवं वा' तहां प्रथम उपासक दो प्रकारका होवे है एक तो स्वर्गादि भोगोंकी वासना करके युक्त और दूसरा

तिसतें रहित केवल मुमुक्षु तिन दोनोंमें पहलेका परमेश्वरकी उपासना करके सर्व पापोंसे रहित होनेतें नरकमें तो जाना संभवे नहि और उपासनाके परिपक्व हूयेविना विष्णुलोकमें आरोहण होनाभी नहि बनसके है यातें परिशेषात् पुण्यलोकगमनं कहिये यज्ञादिक पुण्यकर्मोंके करनेहारे लोकोंके जो स्वर्गादि लोक और लोकपालोंके पुर तथा सुमेरुपर्वतके उपवनोंके निकुंज स्थान हैं तहां तिस उपासकका गमन होवे है और तहां बहुत काल पर्यंत निवास करके परमेश्वर करके प्रेरित हूये वांछित भोगोंको अपनी वासनाके अनुसार भोगकरके पुनः इस लोकमें कुलीन और सदाचारवाले सत् पुरुषोंके घरमें जन्म लेकर पूर्वले संस्कारोंके वशसे फिर उसी पूर्व जन्ममें अभ्यस्त किये परमेश्वरके आराधनका अनुसरण करता है और क्रमसें फिर उपासनाके अभ्यासको बढाता हूया परिपक्व होनेतें वैकुंठ लोककी गतिका अधिकारी होवे है और जो दूसरा विषयभोगवासनासे रहित केवल मुमुक्षु उपासक होवे है तिसका उक्तरीतिसे स्वर्गादिक लोकोंमें गमन नही होवे है किंतु पूर्वदेहके पात होनेके अनंतर इसी लोकमें भगवत्भक्त सत् पुरुषोंके कुलमें दूसरा शरीर धारण करके पूर्व वासनाके अनुसार परमेश्वरके आराधनका अनुसरण करे है और पुनः तिस उपासनाको क्रमसें बढाता हूया परिपक्व होनेतें विष्णुलोकमें आरोहण करे है सो वह वार्त्ता भगवद्गीतामें भी निर्णय करी है 'प्राप्य पुण्यकृतां-

लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः । शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते । अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमतां । पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोपि सः । अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ।' अर्थ—हे अर्जुन, योगोपासनासें भ्रष्ट भया पुरुष स्वर्गादिक लोकोंमें जाता है और तहां बहुत वर्ष निवास करके पश्चात् पवित्र श्रीमंतोंके कुलमें जन्म लेता है अथवा स्वर्गादिकोंमें नही जाकर पुनः इसी लोकमें ज्ञानवान् योगियोंकी कुलमें उत्पन्न होवे है और तहां पूर्वले अभ्यास करके प्रेरित हूया पुनः अभ्यासको वढावे है और अनेक जन्मोंमें सिद्ध भया परम गतिकों प्राप्त होवे है इति ॥३॥

एवमपक्वदशायां निर्णयमुक्त्वाधुना तामेव गतिं निरूपयति ।

देवयानेन पथा विहितत्वात् ॥ ४ ॥

गत्यधिकारे जाते वर्तमानशरीरपातानंतरमसौ वैकुंठलोकमारुरुक्षुर्देवयानेन मार्गेण गच्छति कुत एतद्विज्ञायते विहितत्वात् श्रुतिषु स्मृतिषु च परमेश्वरोपासकस्य देवयानेन मार्गेण गमनस्य विहितत्वात् । तथाहि सामवेदे छान्दोग्योपनिषदि 'अथ यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वंति यदि च नार्चिषमेवाभिसंभवंत्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षड्डुदङेति मासांस्तान्मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चंद्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पु-

रुषोऽमानवः स एतान् ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ इति भगवद्गीतायां च 'अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणं । तत्र प्रयाता गच्छंति ब्रह्म ब्रह्मविदो जना इति ।' व्यासेनापि महर्षिणा निर्णीतमेतत् ब्रह्ममीमांसायां 'अर्चिरादिना तत्प्रथितेरित्यादिसूत्रैः न चात्र ब्रह्मविष्णुलोकयोर्मार्गभेदः शंकनीयः ब्रह्मलोकस्यैवोर्ध्वभागे वैकुंठलोकस्य विद्यमानत्वात् । तथाचोक्तं महाभारते वनपर्वणि 'ब्रह्मणः सदनादूर्ध्वं तद्विष्णोः परमं पदं । शुद्धं सनातनं ज्योतिः परं ब्रह्मेति यं विदुरिति' तस्माद्येन मार्गेण ब्रह्मलोकं गच्छंति तेनैव मार्गेण विष्णुलोकमधिरोहंतीत्यवबोद्धव्यं मार्गपूर्तिस्त्वेवमनुसंधेया अर्चिरहः शुक्लपक्षः षण्मासमुत्तरायणं संवत्सरो देवलोको वायुरादित्यश्चंद्रमा विद्युद्वरुणः शक्रः प्रजापतिरमानवपुरुष इत्येते क्रमेणोपासकं विष्णुलोकं नयंति सर्वेप्येतेऽर्चिरादीनामभिमानिनो देवा बोद्धव्या न हि जडेष्वर्चिरादिषूपासकोन्नयनं संभवति । तथाचोक्तं ब्रह्ममीमांसायां 'आतिवाहिकास्तल्लिंगादि'ति॥४॥

इसप्रकार अपक्कदशाका निर्णय कथन करके अब तिस उपासकको गतिका निरूपण करे हैं.

'देवयानेन पथा विहितत्वात्' गतिके अधिकार होजानेपर वर्तमान शरीरके पातके अनंतर सो उपासक पुरुष वैकुंठलोकमें

आरोहण करनेकी योग्यताको प्राप्त हूया देवयान मार्गसे गमन करे है क्योंकि 'विहितत्वात्' कहिये श्रुतिस्मृतियोंमें परमेश्वरके उपासक पुरुषका देवयान मार्गद्वाराही गमन कथन किया है सो जैसे सामवेदकी छांदोग्यउपनिषद्में लिखा है 'अथ यदु चैवास्मिन् शव्यं कुर्वति यदि च नार्चिषमेवाभिसंभवंत्यर्चिषोहरह आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षडुदङेति मासांस्तान् मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चंद्रमसं चंद्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एतान् ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ इति ।' अर्थ—जिसकालमें उपासक पुरुषका देहपात होवे है तो तिसके पीछेसे संबंधी वा शिष्यलोक तिसके शरीरकी शवक्रिया करें अथवा नही करें तो भी सो देवयानमार्गसेंही गमन करे हैं तहां प्रथम अग्नि देवताको प्राप्त होवे है तहांसें दिनको दिनसें शुक्लपक्षको शुक्लपक्षसें षट्मास उत्तरायणको षट्मास उत्तरायणसे संवत्सरको संवत्सरसें सूर्यको सूर्यसें चंद्रमाको चंद्रमासें विद्युत्को विद्युत्सें पश्चात् अमानव पुरुषको प्राप्त होवे है सो अमानव पुरुष तिस उपासकको सगुण ब्रह्मके पास लेजावे हैं यह देवयान मार्ग है और इसीको ब्रह्ममार्गभी कहते हैं इति । तथा भगवत्गीतामें भी लिखा है 'अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणं । तत्र प्रयाता गच्छंति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ।' अर्थ—अग्नि दिन शुक्लपक्ष षट्मास उत्तरायणादिक जो देवयान मार्ग है तिसके द्वारा गयेहूये उपासक लोक

ब्रह्म लोकको जाते हैं इति । तथा महर्षि व्यासजीने ब्रह्ममीमांसामें 'अर्चिरादिना तत्प्रथितेः ।' इत्यादि सूत्रोंकरके उपासक पुरुषका अर्चिरादिरूप देवयान मार्गद्वाराही गमन निरूपण किया है उक्त श्रुति और स्मृतिवाक्यमें जो ब्रह्मशब्द है तिस करके सगुण ब्रह्म विष्णु और ब्रह्मा दोनोंका ग्रहण होवे है सो ब्रह्मलोक और विष्णुलोकमें मार्गके भेदकी शंका नही करनी चाहिये क्योंकि ब्रह्मलोकके ऊपरही विष्णुलोक है तथा महाभारतके वनपर्वमें भी लिखा है 'ब्रह्मणः सदनादूर्ध्वं तद्विष्णोः परमं पदं । शुद्धं सनातनं ज्योतिः परं ब्रह्मेति यं विदुः ।' अर्थ—ब्रह्मलोकसें ऊपर विष्णुका परमधाम वैकुंठ लोक है जिस विष्णु परमात्माको शुद्ध सनातन और परंब्रह्म ऋषिलोक जानते हैं इति । यातें जिस मार्गसें ब्रह्मलोकको जाते हैं उसी मार्गसें विष्णुलोकमें आरोहण करते हैं यह जानना चहिये सो देवयानमार्गकी पूर्ति इसप्रकारसें जाननी चहिये अर्चिः दिन शुक्लपक्ष षट्मास उत्तरायण संवत्सर देवलोक वायुः सूर्य चंद्रमा विद्युत् वरुण इन्द्र प्रजापति और अमानव पुरुष इतने जने क्रमसें उपासकको विष्णुलोकमें पहुंचाते हैं सो यह सर्वही अर्चिरादिकोंके अभिमानी देवता जानने चहिये क्योंकि केवल जडरूप अग्निआदिकोंमें उपासक पुरुषका लोकांतरमें लेजाना नही संभवे है तथा ब्रह्ममीमांसामें व्यासजीनेभी लिखा है 'आतिवाहिकास्तल्लिंगात् ।' अर्थ—ऊपर कथन किये अर्चिरा-

दिकोंके अभिमानी देवताही उपासकके लेजानेवाले समझने चहिये क्योंकि उपासकका लेजानारूप कर्म चेतन देवतायोंमेंही संभवे है इति ॥ ४ ॥

एवं सर्वसाधारणगतिमुक्त्वेदानीं प्रकारांतरमुपवर्णयति ।

पार्षदैरपि केचिच्छ्रवणात् ॥ ५ ॥

केचिदुपासकाः पार्षदैरपि विष्णुलोकं प्रति नीयंते कुतः श्रवणात् । श्रूयते हि श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणेषु स्थले स्थले भगवत्प्रेरणया वैकुंठलोकादागत्य पार्षदा दिव्यविमानेनोपासकं विष्णुलोकं नयंतीति ॥ ५ ॥

इसप्रकारसें सर्व उपासकोंकी साधारण गति कथन करके अब दूसरा प्रकार दिखलावे हैं.

'पार्षदैरपि केचिच्छ्रवणात्' केचित् कहिये केईएक उपासकलोक भगवान्के पार्षदोंद्वाराभी विष्णुलोकमें पहुंचाये जाते हैं क्योंकि 'श्रवणात्' कहिये श्रुतिस्मृतिइतिहासपुराणोंमें वहुत स्थलोंसें यह वार्ता सुननेमें आवे है कि भगवान्की प्रेरणासें वैकुंठलोकसें आयकरके पार्षदलोक दिव्यविमानद्वारा उपासकको विष्णुलोकमें ले जाते हैं इति ॥ ५ ॥

तदेतत्परस्परविरुद्धं गतिद्वयमेकस्मिन्नेवोपासनाविषये कथं संगच्छते तत्राह ।

अनुगृहीतस्य तु न क्रमापेक्षा ॥ ६ ॥

तुकारः शंकानिरासार्थः यद्यपि साधारणतया प्रायशो भगवदुपासकानामर्चिरादिमार्गेणैव गतिर्भवति परंतु यस्योपरि प्रेमातिशयात्परमेश्वरस्य रमापतेर्विशेषानुग्रहो जायते तस्योपासकस्य नार्चिरादिक्रमापेक्षा भवति किंतु भगवदाज्ञया पार्षदा एव सत्वरं तमच्युतपार्श्वं नयंतीति विज्ञेयं दृश्यते चैतल्लोकेपि नृपाद्यनुग्रहेण भृत्यादीनां नियमितक्रमानपेक्षणं ते हि यस्योपरि तुष्टा भवंति तमविलंवितमेवात्मसामीप्यं प्रयच्छंतीति तस्मादर्चिरादिक्रमेण पार्षदैश्चोभयथाप्युपासकस्य गमनं संगच्छत इति ॥ ६ ॥

यह उक्त रीतिसें दो प्रकारकी गति एकही उपासना विषयमें कैसे संभवे है ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं।

'अनुगृहीतस्य तु न क्रमापेक्षा' यद्यपि साधारण रीतिसें प्रायः भगवत्‌उपासकोंकी अर्चिरादि मार्गसेंही गति होवे है परंतु जिसके ऊपर अतिशय प्रेमके कारणसें रमापति परमेश्वरका विशेष करके अनुग्रह होवे है तिस उपासकको अर्चिरादिमार्गके क्रमकी अपेक्षा नही होवे है किंतु भगवान्‌की आज्ञासें पार्षदलोकही तिसको शीघ्र भगवान्‌के पास ले जाते हैं तथा लोकमेंभी यह वार्ता देखनेमें आवे है कि राजादिकोंका अनुग्रह होनेतें भृत्यादिकोंको नियत किये हूये क्रमकी अपेक्षा नही होवे है अर्थात् सो राजादिक

जिसके ऊपर प्रसन्न हो जाते हैं तिसको शीघ्रही अपने समीप बुलाय लेते हैं यातें अर्चिरादि मार्गके क्रमसे और पार्षदोंकरके दोनों प्रकारसें उपासकका विष्णुलोकमें गमन युक्त है ॥ ६ ॥

किंचार्चिरादिमार्गेणैव गंतव्यमिति नियमो नास्तीति योगिदृष्टांतेन दर्शयति ।

योगसिद्धस्य नोभयतंत्रत्वम् ॥ ७ ॥

ये खल्वस्मिँल्लोके योगाभ्यासेनाणिमाद्यष्टैश्वर्यलाभेन सिद्धा भवंति तेषां वैकुंठगमने नोभयतंत्रत्वं नार्चिरादिमार्गाधीनता न चापि पार्षदाधीनता भवति ते हि स्वेच्छया मूर्द्धानं निर्भिद्येदं कलेवरं हित्वा यत्र गंतुमिच्छंति तत्रैव योगधारणयाऽव्याहतगतयो गच्छंति प्रसिद्धमेतत् श्रुतिस्मृतीतिहासादिषु योगिनां स्वतंत्रगतित्वं । तथाच भागवते 'योगेश्वराणां गतिमाहुरंतर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनांतरात्मनां । न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवंति विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् । यदि प्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यं वैहायसानामुत यद्विहारं । अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्चे'ति । योगशास्त्रेपि 'ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्चेति' ॥ ७ ॥

किंच अर्चिरादि मार्गद्वाराही गमनका नियम नही है यह वार्ता योगीके दृष्टांतसें दिखलावे हैं.

'योगसिद्धस्य नोभयतंत्रत्वम्' जो पुरुष इसलोकमें योगाभ्यासकरके अणिमामहिमादिक सिद्धियोंको प्राप्त होयकर पूर्ण सिद्ध हो जाते हैं तो तिनको वैकुंठलोक जानेमें दोनोंकी परतंत्रता नहि होवे है अर्थात् अर्चिरादि मार्गकी और पार्षदोंकी दोनोंकी आधीनता तिनको नही होवे है क्योंकि सो अपनी इच्छानुसार योगबलसे ब्रह्मरंध्रको भेदन करके इस कलेवरको छोडकर जहां जाना चाहते हैं तहांही योगधारणा करके अव्याहत गतिसे चले जाते हैं सो यह योगियोंका स्वतंत्रगतिपणा श्रुतिस्मृतिइतिहासोंमें प्रसिद्धहि है तथा भागवतमेंभी लिखा है 'योगेश्वराणां गतिमाहुरंतर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनांतरात्मनां। न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवंति विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥ यदि प्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यं वैहायसानामुत यद्विहारं। अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च।' अर्थ—पवनरूपी सूक्ष्म शरीरसें विचरणेवाले योगीलोकोंकी त्रिलोकीके अंतर और बाहिरभी गति होवे है सो यह जो विद्या तप और समाधिवालोंकी गति है सो केवल कर्मोंकरके प्राप्त नही होसके है तथा हे राजन् देहके त्यागकालमें जो योगीकी ब्रह्मलोकमें वा देवतायोंकी विहारभूमि स्वर्गमें वा अष्टसिद्धिवालोंके स्थानमें या त्रिगुणके समुदाय सर्व ब्रह्मांडमें जहां जानेकी इच्छा होवे तो मन और इन्द्रियोंके सहितही जावे है इति। तथा योगशास्त्रमें पतंजलिनेभी लिखा है 'ततो मनोजयित्वं विकरणभावः

प्रधानजयश्च ।' अर्थ–योगी पुरुषकी मनके वेगके तुल्य गति होवे है और विनागोलकोंसे इन्द्रियोंकी सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट पदार्थोंमें प्रवृत्ति और प्रकृतिका जयभी होवे है इति ॥ ७ ॥

एवमुपासकानां वैकुंठलोकगतिप्रकारं वर्णयित्वाधुना तत्र गतानां किमु सर्वेषां सम एव पदलाभो भवति वा न्यूनाधिकभावेनेति जिज्ञासायां तत्रत्यं विशेषं निरूपयति ।

चातुर्विध्यश्रवणान्न तुल्यत्वम् ॥ ८ ॥

सगुणब्रह्मोपासकानां सालोक्यसामीप्यसायुज्यसारूप्यभेदाच्चतुर्विधो हि मोक्षः श्रुतिस्मृतीतिहासादिषु श्रूयते तत्र केचिदुपासका विष्णुलोकनिवासमेव प्राप्नुवंति न विष्णुसामीप्यं केचिद्विष्णुसमीपतामेव लभंते न तेन सह विहारित्वं केचित् विष्णुसायुज्यमेवाधिगच्छंति न तत्सारूप्यं केचित्तु विष्णुसमानरूपतामाप्नुवंतीत्येवं वैकुंठलोकगतानां चतुर्विधः पृथक्पदलाभो जायते अतस्तत्र गतानां सर्वेषां तुल्यत्वं न संभवति यत्तु क्वचित् भागवतादिपुराणेषु 'सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकादिव्याभरणाः सुवर्चस' इत्यादिस्थलेषु वैकुंठलोकनिवासिनां सर्वेषां तुल्यरूपत्वाभिधानं वर्तते तदेकदेशिनां भगवतो मुख्यपार्षदानां सारूप्यमुक्तिभाजामेव परं विज्ञेयं न तु सर्वेषां

तत्रत्यानां परं नो चेत् गरुडशेषादीनामपि चतुर्भुजत्वं स्यात् न चैवं श्रूयते तस्मान्न सर्वेषां तुल्यत्वमिति ॥ ८ ॥

इसप्रकारसें उपासककी वैकुंठलोकमें गति निरूपण करके अब पुनः तहां गये हूये सर्व उपासकोंको समान पदकाही लाभ होवे है किंवा न्यूनाधिक भावसे पदलाभ होवे है ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं ।

'चातुर्विध्यश्रवणान्न तुल्यत्वम्' सगुण ब्रह्मके उपासकोंकी सालोक्य सामीप्य सायुज्य और सारूप्य इस भेदसें चार प्रकारकी मुक्ति श्रुतिस्मृतिइतिहासोंमें श्रवणमें आवे है तहां केचित् उपासक लोक केवल विष्णुलोकमें निवासकोही प्राप्त होते हैं विष्णु भगवान्की समीपताको नहि प्राप्त होते और केचित् समीपताको प्राप्त होते हैं विष्णुभगवान्के साथ क्रीडाविहारमें सखापणेको नहि प्राप्त होते और केचित् सखाभावको प्राप्त होते हैं विष्णु भगवान्के स्वरूपको नही प्राप्त होते और केचित् विष्णुभगवान्के समान चतुर्भुजरूपको प्राप्त होते हैं इस रीतिसे वैकुंठलोकमें उपासकोंको भिन्न भिन्न पदका लाभ होवे है इसलिये तहां गये हूये सर्वका तुल्यपणा नही होवे है और जो कहीं भागवतादिक पुराणोंमें लिखा है 'सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकदिव्याभरणाः सुवर्चसः ।' अर्थ—वैकुंठलोकमें सर्व पुरुष चतुर्भुज उज्वल मणियोंके दिव्य आभूषण धारण किये हूये श्रेष्ठ तेजवाले हैं इति । सो यह वचन तो तहांके एकदेशी जो सारूप्य पदके अधिकारी

भगवान्‌के मुख्य पार्षद हैं तिनके ऊपर जानना तहां रहनेहारे सर्वके ऊपर नही जानना चहिये नही तो गरुड शेषनागादिकोंकोभी चतुर्भुजही होना चहिये परंतु ऐसा श्रवणमें नहि आवे है, यातें वैकुंठलोकमें सर्व उपासकोंका तुल्यपणा नही होवे है इति ॥ ८ ॥

ननु सर्वेषामेकध्येयनिष्ठानां सदृश एव पदलाभो युक्तः तत्कथमयं चतुर्विधो भेदो जायते तत्राह ।

स्थितिभेदस्तूपास्तितारतम्यात् ॥ ९ ॥

तुशब्देनाक्षेपं परिहरति योयं वैकुंठलोकगतानामुपासकानां चतुर्विधः स्थितिभेदः श्रूयते स उपासनायास्तारतम्यादेव भवति 'तं यथायथोपासते तत्तथैव भवती'ति श्रुतिवचनानुसारेण यस्योपासकस्य यादृशी भवत्युपासना तस्य तादृश एव पदलाभो जायते तथाहि ये परमेश्वरं वैकुंठादिस्थानगतं स्वात्मनो दूरं भिन्नं च ज्ञात्वोपासनां कुर्वंति ते सालोक्यपदं प्राप्नुवंति ये प्रतिमादिषु गतं स्वात्मनः समीपस्थितमवबुध्य भेदबुद्ध्या भगवंतमाराधयंति ते सामीप्यपदभाजो भवंति ये च सर्वगतं स्वात्मनोंतर्यामिणं 'द्वासुपर्णासयुजासखाया' इतिश्रुत्युक्तन्यायेन जीवसखं बुद्ध्वा परमेश्वरस्यानुचिंतनं कुर्वंति ते सायुज्यपदमुपागच्छंति ये तु केचिदध्यात्मविद्यापरायणा 'ममैवांशो

जीवलोके जीवभूतः सनातन'इति भगवद्गीतोक्तन्यायेन स्वात्मनोंशीभूतं सच्चिदानंदमयं स्वहृदयकमलगतं परमेश्वरमनिशमभेदबुद्ध्या ध्यायंति ते सारूप्यपदमासादयंतीत्येवमुपासनातारतम्यात् स्थितितारतम्यं भवतीति ॥ ९ ॥

सर्व उपासकोंकी एक ध्येयस्वरूपमें निष्ठा होनेतें सर्वको समानही पदका लाभ होना चहिये तो फिर यह चार प्रकारका भेद किस कारणसें होवे है तहां कहे हैं.

'स्थितिभेदस्तूपास्तितारतम्यात्' यह जो वैकुंठलोकमें गये हूये उपासकोंका चार प्रकारसे स्थितिका भेद सुननेमें आवे है सो उपासनाके न्यूनाधिक भावसेंही होवे है 'तं यथायथोपासते तत्तथैव भवति ।' अर्थ—तिस परमेश्वरकी जो जो पुरुष जैसे जैसे उपासना करते हैं, सो तैसे तैसेही होते हैं इति इस श्रुतिवचनके अनुसार जिस उपासककी जैसी उपासना होवे है तिसको तैसेही पदका लाभ होवे है तिनमें जो पुरुष परमेश्वरको वैकुंठादिकस्थानोंमें स्थिर मानकर अपनेसें दूर और भिन्न जानकरके उपासना करते हैं सो सालोक्यपदको प्राप्त होते हैं और जो प्रतिमादिक आधारमें स्थित अपने समीप जानकर परमेश्वरका भेदबुद्धिसे आराधन करते हैं सो सामीप्य पदको प्राप्त होते हैं और जो सर्वत्र व्यापक अंतर्यामी और 'द्वासुपर्णासयुजासखायासमानं वृक्षं परिषस्वजाते' इस श्रुतिके अनुसार अपने जीवात्माका सखा जानकर परमेश्वरका

अनुचिंतन करते हैं सो सायुज्य पदको प्राप्त होते हैं तथा जो पुरुष अध्यात्मविद्यापरायण हूये 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।' इस भगवद्गीताके वचनानुसार अपने आत्माका अंशीभूत जानकर और सच्चिदानंदस्वरूप अपने हृदयकमलमें स्थित परमेश्वरका अभेदबुद्धिसे निरंतर ध्यान करते हैं सो सारूप्यपदको प्राप्त होते हैं इसप्रकारसे उपासनाके तारतम्यसें विष्णुलोकमें उपासकोंकी स्थितिमें तारतम्यता होवे है इति ॥ ९ ॥

एवमुपासकानां परस्परं स्थितिभेदमुक्त्वाधुनेश्वरादपि तेषां स्थितिभेदं वर्णयति ।

विभूतिसाम्यं विनारंभात् ॥ १० ॥

विनारंभात् केवलं जगदारंभं विहाय विष्णुलोकं गतानामुपासकानां परमेश्वरेण सहान्यत्सर्वं विभूतिसाम्यं भवति विभूतेर्भगवतः समस्तवैभवस्य तुल्यत्वं भवतीत्यर्थः । 'सा या ब्रह्मणो जितिर्या व्युष्टिस्तां जितिं जयति तां व्युष्टिं व्यश्नुते य एवं वेदेति' श्रुतिवचनात् यावती परमेश्वरस्य महाविष्णोरुपभोगसामग्री वर्त्तते तावती तेषामप्युपस्थिता भवति सामर्थ्यं चाणिमादिकं परमेश्वरोपमं तेषामुपजायते परंतु परमेश्वरे या जगदारंभशक्तिर्विद्यते सा न तैरधिगम्यते आरंभशब्देनात्र स्थितिविनाशावपि गृह्येते तथा चैतन्निर्णीतं ब्रह्ममीमांसायां महर्षिणा व्यासेनापि 'जग-

व्यापारवर्ज्जम् । भोगमात्रसाम्यलिंगाच्चेति’ सर्वदर्शनसंग्रहेपि ‘ततः स्वाभाविकाः पुंसां ते संसारतिरोहिताः । आविर्भवंति कल्याणाः सर्वज्ञत्वादयो गुणाः । एवंगुणाः समानाः स्युर्मुक्तानामीश्वरस्य च । जगत्कर्तृत्वमेवैकं तेभ्यो देवे विशिष्यत इति ॥ १० ॥

इसप्रकार उपासकोंका परस्पर स्थितिभेद कथन करके अब तिनका भगवान्सें स्थितिभेद वर्णन करे हैं.

‘विभूतिसाम्यं विनारंभात्’ विष्णुलोकमें गये हूये उपासकोंको विनारंभात् कहिये केवल जगत्की रचनाको छोडकरके और सर्वप्रकारका वैभव परमेश्वरके तुल्य प्राप्त होवे है तथा यह वार्ता कौषीतकी ब्राह्मणउपनिषत्मेंभी कथन करी है ‘सा या ब्रह्मणो जितिर्या व्युष्टिस्तां जितिं जयति तां व्युष्टिं व्यश्नुते य एवं वेद ।’ अर्थ—जो इसप्रकारसें उपासना करके ब्रह्मलोकमें जाता है सो जितनी सगुणब्रह्मकी जिति और विभूति होवे है तिस जिति और विभूतिको प्राप्त होवे है इति । सो जितनी विष्णु भगवान्की भोगोंकी सामग्री है उतनी सर्वही तिन उपासकोंको भी प्राप्त होवे है तथा परमेश्वरके समान अणिमा महिमादिकरूप सामर्थ्यभी तिनको प्राप्त हो जावे है परंतु परमेश्वरमें जो जगत् उत्पत्ति स्थिति और विनाश करनेकी शक्ति है सो तिनको नही प्राप्त होवे है तथा यह वार्ता ब्रह्ममीमांसामें व्यासजीनेभी निर्णय करी है

'जगद्व्यापारवर्जम् । भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च ।' अर्थ—सगुण ब्रह्मके लोकमें प्राप्त भये उपासकको जगत् रचनादिका अधिकार नहि होवे है केवल परमेश्वरके तुल्य भोगोंकी प्राप्ति होवे है इति ॥ तथा सर्वदर्शन संग्रहमें भी लिखा है 'ततः स्वाभाविकाः पुंसां ते संसारतिरोहिताः । आविर्भवंति कल्याणाः सर्वज्ञत्वादयो गुणाः । एवंगुणाः समानाः स्युर्मुक्तानामीश्वरस्य च । जगत्कर्तृत्वमेवैकं तेभ्यो देवे विशिष्यते ।' अर्थ—संसार वंधनकरके लुप्त हूये जो जीवके सर्वज्ञ सर्वशक्तिपणादिक कल्याण गुण थे सो विष्णुलोकमें जानेसें उपासक पुरुषोंको फिर प्रकट हो जाते हैं इसप्रकार ईश्वरके और मुक्त पुरुषोंके सर्व गुणसमान हो जाते हैं परंतु एक जगत्कर्तापणा परमेश्वरमें तिनसें अधिक रहता है इति ॥ १० ॥

उक्तरीत्या विष्णुलोकं प्राप्तानामुपासकानामुपासनाफलावसाने का गतिर्भवतीतिजिज्ञासायां निर्णयमाह ।

अधिकारांते परे लयो वचनात् ॥ ११ ॥

उपासनानुसारेण लब्धाधिकाराणां चतुर्विधानामप्युपासकानां स्वकीयाधिकारसमाप्तौ सत्यां परस्मिन् परमात्मनि निर्गुणे ब्रह्मणि लय एकीभावो भवति कुत एतद्विज्ञायते वचनात् विद्यते हि श्रुतिस्मृतिवचनमस्मिन् विषये प्रमाणभूतं तथाहि अथर्ववेदीयमुंडकोपनिषदि 'ते ब्रह्मलोकेषु परांतकाले परामृताः परिमुच्यंति सर्वे परेव्यये

सर्वएकीभवंति परात्परं पुरुषमुपैति दिव्य'मित्यादिवाक्यं 'ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रति संचरे । परस्यांते कृतात्मानः प्रविशंति परं पदमि' त्यादिस्मृतिवचनं चेति॥११॥

उक्तरीतिसें विष्णुलोकमें प्राप्त भये उपासकोंकी उपासनाके फल भोगके अंतमें क्या दशा होवै है ऐसी जिज्ञासा होनेतें निर्णय कथन करे हैं.

'अधिकारांते परे लयो वचनात्' उपासनाके अनुसार सालोक्यादि चार प्रकारके पदको प्राप्त भये उपासकोंका अपने अधिकारके समाप्त होनेके अनंतर परेलयः कहिये सगुणसे परे जो अव्यक्त निर्गुणब्रह्म परमात्मा है तिसमें एकीभाव होवे है यह वार्ता कैसे जाननेमें आवे है तहां कहे हैं वचनात् कहिये इस वार्तामें अनेक श्रुतिस्मृतियोंके वचन प्रमाण हैं तथा च मुंडकउपनिपत्में लिखा है 'ते ब्रह्मलोकेषु परांतकाले परामृताः परिमुच्यंति सर्वे । परेव्यये सर्व एकीभवंति परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यं ।' अर्थ– सगुण ब्रह्मके लोकमें गयेहूये उपासकलोक कल्पके अंतमें मुक्तस्वरूप हूये कैवल्यपदको प्राप्त हो जाते हैं तथा मुक्त पुरुषोंकी प्राणादिक कला सर्व परब्रह्ममें एकीभावको प्राप्त होवे हैं तथा सो मुक्त पुरुष प्रकृतिसे परे जो दिव्य पुरुष परमात्मा है तिसको प्राप्त होवे हैं इति । तथा अन्यत्रभी कहा है 'ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसं-

चरे। परस्यांते कृतात्मानः प्रविशंति परं पदम् ।' अर्थ—महा प्रलय-कालमें ब्रह्माके सहित सर्व उपासकलोक ज्ञानको प्राप्त हूये परमपद निर्गुण ब्रह्ममें प्रवेश कर जाते हैं इति ॥ ११ ॥

ननु निरंतरमीश्वराधीनत्वाज्जीवस्य न तेन सहैकीभावो भवितुमर्हति वैकुंठलोकगमनेपि तस्य सर्वदैव भगवतः किंकर-त्वमेव युक्तमित्यत्राह ।

पृथगवस्थितिरिति चेन्नानवकाशदोष-प्रसंगात् ॥ १२ ॥

वैकुंठलोकगतानामुपासकानां सदैवेश्वरतः पृथगेवाव-स्थितिर्भवतीति चेत् नैतदुपपद्यते कुतः अनवकाशदोषप्रसं-गात् तथा सति पूर्वेषां तत्रत्यानां कदापि स्वपदत्यागाभा-वादन्येषां पश्चाद्गतानां तत्पदालाभे सत्यनवकाश एव स्यात् न चायं नियमोस्ति सर्वेषां पृथक्पृथगेवोपासना भवेत् अतस्तुल्यत्वमप्युपासनायाः क्वचिदंगीकर्तव्यं तथा सति गरुडशेषादिपदलाभयोग्योपासनाकारिणः शरीरपातानंतरं वैकुंठलोकं गतस्य तत्पदलाभः स्यादेव न च गरुडादीनां बहुत्वं वाच्यं श्रुतिस्मृतीतिहासादिष्वप्रसिद्धत्वात् न च गरुडशेषादिपदयोग्योपासनान्येन कर्तुं न शक्यत इत्यपि वक्तव्यं पूर्वगरुडादिष्वपि तत्प्रसंगात् यदोपासनया भगव-त्सारूप्यपदमप्यवाप्यते किमुवाच्यं तत्र गरुडादिपदलाभस्य

तस्मात्सर्वेषां वैकुंठगतानां स्वाधिकारसमाप्त्यनंतरं परमात्मन्येकीभावो भवतीति ॥ १२ ॥

जीव तो निरंतर ईश्वरके अधीन है यातें तिसका परमेश्वरके साथ एकीभाव होना कैसे संभवे है वैकुंठलोकमें जानेपर भी तिसको सर्वदा भगवान्का किंकरही रहना पडता है ऐसा आक्षेप होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'पृथगवस्थितिरिति चेन्नानवकाशदोषप्रसंगात्' विष्णुलोकमें गयेहूये उपासकोंकी सर्वदा काल परमेश्वरसें भिन्नही स्थिति रहे है यह वार्ता संभवे नहि क्योंकि अनवकाशदोष प्रसंगात् कहिये ऐसे माननेसें अनवकाशदोषकी प्राप्ति होवे है क्योंकि उपासकोंको सर्वदा ईश्वरसें भिन्न रहनेसें कदाचित् भी तिनको अपणे पदका त्याग नहि होवेगा तो दूसरे पश्चात् तहां गयेहूये उपासकोंको सो पद नही मिलनेसें अनवकाश दोषही प्राप्त होवेगा और यह भी नियम नहि हो सकता कि सर्व लोकोंकी उपासना भिन्नभिन्नही होवें यातें कहीं उपासनाकी तुल्यताभी अवश्य अंगीकार करनी चहिये और ऐसे होनेसें गरुडशेषादिकोंके पदके लाभ योग्य उपासना करनेवालेको शरीर पातके अनंतर वैकुंठलोकमें जानेसें सो पद अवश्य मिलना चहिये और यदि कहो कि गरुडशेषादिक बहुतसें होते हैं तो सो वार्ता श्रुतिस्मृतिइतिहासादिकोंमें कहीं प्रसिद्ध नही है और यहभी नियम नही हो सकता कि गरुडशेषादिकोंके पदके लाभके

योग्य कोई दूसरा उपासनाही नही कर सकता क्योंकि पहलेके गरुडादिकोंमे भी यह दोष आवेगा जब उपासना करके भगवान्के तुल्यस्वरूपकी प्राप्ति होसके है तो गरुडशेषादिकोंके पदकी क्या वार्ता कहनी है यातें विष्णुलोकमें गयेहूये उपासकोंका अपने अपने अधिकारके अंतमें निर्गुण परमेश्वरके साथ एकीभाव होवे है इति ॥१२॥

इतश्चैकीभावोवगंतव्यः ।

उत्पत्तिश्रवणात् ॥ १३ ॥

श्रूयते हि भारतादीतिहासेषु गरुडादीनां विनतादिगर्भतः समुत्पत्तिः तथा सति गरुडजन्मतः पूर्वं विष्णोर्वाहनं किमपि नासीदिति वक्तुं न शक्यते 'सूर्याचंद्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयदिति' वेदवचनानुसारेण पूर्वमपि गरुडादीनां सद्भावोंगीकर्तव्यः तेषां तु स्वाधिकारांते कैवल्यमोक्षं गतानामधिकारेन्येषां नवीनानामवस्थानं युक्तं तस्मान्नोपासकानामीश्वरतः सर्वदा पृथगवस्थानं भवतीति ॥ १३ ॥

इसवार्तासेंभी तिनका एकीभाव निश्चय करना चहिये.

'उत्पत्तिश्रवणात्' महाभारतादिक इतिहासोंमें गरुडादिकोंकी विनतादिकोंसें उत्पत्ति सुननेसें आवे है ऐसे होनेसें गरुडके जन्मसें पहले विष्णु भगवान्का कोई वाहन नही था यह नही कह सकते तथा 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' । अर्थ–जैसे सूर्य

चंद्रमा पहले थे तैसेही ब्रह्मा इसकल्पके आदिमें रचता भया इति।
इस वेद वचनके अनुसार पूर्वकल्पोंमेंभी गरुडादिकोंका सद्भाव
मानना चहिये तिनके अपने अधिकारके अंतमें कैवल्यमोक्षपदको
प्राप्त हो जानेसे पुनः तिनके अधिकारमें दूसरे नवीन उपासकोंका
स्थित होना युक्त है यातें विष्णुलोकमें गयेहूये उपासकोंका परमे-
श्वरसें सर्वदा भिन्न रहना नही संभवे है इति ॥ १३ ॥

किंच ।

साम्यश्रुतिविरोधाच्च ॥ १४ ॥

मोक्षदशायां जीवेश्वरयोरभेदप्रतिपादकश्रुतिशतविरो-
धादपि न तयोः पृथगवस्थानं मंतव्यं तथाहि मुंडकोपनि-
षदि । 'यथा नद्यः स्यंदमानाः समुद्रेस्तं गच्छंति नामरूपे
विहाय तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमु-
पैति दिव्यं तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं
साम्यमुपैतीति' तस्मात्स्वाधिकारांते सर्वेषामुपासकानां
परमात्मन्येकीभावो भवतीत्यवसेयम् ॥ १४ ॥

किंच ।

'साम्यश्रुतिविरोधाच्च' मोक्षदशामें जीव और ईश्वरके अभेदके
प्रतिपादन करनेहारी अनेक श्रुतियोंके विरोध होनेसेंभी सर्वदा
तिनका भिन्न भिन्न रहना नही मानना चहिये तथा मुंडकउपनिषत्में
लिखा है 'यथा नद्यः स्यंदमानाः समुद्रेस्तं गच्छंति नामरूपे विहाय

तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यं तदा विद्वा-न् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ।' अर्थ—जैसे वहती हुई गंगादिक नदियां अपने नाम और रूपकों छोड करके समुद्रमें लीन हो जाती हैं; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष अपने नाम और रूपसें रहित भया प्रकृतिसें परे परम दिव्यपुरुषमें लीन हो जावे है तथा तिस कालमें ज्ञानी पुरुष पुण्य और पापोंसें रहित होकर सर्वसे निर्लेप भया परमात्माकी तुल्यताको प्राप्त होवे है इति । यातें अपने अधिकारके अंतमें सर्व उपासकोंका परमात्मामें एकीभाव होवे है यह निश्चय करना योग्य है इति ॥ १४ ॥

एवं वैकुंठलोकगतानामुपासकानां मोक्षदशायां सर्वेषां पर-मात्मन्येकीभावो भवति किंवा केषांचिदस्मिँल्लोके पुनरागम-नमपि भवतीति जिज्ञासायामुत्तरमाह ।

पुनरनावर्त्तनं निमित्ताभावात् ॥ १५ ॥

सगुणब्रह्मोपासनया देवयानेन पथा विष्णुलोकं गता-नामुपासकानां पुनरस्मिँल्लोके कदाप्यावर्तनं न जायते कुतः निमित्ताभावात् अज्ञानमेव हि पुनर्जन्मनः कारणं भवति तच्च वैकुंठलोकस्य सत्त्वगुणप्रधानत्वात् तत्रगतानामात्म-ज्ञानेन सहसा विनश्यति 'छायातपयोरिव ब्रह्मलोके' इति कठोपनिषद्वचनात् तत्रात्मानात्मनोश्छायातपयोरिवस्फु-

टावबोधो जायते ततो नष्टे च कारणे कुतः कार्योद्भवः स्यादतः क्लेशकर्मादिनिमित्ताभावादुपासकानामस्मिन् दुःखबहुले मनुष्यलोके पुनरागमनं न भवतीति विज्ञेयम् ॥ १५ ॥

उक्तरीतिसें मोक्षदशामें क्या सभी उपासकोंका परमात्मामें एकीभाव हो जावे है किंवा तिनमें किसीका इसलोकमें पुनरागमनभी होवे है तहां कहे हैं.

'पुनरनावर्त्तनं निमित्ताभावात्' सगुण ब्रह्मकी उपासनासे देवयानमार्गद्वारा विष्णुलोकमें गयेहूये उपासकोंका फिर इस लोकमें आवर्तन नही होवे है क्योंकि 'निमित्ताभावात्' कहिये अज्ञानही पुनर्जन्मका कारण होवे है और वैकुंठलोकमें सत्त्व गुणकी प्रधानता होनेतें तहां गयेहूये पुरुषोंका सो अज्ञान शीघ्रही नाशको प्राप्त हो जावे है तथा यजुर्वेदीय कठउपनिषत्में भी लिखा है 'छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ।' अर्थ—सगुणब्रह्मके लोकमें छाया और धूपकी न्यांई स्फुट ज्ञान होवे है अर्थात् जैसे छाया और धूप निःसंदेह प्रतीत होवे है तैसेही तहां आत्मा और अनात्मा दोनोंका निःसंदेह स्फुट ज्ञान होवे है इति । यातें अज्ञानरूपकारणके नष्ट हो जानेसें फिर पुनर्जन्मरूप कार्य कहांसे होवेगा इसलिये क्लेशकर्मादिरूप निमित्तके अभाव होनेतें उपासकोंका पुनः इस दुःखरूप मनुष्यलोकमें आगमन नही होवे है इति ॥ १५ ॥

किंच ।

प्रमाणाच्च ॥ १६ ॥

श्रुतिस्मृतीतिहासादिप्रमाणसद्भावादपि तेषां पुनरागमनं न भवतीति बोद्धव्यं तथाचोक्तं सामवेदीयछान्दोग्योपनिषदि 'एष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्त्तं नावर्त्तंते नावर्त्तंत' इति भगवद्गीतायामपि 'शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते । एकया यात्यनावृत्तिमन्यया वर्तते पुन'रिति ब्रह्ममीमांसायामपि 'अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्' इति ॥ १६ ॥

किंच ।

'प्रमाणाच्च' श्रुतिस्मृतिइतिहासादिक प्रमाणोंके होनेतेंभी तिनका पुनरागमन नहि होवे है ऐसा जानना चहिये तथा छांदोग्य उपनिषत्नें लिखा है 'एष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तंते नावर्तंत इति ।' अर्थ—यह जो अर्चिरादिरूप मार्ग कथन किया है सोई देवयान मार्ग और ब्रह्ममार्गभी कहलाता है सो इस मार्गद्वारा गयेहूये पुरुष पुनः इस मनुष्यलोकमें नही आते हैं नहि आते हैं इति । तथा भगवद्गीतामें भी कहा है 'शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते । एकयायात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः' अर्थ—यह जो शुक्ल और कृष्णरूप देवयान और पितृयानमार्गकी दो प्रकारकी गति हैं सो तिनमें एक देवयानवालेकी तो पुनरावृत्ति

नही होवे है और दूसरे पितृयानवालेकी पुनरावृत्ति होवे है इति। तथा ब्रह्ममीमांसामें व्यासजीनेभी लिखा है 'अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ।' अर्थ—नसपुनरावर्तते इत्यादि वेदशब्दोंके प्रमाण होनेतें देवयानमार्गद्वारा गयेहूये उपासकोंकी पुनः इसलोकमें आवृत्ति नही होवे है इति ॥ १६ ॥

यदेतदुपासकानां वैकुंठलोकादपुनरागमनमुक्तं तन्नोपपद्यते कुतः पुराणेतिहासादिषु भगवत्पार्षदानामपि वैकुंठलोकादधः पतनं श्रुयते तत्कथमुच्यते पुनरनावर्त्तनमित्यत्राह ।

श्रवणादिति चेन्नान्यहेतुकत्वात् ॥ १७ ॥

भगवतः पार्षदानां वैकुंठलोकान्निपतनश्रवणादन्येषामितो गतानामुपासकानामपि तद्भविष्यतीति चेत् नैवमुररीकार्यं कुतः अन्यहेतुकत्वात् पार्षदपतनस्यान्यो हि सनकादिशापात्मको हेतुः श्रूयते नतूपासनालब्धाधिकारसमाप्तिस्तत्र कारणं तस्मान्नायं पार्षदन्यायः सर्वत्रानुगच्छति अतः पूर्वोक्तश्रुतिस्मृत्यादिप्रमाणाद्वैकुंठलोकान्नोपासकानां पुनरागमनं भवतीत्यवसेयम् ॥ १७ ॥

यह जों उपासकोंका विष्णु लोकसें पुनः अनागमन निरूपण किया सो युक्त नही है क्योंकि पुराणइतिहासादिकोंमें भगवान्के पार्षदोंका वैकुंठलोकसें नीचे पतन होनासुननेमें आवे है तो तहांसें पुनरागमन नही होता यह वार्ता कैसे माननेमें आवे तहां कहे हैं.

'श्रवणादिति चेन्नान्यहेतुकत्वात्' भगवान्के पार्षदोंका विष्णुलोकसें निपतन सुननेसें यहांसें गयेहूये दूसरे उपासकोंकाभी सो होवेगा ऐसा नही मानना चहिये क्योंकि अन्यहेतुकत्वात् कहिये पार्षदोंके पतन होनेका औरही सनकादिकोंका शापादिरूप हेतु सुननेमें आवे है किंतु उपासनासें प्राप्त भये अधिकारकी समाप्ति तहां कारण नही है इसलिये पार्षदोंके पतनका न्याय सर्वत्र नहि चलसकता यातें पूर्वोक्त श्रुतिस्मृतिआदिक प्रमाणोंसें विष्णुलोकसें उपासकोंका पुनरागमन नही होवे है यह निश्चय करना चहिये इति ॥ १७ ॥

ननु शापवशादप्यागतानामस्मिँल्लोके मनुष्यादिशरीरसंबंधात् पुनर्जन्ममरणात्मको भवबंधः स्यादेव तत्राह ।

निमित्तवशान्न बंधनं पुनरधिकारलाभात् ॥१८॥

शापादिनिमित्तवशाद्विष्णुलोकादत्रागतानां पार्षदादीनां भवबंधनं न भवति कुतः पुनरधिकारलाभात् ते हि यमधिकारं विहाय कार्यवशादत्रागच्छंति तत्कार्यसमाप्त्यनंतरं तमेवाधिकारं पुनः प्राप्नुवंति यथा रामकृष्णादीनामवताराणां भूभारनिर्हरणादिकार्यवशादत्रागमनं पुनश्च स्वधामगमनं श्रूयते भीष्मादयश्चात्रोदाहरणीयाः स हि पूर्वजन्मनि वसुविशेषोऽभवत् वसिष्ठशापात् भीष्मत्वं प्राप्य देहपातांते

पुनः स्वाधिकारमगमदिति भारतीयमुपाख्यानं अतो नात्रागमनमात्रेण वंधो भवितुमर्हति महर्षिर्व्यासोपीममर्थं ब्रह्ममीमांसायां सूत्रयामास । 'यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणामिति तस्माद्भगवदुपासनया वैकुंठलोकं गतानां पुरुषाणामस्मिँल्लोके पुनरावर्त्तनं न भवतीत्यवसेयम् ॥१८॥

सनकादिकोंके शापादि कारणसेंभी इसलोकमें आयेहूये पार्षदोंको मनुष्यादिक शरीरके संबंधसें पुनः जन्ममरणरूप संसारबंधन अवश्य होवेगा ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'निमित्तवशान्न बंधनं पुनरधिकारलाभात्' शापादिनिमित्तके वशसें विष्णुलोकसें यहां आयेहूये पार्षदोंको भवबंधन नही होवे है काहेतें 'पुनरधिकारलाभात्' कहिये सो पार्षदलोक जिस अधिकारको छोडकर किसी कार्यके वशसें इस लोकमें आते हैं तो तिस कार्यकी समाप्तिके अनंतर सो फिर तिसी अधिकारको प्राप्त हो जाते हैं जैसे रामकृष्णादिक अवतारोंका भूमिभारनाशनादि कार्यके वशसें यहां आगमन और फिर अपने धामको गमन सुननेमें आवे है तथा इस स्थलसें भीष्म पितामहादिकोंका उदाहरणभी जान लेना सो भी पहले अष्टवसुवोंमेंसें एक वसु था और वसिष्ठमुनिके शापसें भीष्मका जन्म लेकर फिर देहपात होनेके अनंतर स्वर्गमें जाकर अपने वसुपणेके अधिकारको प्राप्त होता भया यह वार्ता महाभारतमें प्रसिद्ध है यातें इस लोकमें आगमनमात्रसे संसारबंधन नही

हो सके है तथा महर्षि व्यासजीनेभी ब्रह्ममीमांसामें कहा है 'याव-दधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम् ।' अर्थ—अधिकारी पुरुषोंकी अधिकारकी समाप्तिपर्यंत स्थिति रहती है बीचमें किसी निमित्तसें जन्म लेनेसें तिनको संसारबंधनकी प्राप्ति नही होवे है इति । यातें परमेश्वरकी उपासना करके विष्णुलोकमें गयेहूये पुरुषोंका इसलोकमें पुनरागमन नही होवे है यह निश्चय करना चहिये इति ॥१८॥

तदेवं सगुणोपासकानां क्रममुक्तिप्रकारं दर्शयित्वाधुना निर्गुणपरमेश्वरस्वरूपचिंतकानां कैवल्यमोक्षप्रकारं वर्णयति ।

पूर्णज्ञानवतामगमनम् ॥ १९ ॥

वेदांतशास्त्रपरिशीलनेन 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शांत उपासीत ।' 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव । न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरमि'-त्यादिश्रुतिस्मृत्यनुसारेण ये सर्वव्यापकमव्यक्तं सच्चिदानंदात्मकं परमात्मानं तच्चिंतनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनमितिन्यायेन सततमभेदबुद्ध्या चिंतयंति तेषां पूर्णज्ञानवतां ज्ञानाग्निदग्धशुभाशुभकर्मणां लोकांतरगमननिमित्तवासनारहितानां निष्कामाना शरीरपातानंतरमितो वैकुंठादिलोकेषु गमनं न भवति तथाच यजुर्वेदीयबृहदारण्यकवचनं 'अथाकामयमानो योऽकामो निष्काम आत्मकाम आप्तकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामंतीति' भारतेपि

'सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतहितस्य च । देवापि मार्गे मुह्यंति अपदस्य पदैषिण' इति ॥ १९ ॥

इसप्रकारसें सगुणोपासकोंकी क्रममुक्तिका प्रकार निरूपण करके अत्र निर्गुण अव्यक्त परमेश्वरके आराधन करनेहारे पुरुषोंके कैवल्यमोक्षका प्रकार वर्णन करे हैं.

'पूर्णज्ञानवतामगमनम्' वेदांतशास्त्रके चिरकालपर्यंत विचार करणेसें 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शांत उपासीत ।' अर्थ– यह सर्व जगत् ब्रह्मरूपही है और सोई सर्व विश्वकी उत्पत्ति स्थिति और विनाशका कारण है इति । तथा 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव' न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ।' अर्थ– हे अर्जुन यह सर्व जगत् सूत्रमें मणियोंकी न्यांई मेरेमें परोया हूया हैं तथा इस जगत्में चराचर ऐसी कोई वस्तु नहि है जो मेरेसेविना होवे अर्थात् सर्व वस्तुवोंमें मैं व्यापक हुं इति । इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंके सिद्धांतके अनुसार जो ज्ञानी पुरुष सर्वव्यापक सच्चिदानंदस्वरूप परमात्माका निरंतर अभेदबुद्धिसे चिंतन करते हैं अर्थात् परमात्माके यथार्थ स्वरूपको जानकर सर्वदा काल तिसके चिंतनपरायण रहते हैं ऐसे पूर्ण ज्ञानवान् और ज्ञानरूप अग्निकरके दग्ध हो गये हैं शुभाशुभ कर्म जिनके तथा लोकांतरगमनका हेतुभूत जो भोगवासना है तिसतें रहित निष्काम पुरुष हैं तिनका शरीरपातके अनंतर पूर्वोक्त उपासकोंकी न्यांई वैकुंठादिक लोकोंमें

गमन नही होवे है तथा यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषत्में भी लिखा है 'अथाकामयमानो योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामंति ।' अर्थ—जो ज्ञानी पुरुष सर्व कामनासें रहित निष्काम पूर्णकाम और केवल आत्मस्वरूपमें स्थितिवाला होवे है तिसके प्राणोंका परलोकमें गमन नही होवे है इति । तथा महाभारतके शांतिपर्वमेंभी कहा है 'सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतहितस्य च । देवापि मार्गे मुह्यंति अपदस्य पदैषिणः ।' अर्थ—जो ज्ञानी पुरुष सर्वभूतप्राणियोंका आत्मारूप है और सर्वभूतोंके हितमें वर्तता है तिसके मार्गमें देवताभी मोहको प्राप्त होते हैं क्योंकि सो विनागमनवालेका खोज ढूंडते हैं इति ॥ १९ ॥

लोकांतरगमनाभावे तस्य तत्त्वविदो जीवात्मनः का व्यवस्था भवतीति जिज्ञासायामाह ।

अत्रैव ब्रह्मयोगो व्यापकत्वात् ॥ २० ॥

सर्वत्र ब्रह्मबुद्धेर्निर्वासनस्य तत्त्वविदः शरीरपातदेश एव ब्रह्मणा सहैकीभावो भवति कुतः व्यापकत्वात् सर्वत्र परमात्मनो विद्यमानत्वात् । 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः ।' 'यावत्किंचिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेपि वा । अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थित' इत्यादिश्रुतेः । 'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना । विष्टभ्याहमिदं कृत्स्न-

मेकांशेन स्थितो जग'दित्यादिस्मृतेश्च यथा भग्ने घटे घटाकाशस्य तत्रैव महाकाशेन सार्द्धमेकीभावो जायते तद्वदात्मविदोपि ज्ञानप्रभावेणांतःकरणात्मकोपाधिविश्लेषे सति सर्वगे परमात्मन्येकीभावो भवतीति ॥ २० ॥

जो ज्ञानी पुरुषका लोकांतरमें गमन नही होवे है तो मृत्युकालके अनंतर तिसके जीवात्माकी क्या दशा होवे है ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं.

'अत्रैव ब्रह्मयोगो व्यापकत्वात्' सर्व जगत्को ब्रह्मस्वरूप जाननेवाला और सर्व वासना करके रहीत जो तत्त्ववेत्ता पुरुष है तिसका जिस देशमें शरीरपात होवे है तो तहांही तिसके जीवात्माका ब्रह्मके साथ एकीभाव हो जावे है क्योंकि 'व्यापकत्वात्' कहिये निर्गुण अव्यक्त परमात्मा सर्वत्र ही व्यापक है तथा श्रुतिमेंभी कहा है 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' 'यावत्किंचित् जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेपि वा । अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ।' अर्थ— सो परमात्मा आकाशकी न्यांई सर्वत्र व्यापक और नित्य है तथा यावत्मात्र जगत् देखने और सुननेमें आता है तिस सर्वको अंतर और बाहिरसे व्याप्य करके नारायण परमात्मा स्थित होय रहा है इति । तथा भगवद्गीतामेंभी कहा है 'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना । विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ।' अर्थ—हे अर्जुन यह सर्व जगत् मेरे अव्यक्त स्वरूपसें व्यास होय रहा है

और मैं अपने एक अंशसें इस जगत्को स्तंभन करके स्थित होय रहा हुं इति। सो जैसे घटके टूटनेसें घटाकाशका तहांही महा आकाशके साथ एकीभाव हो जावे है तैसेही ज्ञानी पुरुषकाभी ज्ञानके प्रभावसे अंतःकरणरूप उपाधिके वियोग होजानेसें सर्वत्र व्यापक परमात्मामें एकीभाव हो जावे है इति ॥ २० ॥

निगमाच्च ॥ २१ ॥

वेदवचनादप्यात्मतत्त्वविदोत्रैव परमात्मन्येकीभावो निश्चेयः। तथाच यजुर्वेदीयकठोपनिषद्वाक्यं 'यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम। यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामा येस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुत' इति अथर्ववेदीयमुंडकोपनिषद्यपि 'संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशांताः। ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशंतीति' ॥ २१ ॥

किंच।

'निगमाच्च' वेदवचनके प्रमाण होनेसेंभी ज्ञानी पुरुषका परमात्मामें एकीभाव होना निश्चय करना चहिये तथा कठउपनिषत्में लिखा है 'यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम' 'यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामा येस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।' अर्थ—जैसे स्वच्छ

जलमें दूसरा स्वच्छ जल डालनेसें मिलकर एक जैसा हो जावे है तैसेही आत्मतत्त्वके जाननेहारे ज्ञानी पुरुषका जीवात्मा परमात्माके साथ मिलकर एकरूप हो जाता है तथा जिस कालमें ज्ञानके प्रभावसें इस पुरुषकी हृदयमें रहनेहारी सर्वकामना छूट जाती हैं तो तिसकालमें यह मर्त्यपुरुष अमृत हो जावे है और यहांही ब्रह्मको प्राप्त हो जावे है इति । तथा मुंडकउपनिषत्सेंभी लिखा है 'संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशांताः । ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशंति ।' अर्थ– ज्ञानकरके तृप्त शुद्धात्मा विरक्त शांतरूप और धैर्यवाले ऋषिलोक सर्वव्यापक परमात्माको सर्व तरफसें प्राप्त होकर समाहित चित्त भये सर्वरूप परमात्मामें प्रवेश करते हैं इति ॥ २१ ॥

यथा वैकुंठलोकं गतानामुपासकानां सालोक्यादिमुक्तिभेदो भवति तथात्रापि कैवल्यमोक्षे न्यूनाधिकभावो भवति न वेति जिज्ञासायामाह ।

गतिसाम्यं विभागाभावात् ॥ २२ ॥

निर्गुणपरमेश्वरस्वरूपचिंतकानां देहांते परमात्मन्येकीभावं गतानां सर्वेषां तुल्यैव गतिर्भवति कुतः विभागाभावात् सति हि देशादिविभागे मुक्तिविभागो जायते सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्ये सर्वत्र समव्यापके निराकारे

परमात्मनि तु देशादिविभागाभावात् न गतिविभागो भवति तथाचोक्तं महाभारतमोक्षधर्मे । 'न भवति विदुषां ततो भयं यदविदुषां सुमहद्भयं भवेत् । नहि गतिरधिकास्ति कस्यचित् सति हि गुणे प्रवदंत्यतुल्यता'मिति ॥ २२ ॥

इसप्रकारसे पूर्ण ज्ञानवान् पुरुषोंकी परमात्माके साथ एकता निरूपण करके अब जैसे विष्णुलोकमें गयेहूये उपासकोंकी मुक्तिमें सालोक्य सामीप्यादि भेद होवे हैं तैसे यहां कैवल्यमोक्षमेंभी न्यूनाधिक भाव होवे है कि नही ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं.

'गतिसाम्यं विभागाभावात्' निर्गुण परमेश्वरके स्वरूपके चिंतन करनेहारे ज्ञानी पुरुष जो देहपातके अनंतर परमात्मामें एकीभावको प्राप्त होते हैं तिन सर्वकी तुल्यही गति होवे है न्यूनाधिकभावसें नहि होवे है क्योंकि विभागाभावात् कहिये निर्गुण अव्यक्त परमात्मामें किसी प्रकारका विभाग नही है और देशकालादिके विभाग होनेसेंही मुक्तिमें विभाग हो सके है सो सजातीय विजातीय स्वगतभेदसें रहित सर्वत्र समव्यापक निराकार परमात्मामें देशकालादि विभागके नही होनेतें मुक्तिका विभाग नही होवे है तथा महाभारतके मोक्षधर्मपर्वमेंभी कहा है 'न भवति विदुषां ततो भयं यदविदुषां सुमहद्भयं भवेत् । नहि गतिरधिकास्ति कस्यचित् सति हि गुणे प्रवदंत्यतुल्यताम्' । अर्थ—जन्ममरणरूप संसारका जो अज्ञानी लोकोंको भय होवे है सो तत्त्ववेत्ता ज्ञानी पुरुषोंको नही होवे है

और कैवल्यमोक्षमें किसीकी गति अधिक नहि होवे है क्योंकि न्यूनाधिक भाव तो गुणोंके कारणसें होवे है निर्गुण ब्रह्ममें नहि होवे है इति ॥ २२ ॥

किंच ।

ज्ञानैकत्वाच्च ॥ २३ ॥

निर्गुणपरमात्मविषयस्य ज्ञानस्यैकविधत्वादपि सर्वेषां ज्ञानिनां गतेस्तुल्यत्वमवसेयं 'एकधैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवं नान्यः पंथा विद्यतेयनाय मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचिने' त्यादिश्रुतेः। 'व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदने'त्यादिस्मृतेश्च यश्च वासिष्ठादिषु वेदांतग्रंथेषु निर्गुणज्ञानेपि भूमिकाक्रमो निरूपितः स तु तत्साधनेष्वेव तत्पुष्ट्यर्थमभिहितोस्तीति बोद्धव्यं न तु साक्षादपरोक्षज्ञाने निर्विभागत्वान्निर्गुणस्य परमात्मन इति । सगुणब्रह्मणि तूपासनाभेदाद्गतिभेदो युक्त एवेत्यवगंतव्यम् ॥ २३ ॥

किंच ।

'ज्ञानैकत्वाच्च' निर्गुण अव्यक्त परमात्माविषयक ज्ञानके एकविध होनेसेंभी सर्वज्ञानी पुरुषोंकी गति तुल्यही होवे है क्योंकि 'एकधैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवं नान्यः पंथा विद्यतेयनाय मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन ।' अर्थ—सो परमात्माका स्वरूप एकही प्रका-

रसें जानना चहिये मोक्षके लिये एक ज्ञानके सिवाय दूसरा कोई मार्ग नही है तथा केवल मनसेंही परमात्माको प्राप्त होना चहिये क्योंकि तिसमें द्वैतपणादिक किंचित् भी नही है इति । इत्यादि श्रुतियोंमें तथा 'व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन ।' अर्थ—हे कुरुनंदन ज्ञानके निश्चयरूप बुद्धि सर्व ज्ञानियोंकी एकही होवे है इति । इत्यादिस्मृतिवचनोंमें निर्गुण परमात्माका ज्ञान एकही प्रकारका श्रवणमें आवे है और जो कहीं योगवासिष्ठादिक वेदांत ग्रंथोंमें निर्गुण ज्ञानमें भी सप्त भूमिकाका क्रम निरूपण किया है सो तो ज्ञानके साधनोंमें ज्ञानकी पुष्टिके लिये निरूपण किया जानना साक्षात् अपरोक्ष ज्ञानमें नही क्योंकि निर्गुण परमात्मामें किसी प्रकारका विभाग नही है इस लिये तिसमें ज्ञानका भेद नही संभवे है और पूर्वोक्त सगुण ब्रह्ममें तो उपासनाके भेद होनेतें गतिका भेद युक्तही है इति ॥ २३ ॥

एवं सर्वव्यापके परमात्मन्येकीभावं गतानां मुक्तानां पुनः कदाचित्ततः पृथक्त्वं भवति न वेति जिज्ञासायामाह ।

न पुनर्वियोगोऽश्रवणात् ॥ २४ ॥

परमात्मन्येकीभावं गतानां मुक्तानां न पुनस्ततो वियोगो भवति कुत एतद्विज्ञायते अश्रवणात् नहि कुत्रापि श्रुतिस्मृतीतिहासादिषु कैवल्यमोक्षप्रतिपादकेषु शास्त्रेषु तेषां पुनः परमात्मनः सकाशात् पृथक्त्वं श्रूयते प्रत्युत 'यस्तु

विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः । स तु तत्पद-माप्नोति यस्माद्भूयो न जायते’ ‘मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते । यद्गत्वा न निवर्त्तंते तद्धाम परमं ममे’त्यादि-श्रुतिस्मृतिवाक्येष्वपृथक्त्वमेव श्रूयते तस्मान्न परमात्मन्ये-कीभावं गतानां पुनस्ततः कदापि पृथक्त्वं भवतीति ॥२४॥

इसप्रकार सर्वव्यापक परमात्मामें एकीभावको प्राप्त भये मुक्त पुरुषोंका फिर कदाचित् तिससें पृथक्पणा होवे है कि नही होवे है ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं.

‘न पुनर्वियोगोऽश्रवणात्’ परब्रह्म परमात्मामें एकीभावको प्राप्त भये मुक्त पुरुषोंका पुनः तहांसे कदाचित्भी वियोग नही होवे है क्योंकि अश्रवणात् कहिये श्रुतिस्मृतिइतिहासादिक जो कैवल्य-मोक्षके प्रतिपादक शास्त्र हैं तिनमें कहींभी मुक्त पुरुषोंका परमा-त्माके सकाशसें फिर जुदा होना श्रवणमें नही आवे है किंतु ‘यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः । स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ।’ अर्थ—जो पुरुष विज्ञानवान् और शांतम-नवाला सदा शुचि होवे है सो तिस मोक्षपदको प्राप्त होवे है की जहांसें फिर जन्म नही होवे है इति तथा ‘मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते । यद्गत्वा न निवर्तंते तद्धाम परमं मम ।’ अर्थ—हे कौंतेय, मेरे स्वरूपको प्राप्त होनेसें फिर जन्म नही होवे है तथा जिस पदको ज्ञानी पुरुष प्राप्त होकर फिर पीछे लोटकर नहिं

आते हैं सोई मेरा परम धाम है इति । इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंमें उलटा परमात्मासे पुनः वियोग नही होनाही श्रवणमें आवे है यातें परमात्मामें एकीभावको प्राप्त भये पुरुषोंका पुनः कदाचित्भी तहांसें पृथक्पणा नही होवे है इति ॥ २४ ॥

किंच ।

सामग्रीविरहाच्च ॥ २५ ॥

ब्रह्मणः सकाशात् पृथक्त्वस्य या देहेन्द्रियाद्यात्मिका जीवात्मनः सामग्री विद्यते सा कैवल्यदशायां विनश्यति 'गताः कलाः पंचदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु । कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवंतीति' श्रुतिवचनात् अतो जीवत्वापादकस्यांतःकरणाद्युपाधेर्विरहात् घटनाशे घटाकाशस्येव महाकाशे परमात्मनि निलीनस्य जीवात्मनः पुनरुत्थानं वियोगो वा न संभवति तथाच्च मुंडकोपनिषद्वचनं 'यो ह वै परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रंथिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवतीति' ॥ २५ ॥

किंच ।

'सामग्रीविरहाच्च' परब्रह्मके सकाशसें पृथक् होनेकी जीवात्माकी जो देह इन्द्रियादिकरूप सामग्री है तिसके नहि रहनेसेंभी जीवात्माका परमात्मासें पुनः वियोग नही होवे है क्योंकि कैवल्यमोक्ष-

दशामें सो सर्वही सामग्री नाशको प्राप्त हो जावे है तथा मुंडकउ-पनिषत्‌मेंभी लिखा है 'गताः कलाः पंचदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु । कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवंति ।' अर्थ—जिस कालमें ज्ञानी पुरुष कैवल्य मोक्षको प्राप्त होवे है तो तिसकी प्राणादिक जो पंचदशकला होवे हैं सो सर्वही अपने अपने कारणोंमें लीन हो जाती हैं और तिसकी नेत्रादिक जो इन्द्रियां होवे हैं सो भी सर्व अपने अपने अधिष्ठाता सूर्यादिक देवतायोंमें लीन हो जाती हैं तथा तिसके कर्म और जीवात्मा परब्रह्ममें एकीभावको प्राप्त हो जावे है इति । यातें जीवपणेकी संपादक अंतःकरणादि उपाधिके नाश हो जानेसें पुनः जीवात्माका परमात्मासें जुदा होना नही होसके है सो जैसे घटरूप उपाधिके नाश होनेसें घटाकाशका महाकाशमें विलय हो जावे है तैसेही ब्रह्ममें लीन भया जीवात्मा ब्रह्मरूपही हो जावे है पुनः तहांसे वियोग वा उत्थानको नही प्राप्त होवे है तथा मुंडकउपनिषत्‌काही वचन है 'यो ह वै परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याऽब्रह्मवित्कुले भवति तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रंथिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति' । अर्थ—जो पुरुष परब्रह्मके स्वरूपको सम्यक् प्रकारसें जानता है सो ब्रह्मरूपही हो जावे है और तिसके कुल वा संप्रदायमें कोई अज्ञानी नही होवे है और सो सर्व प्रकारके क्लेश तथा

पापोंको तर जावे है तथा हृदयकी अज्ञानरूप सर्व ग्रंथियोंसें रहित भया कैवल्य मोक्षको प्राप्त हो जावे है इति ॥ २५ ॥

जगदादौ ब्रह्मस्वरूपत्वान्नित्यमुक्तस्य जीवात्मनो ब्रह्मणः पृथक्त्वापादकाया लिंगशरीरसामग्र्याः कुतः संबंधो भवतीति जिज्ञासायां स्वदर्शनानुसारेणोत्तरमाह ।

लिंगयोगः प्रकृतिपरिणामादीश्वरेच्छया ॥२६॥

ईश्वरेच्छया त्रिगुणात्मिकायाः प्रकृतेः परिणामाज्जीवात्मनो मनःप्राणेन्द्रियात्मकस्य लिंगशरीरस्य संयोगो जायते अत्रायं सिद्धांतः तदत्र सर्वस्मिन् जगति चेतनमचेतनं चेति तत्त्वद्वयमेवास्ति 'चिज्जडाभ्यां विलक्षणवस्त्वभावान्न तत्त्वांतरकल्पना युक्ता' तयोरेकं ब्रह्म परमात्मा पुरुषश्चेत्युच्यते प्रधानं प्रकृतिर्माया चेति द्वितीयमभिधीयते द्वावेवेमौ पदार्थौ देशतः कालतश्चानादी तथाऽनंतौ च तयोः प्रधानं परिणामशीलं प्रसवधर्मि त्रिगुणात्मकमचेतनं च पुरुषस्त्वपरिणामी प्रसवधर्मरहितश्चिद्रूपो निर्गुणश्च तदेतयोरुभयोः प्रकृतिपुरुषयोः परस्परं स्वस्वामिभावेनानादिसंबंधोऽस्ति 'इममेव संबंधं पुरस्कृत्य वेदांतशास्त्रे शक्तिशक्तिमतोरभेदाभिप्रायेणैकमेवाद्वितीयमित्युक्तं' तयोर्य एकोऽनादिसंयोगः स ईश्वर इत्यभिधीयते प्रकृतेः समग्रसत्त्वेन समन्वयादीश्वरस्य सर्वज्ञत्वसर्वशक्तित्वादिगुणविशिष्टत्वं ततस्त-

स्य स्वामित्वेन प्रकृत्या क्रीडतः परमेश्वरस्य बहुस्यां प्रजायेयेतीच्छया क्रियाशक्तिसमन्वितायां प्रकृतौ परिणामपरंपरा जायते परिणमनशीलत्वेपि प्रधानस्य मया केन रूपेण कथं कदा कस्योपयोगित्वेन परिणंतव्यमिति ज्ञानाभावान्न स्वतः परिणामः संभवत्यतः परमेश्वरेच्छानुसारेण तस्य महदादिरूपेण परिणामो जायते ततो महदादिभ्यश्च मनःप्राणेन्द्रियात्मकस्य लिंगशरीरस्योत्पत्तिर्भवतीति यत्र यत्र च लिंगशरीराविर्भावस्तत्र तत्रैव चितिशक्तेस्तेन तेन शरीरेण घटेनेवाकाशस्य संयोगो जायते 'इममेव संयोगं केचिच्चैतन्यप्रतिबिंवमप्याहुः' तस्यैव लिंगशरीरोपाधिसंयुक्तस्य चैतन्यस्य जीव इति संज्ञा भवति लिंगशरीरमंतरा केवलमविद्योपहितचैतन्यस्यैव जीवत्वं न मंतव्यं कारणावस्थामविद्यायाः प्रकृतिरूपत्वेन व्यापकत्वान्निरवयवत्वाच्च न तस्यास्तत्रेश्वरतः पृथगुपाधित्वं संगच्छते व्यापकत्वं त्वविद्याया जगदुपादानतया प्रसिद्धमेव निरवयवत्वं चाकाशादिनिरवयवपदार्थकारणत्वाद्विज्ञेयं नहि सावयवकारणस्य निरवयवं कार्यं भवितुमर्हति निरवयवस्य तु सावयवं कार्यं भवति यथाकाशस्य वायुरिति ननु माया चाविद्या च स्वयमेव भवतीति श्रुतेः सत्त्वप्रधानाया रजःप्रधानायाश्च प्रकृतेः

पृथक्त्वमिति चेत् न प्रकृतेर्गुणवैषम्यस्येश्वरेच्छानंतरभावित्वात् न चेश्वरेच्छां विना चित्संनिधानेनैव गुणवैषम्यमिति मंतव्यं तस्य बुद्धिपूर्वकत्वाभावेनोपयोगित्वानुपपत्तेः नित्यसृष्टिप्रसंगाच्च माया चाविद्या चेति श्रुतेस्तु माता स्वयमेव सुतं जनयतीत्येवमर्थोनुसंधेयः। नोचेत् प्रकृतिर्जगद्रूपापि स्वयमेव भविष्यति ततश्च पूर्वोक्तदोषानुषंगः 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तदात्मानं स्वयमकुरुते'त्यादिश्रुतिवचनाच्च न तदानीमीश्वरतो जीवस्य पृथक्त्वं संभवति अतोंतःकरणादिरूपेण परिणतैवाविद्या परिच्छिन्नत्वेनात्मनिजीवभावमापादयति तस्मादंतःकरणावच्छिन्नचैतन्यस्यैव जीवत्वमस्तीति ज्ञातव्यं। तत्र जीवचैतन्यस्यानुत्पत्तेरंतःकरणसंयोगस्य चानादित्वाज्जीवस्याप्यनादित्वमुच्यते प्रकृतेरल्पसत्त्वेन समन्वयात्स्थूलशरीरसंबंधात् बाह्यविषयोपरागाच्च जीवस्याल्पज्ञत्वाल्पशक्तित्वादिधर्मविशिष्टत्वं न सुषुप्तावंतःकरणस्य विनाशो भवतीति मंतव्यं तत्र तस्य सूक्ष्मरूपेण विद्यमानत्वात् तमोगुणप्रधाना हि निद्रावस्था ततस्तत्र तमसा निरुद्धमंतःकरणं न विशेषज्ञानायालं भवतीत्यवगंतव्यं तथा च योगशास्त्रे 'अभावप्रत्ययालंबनावृत्तिर्निद्रा' इत्यस्मिन् सूत्रे सुषुप्तिरपि चित्तवृत्तिविशेष एवे-

त्युक्त सुखमहमस्वाप्सं न च किंचिदवेदिषमिति सुप्तो त्थितस्य स्मरणेन च तत्र चित्तवृत्तेरस्तित्वमनुमीयते तथैव प्रलयेप्यंतःकरणानां सूक्ष्मबीजरूपेण प्रकृतावस्थानं भवति सांख्यमतानुसारेण कस्यापि कार्यस्य स्वरूपतो विनाशासंभवात् नो चेदुपाध्यभावे जीवात्मनां स्वतो मुक्तिप्रसंगः स्यात् कारणावस्थायां प्रकृतेर्व्यापकत्वाच्च न जीवोपाधित्वं संभवति प्रलयश्च 'तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत् तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत' इत्यादिश्रुतेः चित्रपटसंकोचोपमो ज्ञेयः नहि पटसंकोचनेन तद्गतचित्राणामभावो जायते तद्वत् तत्रापि प्रकृतौ सूक्ष्मबीजरूपेण सृष्टेरवस्थानं ज्ञातव्यं सर्गांतरे चेश्वरेच्छया प्रकृतेर्गुणपरिणामक्रमेण तान्येव पूर्वार्जितकर्मसंस्कारयुक्तान्यंतःकरणान्याविर्भवंति यथा वर्षारंभे पृथिव्यां निलीनानि बीजानि पुनः प्ररोहंति चितिसंयोगश्च तेषु स एव तदा स्फुटत्वमायाति सर्गारंभकारणेश्वरेच्छायां तु जीवादृष्टमेव निमित्तं भवतीत्येवमनादित्वात् सर्गपरंपराया जीवानामप्यनादित्वमेव समंजसं तत्रेश्वरस्य कारणोपाधित्वान्नियामकत्वं जीवानां च कार्योपाधित्वान्नियम्यत्वं कैवल्यदशायां तु जीवोपाधिविरहे तयोर्जीवेश्वरयोरेकत्वमेव भवतीति ॥ २६ ॥

जगतके आदिमें ब्रह्मस्वरूप होनेतें नित्यमुक्तस्वरूप जीवात्माका ब्रह्मसे पृथक्पणेकी हेतुभूत लिंगशरीर सामग्रीके साथ कहांसे संबंध होवे है ऐसी जिज्ञासा होनेतें इस दर्शनके अनुसार तिसका उत्तर कथन करे हैं.

'लिंगयोगः प्रकृतिपरिणामादीश्वरेच्छया' ईश्वरकी इच्छासे सत्त्व रज तम तीनों गुणोंकी साम्यावस्थारूप जो प्रकृति है तिसके परिणाम होनेतें जीवात्माका मन प्राण इन्द्रियरूप लिंगशरीरके साथ संयोग होवे है यहां यह सिद्धांत है इस चराचर सर्व जगत्में चेतन और अचेतन दोही तत्त्व हैं (चेतन और जडसे विलक्षण कोई वस्तु नही है यातें और किसी तत्त्वकी कल्पना करणी युक्त नही है) सो तिनमें एक तो ब्रह्म परमात्मा और पुरुष कहा जावे है और दूसरेको प्रधान प्रकृति और माया कहते हैं सो यह दोनों पदार्थ देश और कालसे अनादि तथा अनंत हैं अर्थात् इनका देश और कालसे कभी अंत नही होता तिनमें प्रकृति परिणामशील प्रसवधर्मवाली सत्त्व रज तम त्रिगुणस्वरूप और जड है तथा पुरुष अपरिणामी प्रसवधर्मरहित चेतनस्वरूप और निर्गुण है सो इन प्रकृति पुरुष दोनोंका परस्पर सेवकस्वामिभावसे अनादि संबंध है इसी संबंधको लेकर वेदांतशास्त्रमें शक्ति और शक्तिमानके अभेदके अभिप्रायसे एक अद्वितीय ब्रह्म कथन किया है सो तिन प्रकृति पुरुष दोनोंका जो एक अनादि संयोग है तिसका नाम ईश्वर है सो प्रकृतिके संपूर्ण सत्त्वगुणके संबंधके कारणसे ईश्वर सर्वज्ञत्व

सर्वशक्तित्वादि गुणोंकरके संयुक्त है सो तिस प्रकृतिके साथ स्वामिभावसे क्रीडा करते हूये परमेश्वरकी 'वहुस्यां प्रजायेय' अर्थात् मैं एकसे अनेकरूप होकर उत्पन्न होवुं ऐसी इच्छा होनेसें तिस प्रकृतिमें क्रियाशक्ति प्रकट होकर परिणामका प्रारंभ होवे है सो यद्यपि प्रकृति परिणाम स्वभाववाली भी है परंतु मैं किसरूपसें किस प्रकारसें किस कालमें किसके उपयोगीपणेसें परिणाम करूं ऐसा प्रकृतिको ज्ञान नही होनेतें तिसका स्वतः परिणाम नही संभवे है यातें परमेश्वरकी इच्छाके अनुसार तिसका महत्तत्त्वादिरूपसे परिणाम होवे है पश्चात् महत्तत्त्वादिकोंसें मन प्राण इन्द्रियरूप लिंगशरीरकी उत्पत्ति होवे है और जहां जहां लिंगशरीरका आविर्भाव होवे है तहां तहांही तिसमें सर्वव्यापक चेतनशक्तिका घटके साथ आकाशकी न्यांई संयोग होवे है (इसी संयोगको वेदांतमतमें चैतन्यका प्रतिबिंब भी कहते हैं) तिस लिंगशरीर उपाधियुक्त चैतन्यका जीव नाम है लिंगशरीरसे विना केवल अविद्यासंयुक्त चैतन्यको जीव नही मानना चहिये क्योंकि कारणावस्थामें प्रकृतिरूप जो अविद्या है सो व्यापक और निरवयव होनेतें ईश्वरसे भिन्न जीवकी उपाधि नही होसके है सो अविद्याका व्यापकपणा तो जगत्का उपादान कारण होनेसें शास्त्रोंमें प्रसिद्धही है तथा निरवयवपणाभी आकाशादिक निरवयव पदार्थोंके कारण होनेतें जान लेना चहिये क्योंकि सावयव कारणका निरवयव कार्य नहि होसके है और निरवयवका तो सावयव कार्य

होवे है जैसे आकाशका कार्य वायु है । और जो कहो कि 'माया चाविद्या च स्वयमेव भवति' इस श्रुतिके प्रमाणसे सत्त्वगुणप्रधान और रजोगुणप्रधान प्रकृति भिन्न होवे है सो वार्ता संभवे नही क्योंकि प्रकृतिके गुणोंका न्यूनाधिकभाव ईश्वरकी इच्छाके अनंतर होवे है ईश्वरकी इच्छाकेविना केवल चेतनके संबंधसेही गुणोंकी विषमता हो जावे है ऐसा नही मानना चहिये क्योंकि सो विषमता विचारसे रहित होनेतें उपयोगवाली नही होवेगी और प्रकृतिको चैतन्यका संबंध नित्य होनेतें नित्यही सृष्टि होनेका प्रसंग होवेगा 'माया चाविद्या च स्वयमेव भवति' इस श्रुतिका तो माता स्वयमेव पुत्रको जनती है इस प्रकारका अर्थ समझना चहिये सो जैसे माता एकली पुत्रको स्वयं नही जनसकती तैसेही प्रकृति भी स्वयंमाया और अविद्यारूप नही हो सकती नही तो प्रकृति जगत्रूप भी स्वयमेव हो जावेगी तो फिर पूर्वोक्त दोषकी प्राप्ति होवेगी । 'किंच तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । तदात्मानं स्वयमकुरुत ।' अर्थ—सो ईश्वर जगत्को रचकरके तिसमें आपही प्रवेशकर जाता भया तथा सो ईश्वर आपही जगत्रूप बनजाता भया इत्यादि श्रुतिवचनोंसे भी जगत्के आदिकालमें ईश्वरसे जीवका पृथक्पणा नही संभवे है यातें अंतःकरणादिरूपसे परिणामको प्राप्त भई अविद्याही परिच्छिन्न होनेतें चैतन्यमें जीवभावको उत्पन्न करती है सो अंतःकरणसंयुक्त चैतन्यकोही जीव समझना चहिये तहां जीवचैतन्यकी तो उत्पत्तिही

नही होवे है और तिसके साथ अंतःकरणके संयोगको अनादि होनेतें जीवभी अनादिही कहा जावे है सो प्रकृतिके अल्प सत्त्व गुणके संबंधके कारणसे स्थूल शरीरके संयोगसे और बाह्यविषयोंमें अनुरागसे जीव अल्पज्ञत्व अल्पशक्तित्वादिधर्मोंकरके युक्त होवे है। जीवात्माकी उपाधि जो अंतःकरण है तिसका सुषुप्तिअवस्थामें नाश नही मानना चहिये क्योंकि तहां सूक्ष्मरूपसे सो विद्यमान रहता है सुषुप्ति अवस्थामें तमोगुणकी प्रधानता होनेतें तहां तमोगुण करके निरोधको प्राप्त भया अंतःकरणविशेष ज्ञानकेलिये समर्थ नही होवे है तथा योगशास्त्रमें भी (अभावप्रत्ययालंबनावृत्तिर्निद्रा) इस सूत्रमें सुषुप्तिअवस्थाभी एक चित्तकी वृत्तिही कथन करी है किंच मैं सुखसें सोता भया कुछभी नही जानता भया इस प्रकारके निद्रासे उठे हूये पुरुषके स्मरण होनेतें सुषुप्तिकालमें सुख और तमोगुणके अनुभव करणेहारी चित्तवृत्तिके सद्भावका निश्चय होवे है। तैसेही प्रलयकालमेंभी अंतःकरणोंकी सूक्ष्म बीजरूपसे प्रकृतिमें स्थिति रहती है क्योंकि सांख्यमतके अनुसार किसीभी कार्यका स्वरूपसे नाश नही होवे है नही तो उपाधिके नही रहनेसे सर्व जीवात्मा-योंकी स्वतःही मुक्ति होनेका प्रसंग होवेगा और कारणावस्थामें प्रकृतिको व्यापक होनेसे जीवात्माका उपाधिपणा बन नही सके है। तथा बृहदारण्यकउपनिषत्में लिखा है 'तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत् तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियते' अर्थ—यह सर्व जगत् उत्पत्तिसे

पहले अव्याकृत था अर्थात् संकुचितावस्थामें था सो पुनः उत्पत्ति-कालमें केवल नाम और रूपसे विस्तृत किया गया है । इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे सो प्रलयभी चित्रपटके संकोचकी न्यांई जानना चहिये सो जैसे पटके संकोच करणेसे तिसमें खिचेहूये चित्रोंका अभाव नही होवे है तैसेही प्रलयकालमेंभी सृष्टिकी प्रकृतिमें सूक्ष्म-रूपसे स्थिति जाननी चहिये । और पुनः दूसरे सर्गोंमें परमेश्वरकी इच्छासे प्रकृतिके गुणोंके परिणामके क्रमसें सोई पूर्वसंचितकर्म-वासनाकरके युक्त अंतःकरण आविर्भाव हो जाते हैं जैसे वर्षाका-लमे पृथिवीमें लीन हूये बीज पुनः अंकुररूपसे प्रकट हो जाते हैं और सोई तिनमें चैतन्यका संयोग तिस कालमें पुनः स्फुटभावको प्राप्त हो जावे है । सर्गके आरंभका हेतु जो ईश्वरकी इच्छा है तिसमें जीवोंके अदृष्टोंकोंही निमित्त जानना चहिये । इस प्रका-रसे सर्गोंकी परंपराको अनादि होनेतें जीवोंकाभी अनादिपणाही मानना युक्त है तहां ईश्वरको कारण उपाधि होनेतें नियामकपणा है और जीवोंको कार्य उपाधि होनेतें नियम्यपणा है और कैवल्य-दशामें जीवकी उपाधिका वियोग हो जानेतें तो जीव और ईश्वर दोनों एकरूपही हो जाते हैं इति ॥ २६ ॥

योयमंतःकरणेन सहात्मनोऽनादिः संयोगो निरूपितस्तस्य किं कारणमस्तीति जिज्ञासायामाह ।

तस्य कारणमज्ञानम् ॥ २७ ॥

तस्य पुरुषांतःकरणयोः संयोगस्याज्ञानमेव कारणं नान्यदित्यर्थः । तथाचोक्तं योगशास्त्रे 'तस्य हेतुरविद्ये'ति अंतःकरणे कारणतयानुगतमज्ञानमावरणस्वभावत्वात् स्वावच्छिन्नं चैतन्यमेवावृणोति ततस्तद्वृत्तिमनुपतितं चैतन्यं तत्कार्यमंतःकरणादिकमात्मत्वेनाभिमन्यमानं तद्गतसुखदुःखभागित्वेन जीवभावमुपगतं शुद्धासंगमपि संसारित्वमुपगच्छति अयमेव तस्यांतःकरणेन सह तादात्म्याध्यासो जीवात्मनो बंध इत्यभिधीयते अनेनैव च तादात्म्यभावेन स्वरूपतो नित्यमुक्तस्याप्यात्मनो बुद्धिगतयोर्बंधमोक्षयोरधिकरणत्वमुपजायते यथा स्वच्छस्यापि काचभाजनस्य रक्तपुष्पसंनिधानेन रक्तवर्णाधिकरणत्वं भवतीति ॥ २७॥

यह जो अंतःकरणके साथ आत्माका अनादि संयोगनिरूपण किया तिस संयोगमें क्या कारण है ऐसी जिज्ञासा होनेतें कहे हैं. 'तस्य कारणमज्ञानम्' तस्य कहिये तिस अंतःकरण और आत्माके संयोगका अज्ञानही कारण है दूसरा नहीं तथा योगशास्त्रमें पतंजलिने भी कहा है 'तस्य हेतुरविद्या' अर्थ—तिस अंतःकरण और पुरुषके संयोगका हेतु अविद्या है इति । सो अंतःकरणमें कारणरूपसे अनुगत जो अज्ञान होवे है सो आवरण स्वभाववाला

होनेतें अपणे अवच्छिन्न चैतन्यकोही आवरण करलेवे है तो पश्चात् सो चैतन्य तिसकी वृत्तिमें पतित भया तिसके कार्य अंतःकरणादिकोंको अपना स्वरूप मानकर तिसके सुखदुःखका भागी हूया जीवभावको प्राप्त भया शुद्ध असंगरूपभी संसारिपणेको प्राप्त होवे है सो यह अंतःकरणके साथ जीवात्माका जो तादात्म्य अध्यास है सोई आत्माको बंध कहिये है और इसी तादात्म्यभाव करके स्वरूपसे नित्यमुक्त भी आत्माकों अंतःकरणसें रहनेहारे बंधमोक्षका अधिकरणपणा होवे है जैसे स्वच्छभी काचके वर्तनको रक्तपुष्पके संबंधसे रक्तवर्णका अधिकरणपणा होवे है इति ॥ २७ ॥

एवमंतःकरणाद्युपाधिसंयुक्तस्यात्मनः पुनस्ततः केनोपायेन मुक्तिर्जायते तत्राह ।

तत्त्वज्ञानेन तदपाये कैवल्यम् ॥ २८ ॥

तत्त्वज्ञानेन प्रकृतिपुरुषयोर्यथावद्भिन्नभिन्नस्वरूपाववोधेन तस्यांतःकरणपुरुषयोस्तादात्म्यभावजनकस्याज्ञानस्यापाये निवृत्ते सति जीवात्मनो भवति कैवल्यं अयमर्थः पूर्वोक्तक्रमादीश्वराराधनेन विशुद्धांतःकरणस्य सत्समागमेनाध्यात्मशास्त्रविचारेण च चिज्जडविवेके दृढत्वमुपगते सति स्वात्मानमुपाधितः पृथग्बुद्ध्वाऽसौ तत्संबंधदोषदर्शी विगताशेषविषयरसतृष्णस्तमुपाधिं जिहासुर्मायाबलप्रशमनाये-

श्वरं शरणं प्रपन्नस्तत्कृपया प्रारब्धकर्मभोगावसाने निर्विघ्नं ततो विमुच्यते लोकांतरगमनहेतुवासनातंतुविश्लेषे लिंग-शरीरसामग्र्या निराधारत्वेन स्वस्वकारणेषु विलयो भवति जीवचैतन्यस्य च सर्वत्र व्यापकब्रह्मण्येकीभावो जायते न ततः कदापि तस्य पुनरुत्थानं भवतीति ॥ २८ ॥

उक्तप्रकारसे अंतःकरणादि उपाधिकरके संयुक्त जो जीवात्मा है तिसकी पुनः तिस उपाधिसे किस उपायकरके मुक्ति होवे है तहां कहे हैं.

'तत्त्वज्ञानेन तदपाये कैवल्यम्' तत्त्वज्ञानेन कहिये प्रकृति पुरुषके यथावत् भिन्न भिन्न स्वरूपके बोध होनेतें पुरुष और अंतःकरणके तादात्म्यके कारणभूत अज्ञानके निवृत्त हो जानेसें जीवात्माका कैवल्यमोक्ष होवे है अर्थात् पूर्वोक्त क्रमसे ईश्वरके आराधन करके पुरुष-के अंतःकरणके शुद्ध होनेसें सत्संग और अध्यात्मशास्त्रोंके विचारसे चैतन्य और जडके विवेकके दृढ होनेतें सो पुरुष अपणे स्वरूपको लिंगशरीररूप उपाधिसे पृथक् जानकर तिस उपाधिके संबंधमें दोषदृ-ष्टिवाला हूया सर्व भोगोंकी तृष्णासे रहित भया तिस उपाधिके छो-डनेकी इच्छावाला हूया तथा मायाके बलकी शांतिकेलिये ईश्वरकी शरणको प्राप्त भया तिसकी कृपासें प्रारब्धकर्मोंके भोगके अंतमें निर्विघ्न उपाधिसे मुक्त हो जावे है अर्थात् लोकांतरोंमें गमनकी हेतुभूत जो वासनातंतु है तिसके टूट जानेसे लिंगशरीरकी सामग्री निराधार

भई अपने अपने कारणोंमें विलय होजावे है और जीव चैतन्यका सर्वत्र व्यापक ब्रह्मके साथ एकीभाव हो जावे है पुनः तिसका कदाचित् भी ब्रह्मसे पृथक्भाव नही होवे है इति ॥ २८ ॥

यद्येवं परमात्मन्येकीभावंगतानां जीवात्मनां ततः पुनरुत्थानं नैव जायते तदा कदापि काले तेषां सर्वेषां क्रमेण क्षीयमाणानां समाप्तिरेव भविष्यतीत्यत्राह ।

न जीवसमाप्तिरानंत्यादानंत्यात् ॥ २९ ॥

वीप्सा शास्त्रसमाप्त्यर्था । मोक्षदशायां परमात्मन्येकीभावं गच्छतां जीवानां कदापि समाप्तिर्न भविष्यति कुतः आनंत्यात् जीवानामनंतत्वादित्यर्थः। नहि तेषां काचित् नियता संख्या विद्यते यतोंतःस्यात् असंख्येयत्वात्तु जीवानामनंतत्वं विज्ञेयं।तथाहि श्वेताश्वतरोपनिषद्वचनं 'वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः सचानंत्याय कल्पते'इति ।। यदि परमात्मनः शक्तिभूतायाः प्रकृतेरपि विकाराणां पृथिव्यादिमहाभूतपरमाणूनां संख्या नैव विद्यते तदा किमु वक्तव्यं परमात्मनोऽवयवभूतानां जीवानां संख्या भविष्यतीति न च क्षीयमाणस्य वस्तुनोऽवश्यमंतो भावीत्यत्रानुमेयं नो चेत् ब्रह्मणोप्यंतवत्त्वं भविष्यति तथाहि ब्रह्माण्डबाह्ये पूर्वदिशमारभ्य पश्चिमां दिशमनिशं महता

वेगेन गच्छतो गरुडादेर्ब्रह्मणः परंपारं दृष्टिगोचरं भवेदेव सति मार्गव्यये तदंतस्यावश्यंभावित्वात् ततस्तस्य ब्रह्मणः पारे किमस्तीति वक्तुमशक्यत्वात् वेदशास्त्रविरुद्धत्वाच्च नेदं समंजसं तस्मात् ब्रह्मणोऽनंतत्वमेव युक्तं तद्वत्तस्यावयवभूतानां जीवानामप्यनंतत्वमेवावसेयं । 'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये' इति न्यायेन कश्चिदेव च कदाचिज्जीवः कैवल्यभावमुपगच्छत्यतोपि न क्षयदोषप्रसंगोनुसंधेयः। अस्य जगतः कदा प्रारंभो बभूवेतिपरंपराज्ञानाभावादनादित्वं कदा चास्य समूलतः समाप्तिर्भविष्यतीति निश्चयाभावाच्चानंतत्वमिति सर्वमवदातम् ॥ २९ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदस्वामिप्रणीतेश्वरदर्शनभाष्ये चतुर्थः पादः ॥ समाप्तं चेदं शास्त्रम् ॥ ४ ॥

उक्त रीतिसे जो परमात्मामें एकीभावको प्राप्त भये मुक्तपुरुषोंका पुनः तहांसे कदापि पृथक्भाव नही होवे है तो किसी कालमें क्रमसे मुक्त होते होते सर्व जीवोंकी समाप्तिही हो जावेगी ऐसी शंका होनेतें समाधान कथन करे हैं.

'न जीवसमाप्तिरानंत्यादानंत्यात्' यहां आनंत्य शब्दका दुबारा उच्चारण शास्त्रकी समाप्तिकेलिये है । कैवल्यमोक्षदशामें परमात्मामें एकीभावको प्राप्त होते जीवोंकी कदाचित्भी समाप्ति नही होवेगी क्युंकि आनंत्यात् कहिये जीव अनंत हैं अर्थात् जीवोंकी कोई निश्चित

संख्या नही है जो जीवोंकी कोई संख्या होती तो तिनका कभी अंतभी हो जाता किंतु असंख्यात होंनेतें जीवोंकी अनंतता जाननी चहिये। तथा श्वेताश्वतरउपनिषत्काभी वचन है 'वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानंत्याय कल्पते' इति। अर्थ—शिरके वालके अग्रभागके सौभागकरके फिर तिस एक भागके सौ भाग करणेसें जितना वारीक होवे है उतनाही सूक्ष्म जीवका स्वरूप जानना चहिये और सो जीव अनंत हैं इति। जो परमात्माकी शक्तिरूप प्रकृतिके विकार जो पृथिवी आदिक महाभूत हैं तिनके परमाणुवोंकीही संख्या नही है तो परमात्माके अवयवरूप जो जीव हैं तिनकी संख्या होवेगी इस वार्ताका तो क्याही कहना है तथा क्षय होनेवाली वस्तुका एक दिन अवश्य अंत होवेगा ऐसा अनुमानभी इस जगामें नही करना चहिये क्योंकि जो वस्तु अनंत होवे है तिसका व्यय होनेसे क्षय नही होवे है नही तो ब्रह्मकोभी अंतवाला मानना पडेगा जैसे कि ब्रह्मांडके वाहिर पूर्वदिशासे आरंभ करके पश्चिमदिशाके सन्मुख निरंतरही वडेवेगसे चलते हूये गरुडआदिक शक्तिमान् पुरुषको ब्रह्मका परलापार मिलही जावेगा क्योंकि मार्गके व्यय होनेतें तिसका अंत अवश्य आना चहिये और पुनः तिस ब्रह्मके परे क्या वस्तु है इस वार्ताका कथन नही होसके है सो यह कल्पना वेद और शास्त्रोंसे विरुद्ध होनेतें ठीक नही है यातें ब्रह्मका अनंतपणाही युक्त है और तैसेही तिसके अवयव

रूप जीवोंका भी अनंतपणाही निश्चय करना योग्य है किंच 'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये' इस गीतावचनके अनुसार कोईएक किसी कालमेंही जीव कैवल्य मोक्षको प्राप्त होवे है यातेंभी जीवोंकी समाप्तिकी शंका नही करणी चहिये । सो इस जगत्का किस कालसे आदिसे आरंभ हूया है इस वार्ताका परंपरा किसीकोभी ज्ञान नही होनेतें इसका अनादिपणा सिद्ध होवे है और तथा इस जगत्की पुनः किस कालमें अंतमें संपूर्ण समाप्ति होवेगी इस वार्ताकाभी किसीको निश्चय नही होनेतें इसका अनंतपणा सिद्ध होवे है यातें पूर्वोक्त सर्व वार्ता निर्दोष है इति ॥ २९ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदस्वामिप्रणीतेश्वरदर्शनभाषाटीकायां चतुर्थः पादः ॥
समाप्तं चेदं शास्त्रम् ॥ ४ ॥

॥ श्रीविष्णुस्तोत्रप्रारंभः ॥



जयमाधवमंजुलाकृते जयविष्णोनलिनायतेक्षण ॥
जयजन्मजराविपत्तिहन् जयवैकुंठगतेजगत्पते ॥ १ ॥
मकराकृतिकुंडलोज्ज्वलं वनमालापरिशोभिकंधरम् ॥
मणिरत्नकिरीटशोभितं तवरूपंस्मरतांकुतोभयम् ॥२॥
तवपादसरोजपोतकं समुपाश्रित्यदृढंविपश्चितः ॥
भवसागरवारिदुस्तरं कमलानाथतरंतिलीलया ॥ ३ ॥
कमलाकरलालितंसदा मुनिवृन्दैरभिवंदितंमुहुः ॥
चरणंतवचिंतितार्थदं दययादर्शयमेदयानिधे ॥ ४ ॥
यदिमेस्तिननाथयोग्यता तवपादांवुरुहावलोकने ॥
ममदोषचयंतिरस्कुरु नहिसूर्येणतमोनिरीक्ष्यते ॥ ५ ॥
नहिमेस्तितपःसमर्जितं परितोषोननुयेनतेभवेत् ॥
नियमंपरिहायकर्मजं कुरुदेवेशदयामहेतुकाम् ॥ ६ ॥
कठिनंकिलकर्मबंधनं विषयाश्चापिसुदुर्जयाविभो ॥
प्रबलास्तिचमोहवासना नविनातेकरुणांविमोक्षणम् ७
गतकंटकमुज्ज्वलंपरं मुनिवर्यैरनिशंनिषेवितम् ॥
तवमार्गमपास्यमापते निरताहाकुपथेषुदुर्धियः ॥ ८ ॥

नजपंनतपोनचैव्रतं नचतीर्थोपगमंसुरार्चनम् ॥
कृतवानहमच्युतादरात् तवविश्वासपरोस्मिकेवलम् ।९।
सकलेश्वरसर्वदेहिनां हृदयेषूपगतोपिसर्वदा ॥
जगतामुपकारहेतवे सततंशेपतनौविराजसे ॥ १० ॥
दितिजानपहंसिसंगरे कुरुपेदेवहितंदिवौकसाम् ॥
अपिसर्वसमेक्षणस्यते भजतांवैभजनंहिरोचते ॥ ११ ॥
निहताननुरोपदृष्टितो भवतायेदनुजारणाजिरे ॥
दृढयोगवतांगतिंगता स्तवकोपोपिविभोवरायते ॥१२॥
जनिमृत्युजरादियंत्रितं विविधैरोगगणैश्चपीडितम् ॥
परतंत्रमिदंकलेवरं भजनंतेकथमीशसंभवेत् ॥ १३ ॥
तवचिंतनकल्पपादपं परमानंदकरंविहायवै ॥
विपयेपुविपोपमेषुमे रमतेहंतरमेशमानसम् ॥ १४ ॥
विदितंकिलशास्त्रतोमया जगदेतन्नितरांविनश्वरम् ॥
त्यजतीहमनोनवासनां तवमायाननुनाथदुस्तरा ॥१५॥
समुदस्यगृहंसबांधवं विजनेतेपरिचिंतनेरतः ॥
मुषितोस्मिचविघ्नदस्युभिःपरिपाहीशनमामुपेक्षय॥१६॥
परिहायसमस्तदैवतं शरणंतेसमुपागतोस्म्यहम् ॥
यदिमामधुनाजनेक्षसे कृपयाकाभवितानुमेदशा ॥१७॥

वहवस्तवसंत्युपासका दिविपातालतलेच भूतले ॥
गणनाममतत्रकीदृशी क्रियतांनाथतथाप्यनुग्रहः॥१८॥
भवतोवपुरेवकोमलं हृदयंतेकठिनंविभातिमे ॥
वहुवर्षगणैरपिप्रभो स्मरतांयन्नददासिदर्शनम् ॥ १९ ॥
नधनानिसुतानयोषितो नचदीर्घायुरपिप्रभोमया ॥
नहिमोक्षपदंचयाच्यते तवकैंकर्यमनंतदेहिमे ॥ २० ॥
यदिकर्मवशेनमेभवेत् सुरलोकेभुविवारसातले ॥
जनुरीश्वरतत्रतत्रमे स्मरणंस्याद्भवतोनिरंतरम् ॥२१॥

॥ इति श्रीब्रह्मानंदस्वामिविरचितं विष्णुस्तोत्रम् ॥

